नूरजहाँ

श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त' के 'नूरजहाँ' नामक महाकाव्य
का अनुशीलन

भगवतशरण उपाध्याय, एम. ए.
काशी विश्व-विद्यालय

प्रकाशक
पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय

प्रथमावृत्ति] १९४१ [मू० अं० १), सा० [illegible]

नूरजहाँ की रोमांचक
स्मृति को—

प्रवेशक

साहित्य में प्रबंध-काव्य का गौरव सर्ववादिसंमत है। किंतु जब हिंदीवाङ्मय पर दृष्टि जाती है तो प्रबंधकाव्यों की संख्या सहस्र वर्षों के इस दीर्घकाल के भीतर वैसी नहीं दिखाई देती जैसी होनी चाहिए। संस्कृतवाङ्मय में यद्यपि मुक्तकों का परिमाण कम नहीं तथापि वहाँ प्रबंधकाव्यों की भी कमी नहीं। पर हिंदी के मध्यकाल में चाहे विदेशी प्रभाव समझिए, चाहे तत्कालीन परिस्थिति अथवा लोकरुचि की प्रेरणा, मुक्तकों का ढेर लग गया। आधुनिक युग में भी पहले तो पद्य-निबंधों की राशि एकत्र होती रही और अब गीतों या प्रगीतों का पहाड़ खड़ा हो रहा है। साहित्य की आवश्यक और सच्ची निधि प्रबंधकाव्य के प्रणयन में अब भी हमारे समर्थ कवि यदा-कदा ही प्रवृत्त होते हैं। फिर भी यह देखकर संतोष होता है कि इस युग में जो थोड़े से प्रबंध-काव्य प्रस्तुत हुए उनमें प्रबंध-पद्धति के विविध रूपों की छटा है। यह विविधता वस्तु, व्यंजना, शैली आदि प्रबंध के सभी उपकरणों में लक्षित होती है।

विविधता के होते हुए भी कुछ को छोड़ अधिकतर प्रबंधकाव्यों में उक्ति-वैचित्र्य और दृश्य-वर्णन पर ही प्रणेता की दृष्टि जमी हुई जान पड़ती है। अतः उनमें प्रबंध का वह तत्त्व उपेक्षित हो गया है जिसकी भूमि पर सारा संभार किया जाता है। प्रबंध का यह तत्त्व है विविध भंगिमाओं के साथ दूर तक चलनेवाला घटनाचक्र। केवल दीर्घकाल-व्यापी जीवन-वृत्त ले लेने से ही प्रबंध की पूर्णता नहीं हो सकती, उस के आवश्यक तथा हृदयग्राही छोटे-बड़े ब्यौरों का विधान भी यथास्थान होना चाहिए। प्रबंध की प्रभविष्णुता के लिए जितनी आवश्यकता इस योजना की है, उतनी ऊपर से लदे वैचित्र्य या वर्णन की नहीं। उक्ति-वैचित्र्य तथा दृश्य-वर्णन की अपेक्षा प्रबंधगत पात्रों एवं कथागत प्रदेशों, वस्तुओं या परिस्थितियों का रूप निखारने के लिए होती है। वे अपनी

निर्गुणता हटाकर और सगुण रूप में काव्य-भूमि पर अवतरित होकर मन को रमाएँ, उसका प्रसादन करें, यह नहीं कि मन कल्पना के पीछे पीछे उक्तियों का व्यायाम देखे और चारों ओर से अपने को समेटकर एक ही आसन पर जमा बैठा रहे या बागीचे की सैर के लिए निकले और इधर-उधर भटकता फिरे। संक्षेप में साहित्य 'यथावत् सहभाव' का उपासक है, अतिरेक से वह चिढ़ता है। इसी से कहा गया है—

बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसंबंधः प्रबंधो दुरुदाहरः॥

'नूरजहाँ' में यही 'यथावत् सहभाव' या 'अनुज्झितार्थसंबंध' विशेष ध्यान देने योग्य है। कथावस्तु की मुड़ती, ठमकती, फैलती, प्रखर होती हुई धारा भी है और उक्तिवैचित्र्य, वस्तु-वर्णन, संवाद आदि अन्य तत्त्वों का भी संविधान है। प्रकृति का चित्रण करने में तो कवि को प्रसिद्धि ही है। वर्ण्य प्रदेश की तद्गत प्राकृतिक विशेषताओं का ध्यान उसने बराबर रखा है। छंदोविधान भी सर्गबद्ध प्राचीन शैली का है, विविध छंदों की हाट से सर्ग नहीं सजाए गए हैं। भाषा में भी प्रसाद है, अनावश्यक रंगीन पदावली का जगड्वाल नहीं। शील-निदर्शन में पात्रगत वैशिष्ट्य का भली भाँति उद्घाटन किया गया है। इस प्रकार इसमें काव्य के तत्त्वों की योजना सुघड़ता के साथ और मार्मिकतापूर्ण हुई है, कोई अवयव फूला और कोई पिचका नहीं है। केवल एक ही अभाव खटकनेवाला प्रतीत होता है। इसमें पात्रों की अवतरणा लोक-भूमि पर उतनी नहीं हुई, जितनी व्यक्ति-संबद्ध परिमित शील-भूमि पर। कदाचित् कवि ने प्रेम-नाट्य के लिए उसे अनिवार्य रंगभूमि नहीं माना।

आलोच्य ग्रंथ को छोड़ अब आलोचना-ग्रंथ पर आइए। प्रस्तुत समीक्षा को 'नूरजहाँ' काव्य का भाष्य या महाभाष्य कहना चाहिए। हिन्दी में अब इतना अधिक और बहुमुखी वाङ्मय निर्मित हो चुका है कि किसी युग ही नहीं किसी प्रमुख कवि की समस्त कृतियों की विवेचना से भी और आगे बढ़कर उसकी एक एक कृति की विस्तृत

समालोचना का समय आ गया। सहृदय उपाध्यायजी ने मेरे विचार से अपनी इस रचना द्वारा ऐसी आलोचना का श्रीगणेश कर दिया है। यदि मेरी स्मृति ठीक है तो मैंने सन् १६३८ के मध्य में इसकी हस्तलिपि देखी थी। तब से कहीं अब आकर यह प्रकाशित हुई है। यह तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह आलोच्य काव्य का शास्त्रीय अंतर्भाष्य नहीं है। आजकल जिसे प्रभाववादी समीक्षा (इंप्रेशनिस्ट क्रिटिसिज़्म) कहते हैं, उसीके अंतर्गत यह भी रखी जायगी। चटपटी भाषा के बीच लेखक ने कर्त्ता की विचारधारा का उत्तरोत्तर प्रबंध-मार्ग पर प्रवाहित होना लक्षित किया है। अतः नूरजहाँ की शास्त्रीय समीक्षा के लिए इस पुस्तक ने पूर्वपीठिका प्रस्तुत कर दी है। इसपर व्याख्यात्मक या शास्त्रीय समीक्षा का प्रासाद खड़ा होना अभी शेष है। जो भूमि प्रस्तुत है उसकी सीमा, उपयोगिता, महत्ता, अनुकूलता, स्वरूप आदि बता देना शोधक का काम है। अतः गुण-कथन के साथ दोष-दर्शन न पाकर चौंकने की आवश्यकता नहीं। यह शोधक की दृष्टि है, न प्रशंसक की और न अवांतरार्थविच्छेदक की।

फिर भी परिशिष्ट में कुछ ऐसी सामग्री भी एकत्र कर दी गई है जिससे नूरजहाँ का अनुशीलन एवं मनन करनेवालों के लिए अभ्यस्त पथ निकल आया है, इस प्रकार यह हिन्दी में अपने ढंग की अनोखी पुस्तक है। आशा है, इस प्रकार की विस्तृत आलोचनाएँ और अधिक संख्या में प्रकाशित होकर हिन्दी का भांडार भरेंगी।

ब्रह्मनाल, काशी
महाशिवरात्रि १९९७

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

दो शब्द

प्रस्तुत 'नूरजहाँ' श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त' के 'नूरजहाँ' नामक महाकाव्य का अनुशीलन है। इसका प्रणयन भावात्मक है। 'नूरजहाँ' के अध्ययन का मेरे ऊपर बड़ा मार्मिक प्रभाव पड़ा। फलतः कुछ अनुकूल अन्तर्ग्रन्थियाँ खुल पड़ीं। मैं इस बात को स्पष्टतया कह देना चाहता हूँ कि प्रस्तुत प्रयास समालोचक का नहीं प्रत्युत सहानुभवी और समानधर्मा का है।

मैं प्रभाववादी (Impressionist) हूँ। जब अनुकूल प्रभाव का स्पर्श होता है प्रभाववादी (Impressionist) चुप नहीं बैठ सकता। इसी कारण जब महाकाव्य के प्रकाशन के पूर्व ही मैंने कवि की वाणी से 'नूरजहाँ' सुनी, कुछ गुनने, कुछ कहने, कुछ लिखने की धुन-सी लग गई। सन् १९३४ में समय भी पर्याप्त था और इस ग्रन्थ का अधिकांश आधार-काव्य के प्रकाशन के पूर्व ही प्रस्तुत हो गया। केवल परिशिष्ट आदि अन्त के भाग बाद में लिखे गए। यही कारण है कि कुछ पंक्तियाँ जो बाद में कवि ने प्रकाशन के पूर्व बदल दीं इसमें जैसी की तैसी हैं। मुझे वे संशुद्ध पंक्तियों से अच्छी लगीं। कवि को भी अब वे ही अच्छी जँचती हैं।

वर्षों पूर्व प्रस्तुत यह ग्रन्थ अब प्रकाशित हो सका है। लेखकों की कठिनाइयाँ कई प्रकार की हैं सो मुझे भी पर्याप्त रूप में भुगतनी पड़ीं। ग्रन्थ की हस्तलिपि वर्षों की प्रतीक्षा के बाद सन् ३८ में प्रेस भेजी गई। परन्तु कई कारणों से दो फ़ार्म छपकर आगे छपना बन्द हो गया। फिर सन् ४० के अप्रैल में व्यवस्थापक, पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय, ने इसका प्रकाशन अपने हाथ में लिया। अब अन्ततः यह कार्य सम्पन्न हुआ। मैं प्रकाशक का ऋणी हूँ।

भारत के कवियों पर अनेक ग्रन्थ हैं। कइयों पर शायद सम्पूर्ण ग्रन्थ भी निकल चुके हैं, परन्तु एक कवि की किसी एक कृति पर, जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी भारतीय भाषा में एक संपूर्ण पुस्तक नहीं लिखी गई। इस रूप में यह 'नूरजहाँ' पहला ग्रन्थ है। इस प्रकार के ग्रन्थों की यूरोपीय देशों में प्रचुरता है। ग्रन्थ की उपयोगिता में अन्त के परिशिष्ट सहायक होंगे। प्रयास करने पर भी प्रूफ़ और मुद्रण की अशुद्धियाँ रह गई हैं जिन्हें विज्ञ पाठक शुद्ध कर लेंगे।

काशी,
शिवरात्रि, २४,२,१९४१ } लेखक

सूची

			पृष्ठ
दो शब्द			
प्रवेशक			
पहला सर्ग	...	...	१
दूसरा सर्ग	...	...	३०
तीसरा सर्ग	...	...	५५
चौथा सर्ग	...	...	६४
पाँचवाँ सर्ग	...	...	८४
छठाँ सर्ग	...	...	१०३
सातवाँ सर्ग	...	...	१२१
आठवाँ सर्ग	...	...	१३३
नवाँ सर्ग	...	...	१४२
दसवाँ सर्ग	...	...	१५३
ग्यारहवाँ सर्ग	...	...	१७६
बारहवाँ सर्ग	...	...	१६४
तेरहवाँ सर्ग	...	...	२०२
चौदहवाँ सर्ग	...	...	२०५
पन्द्रहवाँ सर्ग	...	...	२१२
सोलहवाँ सर्ग	...	...	२१६
सत्रहवाँ सर्ग	...	...	२३७
अट्ठारहवाँ सर्ग	...	...	२५२
परिशिष्ट (कथा-प्रवाह और उसका ऐतिह्य)		...	२७६
परिशिष्ट ख (नूरजहाँ के पात्र)		...	२६३
परिशिष्ट ग (काव्य-सौन्दर्य और भाषा)		...	३१०
परिशिष्ट घ (नूरजहाँ में प्रयुक्त मुहावरे)		...	३१३

पहला सर्ग

मनुष्य को उसकी गम्भीरता खा ले यदि वह कभी कुछ समय निकाल कर थोड़ा हँस न ले। इस बात की गुरुता मनुष्य ने आज नहीं हज़ारों वर्ष पूर्व ही समझ ली थी और इसी उद्देश्य-सिद्धि के निमित्त बहुत सो संस्थाएँ रच डालीं। इसी हेतु भारतीय समाज-शास्त्री ने हँसती होली को सँवारा—वह होली जिस रोज़ गम्भीर मुद्रावाला ठाकुर जी का अहर्निश पुजारो मुस्करा कर उनके भी चमत्कृत गाल गुलाल से गुलाबी कर देता है, जब प्रत्येक वृद्ध को अपनी जरा पर अविश्वास-सा हो आता है और प्रत्येक वृद्धा अपने रोम रोम में अल्हड़पन भरती है, जब दीवाना युवक डफ और फाग के नशे में प्रत्येक युवती में राधा, और नशीली तरुणी प्रत्येक युवा में कन्हैया की प्रतिष्ठा करती है। यह केवल अपना ही नहीं है। मे डे (May Day) के रोज़ किसी अंग्रेज़ को देखो—क्या मन्त्री और क्या मजूर—सब पुष्पचयन और हास्य-क्रीड़ा में विभोर, बावरे बने फिरते हैं। नौरोज़ के अवसर पर ईरानी मुसलमान को हराम शराब हलाल हो जाती है। सुवालित प्यालों की मादकता क्या देती है? एक काल्पनिक झूला जिस पर तेहरान-निवासी साक़ी के साथ लम्बे पेंग मारना आरम्भ करता है, अलबुर्ज के झूले भरने तक नहीं पाते। किसी हिन्दू से पूछो उस पर कैसी बीतती है जब रँगी होली के रोज़ उसकी प्रेयसी मुँह लटका लेती है। सारा वैभव उस अंग्रेज़ का लुप्त हो जाता है जिसकी प्रिया उसे मे डे को अपनी बाँहों में नहीं भर लेती। फिर यहाँ तो हुस्न-परस्त ईरानी और उस पर भी गुमराह, विलासी अमीरज़ादा! रञ्जित नौरोज़ में सुन्दरी बीवी के चन्द्रवदन रूपी स्वच्छ-गगन पर चिन्ता के धुँधले बादल देखकर सहृदय ग़यास क्यों न तिलमिला उठे। उसके हृदय की धड़कन उसका सीना क्यों न फुला दे। सारा तेहरान ही क्यों सारा ईरान जहाँ रंग में रँगा खुशी में नाच रहा हो वहाँ ग़यास की बीबी का रञ्ज उसकी बेचैनी का

बायस क्यों न हो। 'मुरझाई हुई प्रिया' का 'बुझा हुआ दिल' हिलमिल कर दोनों को किस प्रकार नौरोज़ का विहार करने दे। ग़यास अपनी प्रिया को जीतने के लिये फिर भी प्रयास करता है। कदाचित नये दिन की नवश्री से उसकी गृहलक्ष्मी कुछ कान्तिमती हो जाए। आज का दिन कुछ साधारण नहीं है। ग़यास कहता है:—

प्रेम पत्र जो भेज चुके थे, पवन-दूत से माधव पास,
राह किसी की देख रहे थे, खड़े खड़े ही, बने उदास।
थे साकार निराशा मानो, मूर्तिमान थी हुई व्यथा,
गिरि 'अलबुर्ज' रजत पट पर थी अंकित मानो विरह कथा।
जगा रहे थे अलख दिक्अम्बर धारी जो ऐसे तरुवर,
वे भी फूले नहीं समाते आज भेंट निज कुसुमाकर।

वसन्त यौवन है, जीवन है, वनश्री है, मधु है और माधव है। यह वृक्षों पर आता है, उन्हें जिलाता है, सुशोभित करता है, मदमत्त करता और रसिक बनाता है। यही जब चला जाता है वृक्ष निर्जीव-से हो जाते हैं। निर्जीव-से हो जाते हैं, पर उन्हें आशा रहती है उसके लौटने की। अपने एक एक अवयव—एक एक डाल—को देखकर वे कहते हैं—अइहैं बहुरि बसन्त ऋतु इन डारन वे फूल। पतझड़ के बाद वसन्त और उसमें नौरोज़ का लौटना ग़यास के लिये कोई मामूली बात नहीं हैं। बिलकुल नई सूझ के साथ विनयी 'भक्त' वसन्त का स्वागत करता है। सो तरुवर 'माधव' वर—वसन्त—के पास अपने प्रेमपत्र भेज चुके थे। पत्रवाहक अधमरी दूती नहीं थी वरन् द्रुतगामी पवन। जो 'मेघ' को कोई 'दूत' बनाये तो पवन की आसरा करे फिर पवन को ही यह काम क्यों न सौंपे। फिर यह पत्र भी साधारण नहीं। कृत्रिम स्याही से इस पर नहीं लिखा शायद खून से लिखा हो क्योंकि पत्र वृक्षों के अवयव हैं, उनके शिरोरुह हैं, अश्वत्थामा का शिरस्त्राण। क्लेश चाहे जितना हो पर सच्चा प्रणयी मन्सूर की सूली तक को अपना लेगा। यदि मजनू अपनी परीक्षा में खून के प्याले भर सकता है तो वृक्ष-प्रणयी भी अपने पत्ते—अपने अंग—हँसते हुए पवन-वाहक को समर्पित कर

सकते हैं। काना-फूसी करके यह पवन ही उनसे प्रेम-पत्र लेता है।

फिर वे तरुवर कुछ उत्सुक और उदास बने किसी की राह देख रहे थे। वियोग में उनकी दशा बड़ी ही दयनीय थी। आशा की ज्योति बड़ी क्षीण होती है। प्रतीक्षक आशा रखते हुए भी कम से कम बार बार कहता है—नहीं आएँगे। सो ये तरु भी मानो निराशा की मूर्ति बन निराकार व्यथा को साकार बनाते अपनी विरह-कथा अंकित कर रहे थे। कहाँ? अलबुर्ज की रजतपट पर! अलबुर्ज पहाड़ की बर्फ़ीली ढालू ज़मीन को कोई दूर से—नीचे तेहरान से—देखे। बर्फ़ पर खड़े पत्ररहित वृक्ष सच ही चाँदी की तख़्ती पर लिखे स्पष्ट अक्षरों-से प्रतीत होंगे। कितनी सुन्दर उक्ति है, बिलकुल ही अछूती। सच्चा प्रणयी तपस्वी हो जाता है। तपना उसका धर्म हो जाता है। सो ये वृक्ष भी प्रणय में कुछ निराश-से होकर अलख जगाने लगे थे—वस्त्र डाल दिए, योगी बन बैठे फिर बाना तक नहीं—अम्बर दिशाएँ हैं। 'अचल' का सहारा लिया। यह 'अचल' वह स्थल है जहाँ 'अलख' जगाने वालों को कभी इन्द्रत्व, कभी रम्भा, उर्व्वशी और मेनका तथा कभी पाशुपत अस्त्र उपलब्ध होते हैं। सो ये सारे 'तरुवर' भी 'उदासी' बन कर सोये, 'अलख' (अदृष्ट) वसन्त को 'अचल' पर जगा रहे थे अचल पर जहाँ की शान्त घाटियों में, नीरव गह्वरों में, नदियों की तलस्थली में, जिसे भावुक अंग्रेज़ 'बेड' (bed)—बिस्तर—कहते हैं, नींद लग जानी स्वाभाविक ही है। अस्तु—

वसन्त जागा, 'उदासी' ने ठेक छोड़ी, दिगम्बर ने वसन अपनाए, तरुवरों ने अपने कुसुमाकर प्राप्त किये फिर वे फूले कैसे समाएँ? फूलने की .खुशी पुत्र-दर्शन की खुशी है। कुछ कम नहीं होती। वसन्त के आगमन से वनश्री जगमगा उठी:—

शाखाओं से वर विटपों की लिपटी ललित लताएँ हैं,
मधुपावलि बलि हो प्रसून पर लेती लाख बलाएँ हैं।
चारों ओर श्याम हरियाली का है बिछा हुआ कालीन,
रंग रंग के फूलों से हो गई घाटियाँ हैं रंगीन।

हरियाली समुद्र से लहरें ले गुलाब जब सो जाता,
मारुत सुरभि-सुरा में माता लोट पोट है हो जाता।
मधु प्रसूनचय से गिरवर का 'दामन' भरता जाता है,
हिम का सब घमण्ड पानी पानी हो झरता जाता है।
मन्जुल मञ्जरियों से मण्डित लतिकाओं से मिल मिल कर,
नवदल से शोभित शाखाएँ झूम रही हैं हिल हिल कर।

प्रकृति-पर्यवेक्षण भक्त जी की कुछ निजी सम्पत्ति है इससे उसपर हम कुछ न कह कर केवल उनकी सूक्तियों का ही थोड़ा अध्ययन करेंगे। क़ालीन फारस के लिए कुछ स्वाभाविक ही हैं। हाँ, उनकी ज़मीन जुलाहों के सूत से नहीं वरन् कवि की श्याम हरियाली से बुनी गई है। हवा के चलने से प्रशस्त श्याम-हरित वनप्रान्त-रूपी समुद्र में लहरें उठती हैं। किसी हरे-भरे खेत के पास खड़े होकर उसे देखिये, हवा के झोंकों से अन्न के पौदे क्यारियों में एक साथ झुक जाते हैं, हवा के लौटते ही वे फिर उठ खड़े होते हैं फिर वैसे ही झुक जाते हैं। इसी उत्थान-अवसान-क्रम को कवि ने समुद्र की लहर मानी है। उस लहर के साथ गुलाब का झुकना ही उसका सो जाना है पर यह सोना कुछ साधारण नहीं; यह सिंहिनी की चोट है जो उलट देती है, यह भले का प्यार है जो हानिकारी को जीत लेता है, यह काँटे बोने वाले के लिए फूल बोना है। मारुत गुलाब को केवल थपकियाँ देकर सुला भर देता है। पर वह उठकर प्रत्युपकार में अपने हृत्कमल की सुरभि प्रदान करता है जिसकी सुरामाधुरी से मत्त होकर अथक मारुत भी शायद नशे में सो जाता है, लोट पोट हो जाता है। अपना बदला फेर दिया गुलाब ने। मतवालेपन की ध्वनि जैसे लाइन की मात्रा मात्रा से निकल रही है—

मारुत सुरभिसुरा में माता लोट पोट है हो जाता।

माधव अलख जगानेवाले दिगम्बर तरुवरों को सनाथ कर चुका अब उनके अवलम्ब—गिरवर—को भी धन्य कर रहा है। केवल मूर्ति की ही पूजा नहीं होती, मन्दिर के चौखट की भी होती है, केवल शिव की ही अर्चना नहीं होती, उनके नन्दी की भी होती है। चित्रकार,

शिल्पी अपने प्रयास को पूरा उतारते हैं; लौटा नहीं ले जाते। अजन्ता और एल्लोरा के कलापण्डितों ने चित्रस्थ स्त्रियों से बचे मोती पत्थर की दीवारों और स्तम्भों पर बिखेर दिये। सो कलाविद् वसन्त भी 'गिरवर का दामन' साथ के फूलों से भरता जाता है। अब तो उसे तरुवरों और अचल से अलम् सुनना है वह बस क्यों करे? आते ही उसने बर्फ़ पर अपना सिक्का जमा लिया। श्वेत हिम को अपनी शुभ्रता पर बड़ा गर्व था पर सब उड़ गया! पानी पानी होकर बह गया। क्यों न हो; वसन्त के प्रणयी मित्र तरुवर जिसपर अपनी विरह-कथा लिखें उसे वसन्त क्यों न नष्ट कर दे। अब तो उस कष्ट की स्मृति भी वह उस 'रजत पटल' से मिटा देगा। नदी का स्राव न कह कर कवि ने उसे हिम का घमण्ड कहा जो पानी पानी होकर 'झरता' जाता है। निर्झर क्या हैं? हिम के अश्रुविन्दु, विरहव्यथा। मिटने पर वृक्षों का सुसमय जैसे जाग उठा है। यह तो जैसे मुहम्मद शाह को नादिर से छुटकारा मिल गया हो, फिर तो वही दिल्ली हरम की नाजनीन और 'मञ्जुल मञ्जरियों से मण्डित लतिकाएँ'। नये पत्तों से सुशोभित तरु-शाखाएँ पुष्पित वनस्थली में खिल खिल कर झूम रही हैं। क्यों न हो, जिधर ही मुड़ें मञ्जुल मञ्जरियों से मण्डित लतिकाओं का विद्युत्स्पर्श कुछ सच्ची कुछ झूठी झूमने की आदत डाल ही देती होंगी।

'आज़ाद' 'शाह बलूत' पहाड़ पर स्वच्छन्द क्यों न डोलें। प्रकृति-प्राङ्गण 'शाह बलूत' का दीवाने आम है। वह जैसे वहाँ दरबार करता हो। आज़ादी अगर बादशाह के पास न हो तो और कहाँ? बलूत शाह की आज़ादी और बुत 'शमशाद' की शोभा अलबुर्ज चाहे किसी प्रकार सम्हाल भी ले पर अपने 'सुरम्य शरीर' को 'बड़े लोच से' 'लचका' देनेवाले 'सुडौल' 'सरौ' का बोझ सम्हालते हुए अचल भी चल हो जाएँ। 'सरौ सुडौल' की सुरम्यता पत्थर-दिल अलबुर्ज क्या समझे नरगिस से पूछो। पुरुष के सौन्दर्य का रंग किसी रमणी के हृदय में देखो अपनी छाप डाल देता है। पतिव्रता के व्रतमार्ग का यह भारी रोड़ा पुरुष को राह क्योंकर रोके। सौन्दर्योपासिका नरगिस ही सरौ

सही का रहस्य जानती है। उसके हृदय में जो चोटें लगती हैं उनका अन्दाज़ कोई क्या लगा सकता है। यह नरगिस उर्दू शायरों की 'नरगिस' नहीं। यह दीवानी नरगिस किसी बिगड़े दिल के माशूक़ का पता नहीं बता सकती—जिसे स्वयं अपने अस्तित्व का गुमान और ज्ञान नहीं वह दूसरों का घर क्या जाने? वह तो विक्षिप्ता है, उसकी पलकें गिरतीं ही नहीं। गिरें भी कैसे? एक दो आँखें हों तब तो? यहाँ तो सारा शरीर ही आँखें है, खोलना और बन्द करना कैसा? निर्निमेष नयनों से देखती रहती है। क्या? प्रकृति मुसव्वर की कारीगरी? हाँ, वह तस्वीर जिसे देख कर ख़ुद मुसव्विर तस्वीर हो जाये। नरगिस स्वयं क्या चित्रकार नहीं? स्वयं क्या प्रकृति नहीं? फिर वह अपनी कारीगरी पर स्वयं मुग्ध क्यों न हो जाये? सुन्दर, सुवेश, सुरम्य प्रकृति को देखकर जो आचार के ढोंग से आँखें मीच लेता है वह क्या करता है? अपने नेत्रच्छदों के आभ्यन्तर चित्रपट पर बने चित्र को निर्निमेष देखता है। वहाँ नेत्रों और नेत्रच्छदों के बीच और दीवार तो होती नहीं। सुन्दर सरौ की सुघराई और कौन निहार सकता है। नरगिस का निर्निमेष लखना एक अछूती कल्पना है। 'बेर' 'मकोय' की झाड़ियाँ भला कविता की वस्तु हैं? पर क्यों मानवधर्मशास्त्र-सी शुचि स्मृति ने भी अपस्थल में पतित सुवर्ण रत्न को ग्राह्य कहा है फिर बेर मकोय की झाड़ियां तो बन्ध्या भी ऊँटों के पेट भरती हैं। उनमें लटके जवाहिर तो सदा ही ग्राह्य हैं फिर इन जवाहिरों का पारखी इन्हें क्यों न सम्हाले? पर पारखी, तूने 'अंगूरी' लतिकाओं के अञ्चल मोतियों से भर दिये और 'बेर' 'मकोय' की झाड़ियों पर भीतर बाहर सब ओर जवाहिर न्योछावर किये फिर देखना इन्हें सम्हालना भी है, कहीं चोर न जा घुसें। अगर घुस गये तो झाड़ियों में छिपकर पकड़े भी नहीं जा सकते, एक एक जवाहिर, एक एक मोती चुन कर अपने कांच के घर इस प्रकार सजायेंगे कि दावा करना मुश्किल हो जायेगा। वे इनके हृदय के—अपने—दीखेंगे, बड़े बेढब साहित्यिक चोर होते हैं, ख़बरदार!

गुलाब ने 'बन, उपवन, उपत्यका गिरि' सब पर अपना रंग चढ़ा दिया है, गुलाबीपन की जैसे नदी बह रही हो। उस शोभा-तरंगिणी में 'सौरभ' की लहर उठती है, एक बार नहीं, दो बार नहीं, निरंतर— 'फिर फिर'। अय्याम नौरोज़ के हैं जो अकेले नहीं आते रंगों की बाढ़ साथ लाते हैं। गुलाबी पुट गुलाब की ही नहीं होती, नौरोज़ घर बाहर चहुँओर लाल बिखेरता आता है। प्राची से ही चलता होगा! 'नया दिन' है दिनकर के साथ ही आता होगा तभी तो मार्ग में उषा खेल रही है। चारों ओर स्वस्थ सुर्ख़ी है—'प्राची भी है हुआ गुलाबी, लाल रंग में रँगे सभी'। फिर भी निज पत्नी के आनन का पीलापन ग़यास की समझ में नहीं आता। आज चहुँओर प्रेम-लालिमा के बीच यह रुग्ण पाण्डुता कैसी? पूछता है:—

> मुख तेरा उतरा-सा क्यों है, भ्रू-कमान क्यों चढ़ी हुई,
> दिल छोटा क्यों किया, और यह चिन्ता क्यों है बढ़ी हुई?

ग़यास, देखना कहीं कमान पर चढ़ा तीर छूट न जाये। क्या ही सुन्दर antithesis है। मुख का उतरना भ्रू-कमान का चढ़ना, छोटे हुए दिल की तबीयत बढ़ाना—मुहावरों की ख़ासी बन्दिश है।

ग़यास ने देखा उसके 'कब्कदरा के विहार का उसकी बीबी पर कोई असर नहीं, 'तीहू' और 'हुबारा' तक की बोली सुन कर उसका 'जी नहीं चलता'। अब वह 'सरौ सही पर अलापती कुमरी' की याद दिलाता है। ईरानी 'कुमरी' फ़ारस की भूमि पर कुछ वैसा ही जादू रखती है जैसा भारतीय कोकिल भारत भूमि पर। पर उसके कू! कू! का भी उस पर कोई असर न हुआ। उसकी आँखें आज 'आहू' की आँखों की हार पर गर्व नहीं कर सकतीं। ग़िज़ाल का प्यारा शावक भी, जिसको उसने छोटे से बड़ा किया है आज उसके सामने कुछ भी नहीं हैं। ग़यास कहता है कि यह वह शावक है—

> जिसकी आँखों पर निज आँखें रख, विशालता नापी है,
> विजय गर्व से पुलकित होकर मन ही मन फिर काँपी है।

क्या ही सुन्दर खयाल है। ग़यास की पत्नी को अपनी आँखों पर पर कुछ कम नाज़ न था। सारे फ़ारसी साहित्य में उसने ग़िज़ाल की आँखों का बयान पढ़ा था। विलासी ग़यास के सम्मुख उस ग़िज़ाल के शावक को देख वह कुछ घबड़ा गई होगी। स्वामी को गर्व होगा उस शावक की बड़ी आँखों पर—यह उसे क्योंकर बर्दाश्त हो? झट उसकी आँखों पर अपनी आँखें रख कर उसने अपनी विजय घोषित कर दी थी, उसकी ख़ूबसूरती की गरदन ही मानो नाप दी थी। फिर विजय-गर्व से पुलकित होकर आप ही आप काँप उठी थी। रोमाञ्च हो आया था। ये सारी बातें कहते कहते ग़यास कुछ बेक़ाबू हो जाता है। अंगूरी लतिकाओं की याद से उसके मुँह में पहले ही पानी भर आया था, कुमरी की कू! कू! ने उसे दीवाना बना दिया था। बदहवास-सा वह कहने लगा—

बुलबुल आ अब लगी छेड़ने प्रेम-प्रमोद तरानों को,
गुल-लाला से कहती ला ला हाला के पैमानों को।

बिल्कुल बेजोड़ लाइनें हैं—ग़यास के विलासी हृदय का कोना कोना तड़प उठता है। बुलबुल के 'प्रेम-प्रमोद तराने' केवल अपने ही लिये नहीं होते उन्हें सुनकर अधिकतर दूसरों ही पर बीतती है। वसन्त स्वयं आता है पर बीतती आँख और कान वालों पर है। रसाल स्वयं तो बौरा ही जाते हैं उन्हें देख देख दूसरे भी बावरे हो जाते हैं। मेघ का आना यक्ष कन्या-सी प्रोषितपतिकाओं से भाग्य का फिर जाना होता है। सो आज ग़यास पर बीत रही है। बुलबुल अपने प्याले और साक़ी भी साथ लाती है—वसन्त की नायिका है। गुल-लाला फूलने पर पैमाने-सा हो जाता है उससे वह हाला भर लाने की रट लगाये हुए है। सय्याद के ज़ुल्म की याद बनी रहने पर भी जब वह गुल-लाला की झाड़ी से क्षणभर के लिये अलग नहीं होती फिर उसके 'दिन' आते ही वह उससे हाला के पैमाने क्यों न भरवाये। दीवानापन से भरी इतनी नशीली लाइनें और कहाँ हैं? शब्दों के लालित्य और भावों की दौड़ में खासी होड़ है। जैसे कोई शराबी बोतल से बारम्बार प्याले

भरते देख बेचैन होकर चीख पड़ा हो—गुल-लाला से कहती ला ला, हाला के पैमानों को। ग़यास आपे में नहीं है। उसने गुलाब की नदी बहती देखी, वसन्त की अंगूरी लतिकाओं के अञ्चल भरते देखे, बुलबुल के मदभरे तराने सुने, गुल-लाला के भरे पैमाने देखे—बेबस हो गया। जैसे-जैसे दिन चढ़ा रात का नशा उतरने लगा, आँखों में ख़ुमारी छा गई। सबने अपनी सम्हाली, 'लालपरी' हाला 'शीशे में उतरी।' अब वह कबतक अपने होंठ चाटे। अब उसकी बारी है। आज नौरोज़ है, सारी दुनिया लुटा रही है, अपना सारा न्यौछावर कर रही है। फिर क्या ग़यास ही अभागा है? अरे! अपनी ही मधुशाला में भिखारी बने? पशु-पक्षी तक तो दिल खोलकर ढाल रहे हैं। बढ़े दिल से दोनों हाथ फैला देता है। आज तो दान का दिन है, प्रकृति दान कर रही है फिर आज तू क्यों अपना धन सूम का बना रही है? अरे—

> दरियादिल हो जा, वसंत है, आज लुटा दे मधुशाला,
> देती जा, अपने हाथों से, ढालूँ, प्याले पर प्याला।

सही, ग़यास आपे में नहीं है।

योंही गले में हाथ होवें, यही नदी का कूल होवे जिसके अञ्चल तलेटी—में अगणित गुलाब के फूल लहराते हों, बुलबुल दर्दभरी राग-रागिनी अलाप रही हो और नसीम सहरी हरियाली को लहराती हुई वह रही हो फिर तू भी झरने की लय में अपना सुर मिलाकर वह तान छेड़ दे जिसमें सारा विश्व ही डूबने-उतराने लगे। इस लाल रंग में तू भी 'बुत' हो जाय, सराबोर हो निकले, फिर तो—

> ये प्याले मद भरे दृगों के पीते रहें हमारे नयन,
> बजे चैन की बंसी मेरी चलें सुमन फिर करने चयन।
> मैं फूलों से तुम्हें सजाऊँ, मुझे पिन्हाना तुम कलियाँ,
> रंग खेल रँग में भर जावें, मचा मचा कर रँगरलियाँ।

बेगम को काठ मार गया। उसनें ग़यास की बदचलनी जानकर भी कभी नहीं सोचा था कि वह इस प्रकार पतित हो जायगा। प्रायः

ऐसा होता है कि अपने अनाचारी आत्मीय की दुर्बलतायें जानकर भी हम सोचते हैं वह फिर भी ऐसा अनाचार नहीं करेगा पर जब यथार्थ ही वह ऐसा अनिष्ट कर बैठता है तो दिल में बड़ी चोट लगती है। बेग़म ने सब कुछ जानकर भी सोचा था कि ग़यास गो मार्ग-भ्रष्ट है पर सम्भ्रान्त ईरानी है, 'अमीर शरीफ़' का वंशज है, परन्तु ग़यास तो हारा हुआ जुआरी था। प्रत्येक नई हार से जीत की तृष्णा बलवती होती जाती थी, कायरता की सीमा बढ़ती जाती थी, पतन का क्रम द्रुत होता जाता था, भार-वहन का भाव धुँधला पड़ता जाता था। जैसे जैसे पति इन दुर्बलताओं का शिकार होता है वैसे ही वैसे उसकी साध्वी पत्नी सहिष्णु, उद्योग-शीला और सबला होती जाती है। उसका भार और बढ़ जाता है। बेगम साध्वी है। ग़यास की रँगरलियों से उसको घृणा है, भरे जी से वह रात आँखों में काटती है। जीवन-वृत्ति की अहर्निश चिन्ता लगी रहती है। क़िस्मत की गर्दिश उसकी जहाँ को पीस चुकी है, 'भाग्य सितारे' उसके डूब चुके हैं। आज उसे टके टके के लिये, दाने दाने के लिये, औरों का मुँह ताकना पड़ता है। क्यों न हो—

मोती दाना कभी खेल था, मोती दाना दाना है।

फिरे भाग्यवालों का विलाप निश्चय कानन-क्रन्दन है। सारा अतीत उनकी आँखों के सामने फिर जाता है। अभी हाल ही उसके श्वसुर के समय मेहमानों की भीड़ लगी रहती थी आज उनका पता तक नहीं है। मुफ़लिसी में अपने किए उपकारों की बड़ी याद आती है और कृतघ्न की कृतघ्नता उस वक़्त बहुत खलती है। स्वभावत: गम्भीर बेगम क्षोभों से चंचल हो उठती है और स्त्री स्वाभाविक आवेश धारण करती है—

जिनको मेरे पूज्य श्वसुर ने गिरने से था बचा लिया,
दे सहायता हर प्रकार की आसमान तक उठा दिया।
जो उनके सम्मुख दम भरते थे उनके अहसानों का,
तांता सदा बँधा रहता था घर में जिन मेहमानों का।
जिनका तुमको बड़ा गर्व था, जिनका बड़ा भरोसा था,
जिनके लिये हमारे घर में रहता थाल परोसा था।

वे कृतघ्न मर गये कहां जो नहीं झाँकने तक आते ?
अकस्मात मिल जाने पर हैं कैसे आँख बचा जाते ।

स्वाभाविक ही है। जिसने एक समय सोने चाँदी के बरतनों में खाना खाया, मूँगे के पलँग पर विस्तर किया, 'मोती की झालर के परदे, लाल जड़ी ज़रकश चिलमन' आदि विभूतियाँ पाँवों तले रौंदी वह समय के कुचक्र में पड़कर क्यों कर शान्त रहे। सारा दे डाला—

सब ज़ेवर मैं बेच चुकी हूँ, यह मुँदरी विवाह उपहार,
केवल बाकी बची और है धन में तुम जीवन आधार।

अब क्या करे ? क्या बाकी रहा ? केवल एक अँगूठी की चमक भी उस तमोगुणी अभाग्य की अन्धकार-पूरित आंखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देती है। वह अँगूठी भी अपनी नहीं जो ग़यास की मय-तृष्णा में बहा दे। विवाह का अन्तिम चिह्न, ग़यास का एक मात्र उपहार जीवन-सी प्रिय अँगूठी वह किस प्रकार अलग करे ?

दुर्दिनों की संगिनी अँगूठी को अब वह अलग न करेगी। दिन रात जिनके ऊपर उसने शासन किया उनके समक्ष वह कातरा नहीं हो सकती। मानिनी बेगम विदेश में अनजाने मर जाना चाहती है पर 'अपनों में' पानी खोना उसे बहुत खलता है। घना प्यासा चातक बादलों को देखता है पर सबको नहीं, केवल स्वाति नक्षत्र के बादलों को, सबके सामने वह दीन वचन नहीं कहता। याच्ञा मोघा वर-मधिगुणे नाधमे लब्धकामा (सज्जन पुरुष से याचना पूरी न हो तो अच्छी परन्तु नीच से पूरी हो जाय तो भी अच्छी नहीं।)—'मेघदूत' की यह पंक्ति न जान कर भी मनस्विनी बेगम महाकवि की इस नीति से परिचित थी। ग़यास की पीने की धुन उसके हृदय में सालती है, वह कहती है—

पीने को अब क्या रक्खा है आओ आंसू अब पीयें।

ग़यास यदि बदल नहीं सकता, उसका मद्यपान यदि छूट नहीं सकता तो वह अपनी क़िस्मत पर झरने वाले आंसू क्यों नहीं पीता—बेगम

ताज्जुब में है। उसकी भृकुटी चढ़ी हुई है, उसका तेज कुछ और कहता है:—

कनी चाट लेना अच्छा है कनिक मांगने क्यों जाऊँ ?
तुम प्रियतम भूखे सो जाओ मैं कुछ खाकर सो जाऊँ।

कितना ओज है ! किस प्रकार आत्माभिमान बेगम में बना हुआ है ! लाखों रुपये दान करके भी बैरम खाँ का 'रहीम' 'मधुकरी' माँग कर खाता है पर बेगम को 'कनिक'—आटे के कण—मांगना पसन्द नहीं, वह मृत्यु का आलिंगन भले ही कर सकती है। अँगूठी में लगी हीरे की 'कनी' पर्याप्त होगी और नहीं तो 'कुछ' खाकर सो जाना क्या बड़ी बात है ? हाँ ग़यास वह 'कुछ' न खाने पाए।

ग़यास प्रगल्भ है, बकवादी। उसकी बातों का तांता नहीं टूटता। घर से बाहर नहीं जाना चाहता। प्रमादी, अनवस्थित वासनाओं से घिरा वह व्यर्थ प्रलाप करने लगा। जब बेकारी होती है तो आदमी सिद्धान्त उगलता है—उसका प्यारा ईरान स्वर्गस्थान-सा प्रतीत होता है। स्वदेश के वन, उपवन, उपत्यका, गिरि सभी आकर्षक हैं। ईरान की पूजनीया धरणी के मिट्टी-पानी से उसका शरीर बना हुआ है। कितनी ही दफ़े उसके आंसुओं से स्वदेश का पावन रज सन चुका है, फिर वह उसे कैसे छोड़े ? विषयी का प्रलाप उसके इष्ट के पक्ष में बड़ा आकर्षक और सबल होता है। ग़यास के भी स्वदेश-संगीत में बड़ा रस है—

'शैशव' उदित हुआ जिस नभ पर—वही स्वर्ग यह वही धरा,
जिस भू पर नन्हा यह पौधा लोट पोट है हुआ हरा।
इस घाटी में खेल चुके हैं 'गेंदों' के फूलों की गेंद,
चश्में की भौं पर वह तरुवर, खाते जिससे तोड़ फरेंद।
वह टीला जिस पर चढ़कर के चाँद ईद का देखा है,
जिसकी ऊँचाई से सरिता लख पड़ती इक रेखा है।

भला ऐसी स्मृतियों से सना स्वदेश कैसे छूटे। इन लाइनों के एक एक पद में बेगम का कोई न कोई निजी रहस्य छिपा है। ग़यास का

वह शैशव जो उसके भावी यौवन का आधार था जिसमें कदाचित बेगम का प्रथम-प्रेम सञ्चित हुआ था, उसका क्रीड़ास्थल और गठन-भूमि ईरान ही था, क्या बेगम उससे दूर होना चाहेगी? जिस घाटी में ग़यास बेगम पर गेंदे के फूलों की झड़ी लगा दिया करता था और जिसकी एकाकी निर्जनता में उन फूलों की प्यारी चोटों से प्रेम विह्वल होकर, भाग कर ग़यास के ही अंक में बेगम ने त्राण पाया होगा उस क्षात्रधर्म का रूढ़ार्थ ज्ञानी इस दुष्यन्त को शकुन्तला कण्वाश्रम से दूर करेगी? वह सरिता जो ग़यास और बेगम के टीले से रेखा सी क्षीण दीख पड़ती है कण्वाश्रम की मालिनी नदी से कुछ कम नहीं है। यह टीला भी ऐसा वैसा भग्न स्तूप नहीं वरन् उसके एक एक कण में ग़यास और बेगम का नव-प्रणय सञ्चित है। यहीं से यह दम्पति 'ईद' का चाँद देखा करता था वह ईद जिस दिन लहू के प्यासे जीवन-शत्रु भी गले मिलते हैं। जिस दिन दोनों बारम्बार मिलकर भी तृप्त न होते होंगे उस दिन की याद क्या बेगम के लिए असह्य नहीं होगी? क्या वह ऐसे टीले से ग़यास को दूर भेजना पसन्द करेगी? ग़यास प्रेम-स्मृति के क्षणिक श्रोत में विभोर हो बह जाता है। उसकी स्वर-लहरी बड़ी सरस और आकर्षक हो जाती है:—

जल तरङ्ग पर मस्त बना मन मौज उड़ाता बहता है,
खग-कलरव की गति पर रत हो हृदय नाचता रहता है।
ये झरने जिनके 'स र ग म' पर स्वाँसों की गति बाँधी है,
इनके तजने के विचार से मन में उठती आँधी है।
जिस दिन यह 'समाज' छूटेगा हृदय ताल का होगा 'सम',
स्वाँसों के 'दोतारे' का भी 'सुर' तुरन्त जायेगा थम।

ख़ूब! विलासी ग़यास निरा बिगड़ा अमीरज़ादा नहीं। उसके कथन में सूझ है, भाषा में रस है, राग में कम्पन है, गान में ज्ञान है। सरिता की शान्त तरङ्गों को उसका 'मन-मारुत' आन्दोलित कर देता है। खग-कलरव रूपी जल तरङ्ग उसके हृदय की संगीतशाला में सदा प्रतिध्वनित होता रहता है। झरनों का मन्द, कलकल स्वर संगीत का

स र ग म है जिन पर ग़यास ने अपने स्वाँसों को 'गति' बाँधी है। इन प्रकृति-सहचरों को छोड़ना उसके लिये साधारण बात नहीं, भयंकर झंझावात का सामना है वह क्योंकर रुक सकेगा? जिस दिन यह 'समाज' छूटेगा, इन प्रकृति के सफरदों से वियोग होगा, उस दिन उसके जीवन का 'ताल' 'सम' हो जायेगा, हृदय का स्पन्दन रुक जायेगा, प्राण और अपान रूपी जो 'दोतारा' है उसका स्वर सत्वर बन्द हो जायेगा—सो क्या उसको सौभाग्यवती बेगम को स्वीकार होगा? अरे इस जीवन में उत्थान और पतन कहाँ नहीं? कौन सी नदी है जो अपने उद्गम स्थान से निकल कर ढोकों से नहीं टकराती? पर क्या वह लौट जाती है? नहीं, उसकी धारा सफल संकल्प से आगे बढ़ती है। ग़यास बेगम के हृदय की थाह न पाकर गला भर कर घुटने टेक देता है:—

इससे मुझको तुम मत छेड़ो, मुझे चैन से रहने दो,
लड़ती टकराती रोड़ों से जीवन-सरि को बहने दो।

पर क्या बेगम रुकी? 'जिसका बन्दर वही नचावे'—बेगम ग़यास को आज से नहीं शैशव काल से जानती है उसकी एक एक दुर्बलता पर उसने आह निकाली है, एक एक बदचलनी पर तप्त आँसू डाले हैं, एक एक चाल को वह पहचानती है। ग़यास ने उसे चकमे में डालना चाहा पर उसकी उसके सामने एक न चली। राजा दिलीप की नन्दिनी उसकी परीक्षा के लिये मानसजात सिंह से कहलाती है, 'दिलीप अकेली गाय को अपनी जान के बदले बचाकर सहस्रों प्रजा का अहित क्यों करोगे'। पर यह धर्म-संकट आचारपूत धर्मधुरीण राजा के सामने क्षण भर भी नहीं टिकता। वह दूध-का-दूध और पानी-का-पानी कर देता है। उपस्थित धर्म को छोड़ वह विपरीत राजानुचित वृत्ति क्यों अपनाये? बेगम जानती है कि इस दलील की चमक स्थाई नहीं। ग़यास क्या है सो उससे छिपा नहीं। ग़यास का ज्ञान कथन उसे असह्य हो चुका था। क्रोध से तमतमा गई। कवि ने नीचे की लाइनों में उसका वह चित्रण किया है जो अद्भुत है:—

'बस ! बस ! बस ! अब बहुत न बहको'—बात काट बेगम बोली,
"तबियत को तो ज़रा सम्हालो, जी भर गया, बहुत हो ली"।
सिहर गई थी सुनते सुनते तमक उठी रिस से वह बाम,
ढीठ एक लटनागिनि को जो लख ललाट पर स्वेद ललाम—
लटक, चाटने चली ओस थी, उसे झटक कर पीछे कर,
एक फिसलती वक्र दृष्टि से प्रियतम को लख, आँखें भर,
चाहा खरी सुनाना ज्योंही सोच बहुत ऊँचा नीचा,
गला भर आया, बोल न फूटा, आँखों को अपनी मीचा।
उसके मुख पर झलक रही थी अन्तस्तल की घोर व्यथा,
दृग से आँसू निकल निकल कर कहते थे कुछ करुण कथा।

भावों की तेज़ी कुछ ऐसी है चित्र झट सामने आ आता है और सत्वर रंगमंच की अभिनेत्री का सा बेगम का चेहरा चमक जाता है। वह जानती है कि ग़यास 'बहका' हुआ है, उसकी बातें प्रलाप के सिवा और प्रभाव न डाल सकीं। चतुर चिकित्सक की तरह उसने ग़यास का भाव आँक लिया। पागलों की बातों में आकर प्रायः लोग उनकी बताई सहायता के लिये तैयार हो जाते हैं पर कुशल वैद्य उनकी बातों की उपेक्षा कर जाता है। बेगम ने एकदम ग़यास की बक-बक रोक दी और कहा कि देखो, उतावले न हो, अपने को सम्हाल कर बोलो। पति की बातें सुनते सुनते उसका चित्त अस्थिर हो उठा था, साध्वी को पति के बेतुके स्वदेश-प्रेम की प्रेरणा से बड़ा क्षोभ उत्पन्न हो गया था। मारे क्षोभ के उसके ललाट पर स्वेद-विन्दु चमकने लगे जिनके सुन्दर कणों में उसकी लटरूपी नागिन को ओस का धोका हुआ जिसे चाटने वह नीचे लटक आई थी। उसे नटो की भाँति बेगम ने झटक कर पीछे फेंक दिया। बड़ा सुन्दर दृश्य है भाषा तो बड़ी ही आकर्षक एवं प्रावाहिक है—

ढीठ एक लटनागिनि को, जो लख ललाट पर स्वेद ललाम—
लटक, चाटने चली ओस थी, उसे झटक कर पीछे कर—

जैसे ही उसने एक फिसलती वक्र दृष्टि से ग़यास को देख आँसुओं से आँखें भरकर पति की समझ पर कुछ कहना चाहा उसकी वह दशा

हुई जैसी भावातिरेक और दुःखातिरेक के कारण बहुधा हो जाया करती है—गला भर आया, बोल न फूटा, आँखों को अपनी मीचा। मनोविज्ञान के मनन की पराकाष्ठा कर दी। कवि की सूझ ने उस एक लाइन में वह भाव भर दिया जो सैकड़ों लाइनों में नहीं समा सकता था। व्यक्त और अव्यक्त में बड़ा अन्तर है—जितना भाव हृदय में निहित रहता है उसका शतांश भी प्रकटित नहीं हो सकता। सुन्दरता के आकर्षण का वर्णन करते समय हमारी जिह्वा हार मान जाती है अन्त में हम कह ही देते हैं—'जो देखा वह भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता।' भाषाकोश में न तो इतनी शक्ति है न जिह्वा में इतना सामर्थ्य है जो नेत्रों के ज्ञान को प्रकाशित कर सकें। आन्वीक्षिकी विद्या के पण्डित इसी सिद्धान्त को सृष्टिवाद के रूप में समझाते हैं जब वे कहते हैं कि व्यक्त सृष्टि से अव्यक्त सृष्टि जो ब्रह्म में निहित है अवर्णनीय मात्रा में बड़ी है। दोनों की तुलना ही नहीं हो सकती। ब्रह्माण्ड तो उस अनन्त अव्यक्त विश्वकोष और विश्वज्ञान (Encyclopaedia) की एक क्षुद्र सूचना—अपूर्ण अनुक्रमणिका मात्र है। व्यक्त ब्रह्म से अव्यक्त ब्रह्म का विस्तार इन्द्रियातीत है। कवि ने इस अव्यक्त शक्ति की महिमा जानी है, उसे उसका व्यापक अर्थ ज्ञात है और उसने बिना कुछ कहे केवल अपनी अद्भुत किन्तु सच्ची कल्पना से सब कुछ आँक लिया, कह डाला। बेगम को बहुत कुछ कहना था पर क्या करे—सारे भाव नेत्रों में उमड़ कर बह गए। आँखों में इतना सामर्थ्य न रहा कि खुल कर अच्छी तरह ग़यास पर पड़ें। क्रोध से भरीं छिलती हुईं, छिपती सीं, कुछ नीची होकर पति पर पड़ीं और लौट आईं। क्या इन्हीं आँखों से बेगम ग़यास को देखे? ग़यास की कायरता में कितनी उद्दण्डता है। वह अपनी कायरता छिपाता नहीं, बहाने नहीं बनाता प्रत्युत् नीति से उसका समर्थन करता है—यह सब समझने में बेगम को कुछ देर लगी? उसने अपनी आँखें मीच लीं, उनके दृष्टि-कपाट बन्द कर लिए। मुखमण्डल अभ्यन्तर भावों का परिचायक अनुक्रमणी हो रहा था। व्यथा की सघनता ने चन्द्रवदन को शशलाञ्छन बना दिया

था। नेत्रों से अटूट वारिधारा निकल निकल कर ग़यास के दोष को करुण वाष्प से धो रही थी। क्यों न हो, ग़यास क्या कोई ग़ैर था ? कितनी भी वह ग़लती करे पर बेगम—पति को दूर कर सकती है ? उसके रोम रोम से वह करुणा निकली जिससे वह स्वयं शान्त हो गयी। क्रोध का स्थान विचार ने लिया। उसने सोचा—आँसुओं ने अपनी 'करुण कथा' तो ग़यास पर व्यक्त कर ही दी अब आवश्यकता इस बात की है कि उसे समझा बुझा कर किसी प्रकार विवेकाविवेक का बोध कराया जाय, उसके अतीत की शान बरक़रार रखी जाय वरन 'शरीफ़' का अकेला वंशज उस निर्मल वंश की कीर्ति मद्य की लाली से बदल डालेगा। सुन्दर, विशिष्ट, ओजस्विनी भाषा में वह ईरान के विख्यात वंशधर को समझाने लगी—

देखो समझो निज मर्यादा अपने पुरुषों का सम्मान,
यों मत मिट्टी में मिल जाने दो अतीत गौरव का ज्ञान।
उच्च वंश के ईरानी हो जिसका उज्ज्वल है इतिहास,
च्युत कर्तव्य न हो विलासिता से करवाना तुम उपहास।
कष्ट हमारा जीवन ही है, है मरुभूमि हमारा देश,
फिर भी कठिन परिस्थिति से लड़, भोग भोग कर नाना क्लेश,
पूर्वज छोड़ गए हैं सम्मुख उच्चादर्शों के पद-अङ्क,
हो पथ भ्रष्ट भला अपने सिर लेगा कायर कौन कलंक ?
इस संसार-समर-प्रांगण में जीवन है क्या ? इक संग्राम,
रङ्ग मञ्च के नायक बन कर दिखलावें हम अपना काम।

ठीक है मनुष्य होकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना कितनी कायरता है ? सिंह आखेट की कमी देख अपना देश छोड़ कर वनान्तर को जाता है और वहाँ बिना किसी पुरोहित के राजतिलक किए स्वयं मृगेन्द्रता हस्तगत करता है। श्वान अपना घर नहीं छोड़ता और रोटी के एक टुकड़े के लिए कभी दुम हिलाकर, कभी जिह्वा लटका कर, खाने वाले को प्रसन्न करने के लिए विविध चेष्टाएँ करता है। सो निराश

होकर बैठ रहना बड़ी कायरता है। सारा संसार एक रणभूमि है जिससे भागने वाला सदा मारा जाता है। विजय उसकी होती है जो अपने लिए एक स्थल ढूँढ़ निकालता है। कायर वहाँ ठहर नहीं सकता। यूरोपविजयी नेपोलियन युद्ध के समय भी ज़रूरत से, गोले उगलते हुए, कर्णपुटों को अपनी भीमध्वनि से फाड़नेवाले भीष्म तोपों के पीछे नींद मार लिया करता था। एक बार वह ऐसी ही नींद लेकर उठा और सामने दगती विपक्षी बन्दूकों के मुँह में युद्ध का हाल जानने के लिए खड़ा हुआ। उसके दोनों हाथ कमर पर टिके हुए थे। एक सेनापति ने डरते डरते अपना सिर उसकी बगल में डाल कर जो सामने देखा तो झट शत्रु की गोली से धराशायी हुआ। नेपोलियन ने दुख से कहा अगर हमारी तरह तुम भी सामने खड़े हुए होते तो गोली तुम्हारी बगल और बाँह के बीच से निकल जाती। सो इस सांसारिक युद्ध-क्षेत्र में भी कायरता प्राणघातक होती है। इसमें वही योद्धा सफल होते हैं जो प्राणों की बाज़ी लगाकर, आपत्तियों के मुँह में खड़े होकर, हनुमान की तरह बढ़ कर सुरसा के मुख को छोटा कर देते हैं, एकलव्य की तरह श्वान का मुख वाणों से भर देते हैं। किसी कवि ने कहा है:—

इस पथ का उद्देश नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं॥

जिस प्रकार रङ्गमञ्च पर आने वाला नायक इतर पात्रों को अपनी महत्ता से ढक देता है वैसे ही हमें जगत की इस रणस्थली में आगे जाना पड़ेगा, अपनी कायरता अपने आपको ही खा लेगी। बेगम इस रहस्य को जानती है। वह ग़यास को रङ्गमञ्च का नायक बनाना चाहती है नाट्य-रस का वर्द्धक एक क्षुद्र पात्र नहीं। अतीत का गौरव उसके नेत्रों में नृत्य कर रहा है, ग़यास की कायरता का स्मरण उसे नाग-सा डँसता है, वह चमक उठती है। उसकी नस नस में हेरात के शासक की रोबीली स्मृति का सञ्चार हो आता है। ग़यास भी वैसा ही क्यों न हो जाय? वैसा ही क्यों न करे? संसार-सागर में अपनी

नौका डाल देती है—वाह री शेर दिल बेगम की ललकार—

चलो, बनें नाविक हम दोनों, खेवें बन स्वतंत्र जलयान,
सागर की तरङ्ग उठ उठ कर है कर रही सतत आह्वान।
देख रही हूँ चित्र उदधि का आँखों में है वह तसवीर,
जब हम दोनों की नौका भी बढ़ती होगी सागर चीर।
हल सा जल में हलचल करता खेत जोतता हो पतवार,
कभी लहर पर उठ जाते हों देख रहे हों जल संसार।

कितना साहस इन पंक्तियों में भरा है। कौन सी काया है जो इनके ओज पर अपनी कायरता निसार न कर दे? संसार-सागर में दम्पति का धर्म—उसका कर्तव्य—ही उसकी नौका हो जाता है। बेगम चाहती है कि नाविक के जीवन की भाँति ही ग़यास भी अपना जीवन आपत्तियों के घेरे में डाल ले, कोई परवाह नहीं। राजपूत ललना के लिए यह भाव समझना कितना सरल है। प्रताप स्वदेश-प्रेम में वन वन घूमता है, जहाँ उसके सैनिकों को उनकी पत्नियाँ रणोचित केसरिया धारण कराती हैं वहीं तो ग़यास को ले चलना है, फिर बेगम उसे विपत्तियों का सामना करना क्यों न सिखाए? नाविक का जीवन कितना अस्थिर, कितना क्षण-भंगुर है? इसीलिए तो टेनिसन का बाल-नाविक समुद्र-कन्या की बातों में नहीं आता। वह सामुद्रिक कठिनाइयों की याद दिलाती हुई कहती है कि तुम्हारा अन्त उन चट्टानों के तमपूरित गह्वरों में होगा जहाँ छोटी मछलियाँ और घोंघे तुम्हारे भग्न पार्श्व की अस्थियों के साथ खेलेंगे। पर वीर का हुंकार विपक्षी की ललकार से और भी भीषण हो जाता है। बाल-नाविक घृणा से फिर जाता है:—

"Fool" he answered, "death is sure
To those that stay and those that roam,
But I will never more endure
To sit with empty hands at home."

उसकी माता और बहनें उसको समुद्र-यात्रा से रोकती हैं, उसका

पिता उसे बहुत कुछ ऊँचा नीचा समझाता है पर वह क्या कर सकता है? उसकी तो अन्तरात्मा उनको धिक्कार उठती है। उसकी नस नस से आवाज उठती है:--

"God help me! save I take my part
Of danger on the roaring sea,
A devil rises in my heart,
Far worse than any death to me."

बेगम के हृदय में भी यही बात बैठी हुई है। घर पर चुपचाप बैठने में उसके हृदय पर भी वही शैतान अधिकार जमा लेता है जो मृत्यु से भी अधिक भयानक, अधिक निस्तब्ध है। वह सागर का चित्र अपनी आँखों में देख रही है। बड़ी पक्की कल्पना है। सोचती है कि जब उनकी नौका जल में बढ़ती होगी एक अपूर्व स्वतंत्रता का आनन्द अवेगा। उसके लिए जलाम्बुधि की भीषणता कुछ नहीं है। समुद्र खेत मात्र है, पतवार हल है, डर क्या है? कितनी सुन्दर समानान्तरता है। समुद्र की हलकी लहरें खेत की हराई की भाँति लगती हैं, पतवार उनको तैयार करता आगे बढ़ता जाता है। ऊँची लहरों पर चढ़कर कभी कभी नाविक जल-संसार का भी झलक पा जाया करता है। कहीं सागर के छोटे जल-पक्षी उड़ उड़ कर मीन पकड़ रहे होंगे, कहीं मूँगा समूह का नवीन द्वीप बना होगा--

जिसपर बैठे अगणित पक्षी सेते हों अंडे अपने।
लख एकान्त तपस्वी मानो बैठें हों माला जपने--

कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा है, भला जन-कोलाहल से दूर इससे अच्छा एकान्त तपस्वियों को मिल सकता है? वन में फिर भी पहुँच हो सकती है पर समुद्राङ्गण की एकान्त निस्तब्धता को कौन भङ्ग कर सकता है? बेगम की नौका भी उस निस्तब्धता को भङ्ग कर दोष अपने सिर नहीं लेती, आगे बढ़ जाती है--

पालकेतु को देख दूर से, मन्द पवन में लहरता,
डाँड़ों से लहरों का मस्तक चूर चूर करता आता,

मेरा वह जलयान किसी मद्यप सा चलता डगमग चाल,
बढ़ता होवे, पक्षी भय से, उड़कर दृष्टि विहङ्गम डाल,
मेरी नौका के ऊपर ही ऊपर जब मँडराते हों,
तब उनके ही साये में हम गीत प्रेम के गाते हों।

नौका बढ़ती जा रही है, पाल उसकी ध्वजा है जो हवा से भर कर लहराती है। नौका के डाँड़ लहरों के मस्तक चूर चूर करते बढ़ते जाते हैं। लहरों की चपेट से जब नौका हल्के हल्के बढ़ती है उसकी चाल मद्यप की सी हो जाती है। ग़यास की ऐसी चाल कितनी ही दफ़े बेगम ने देखी होगी उसे उसका भान बराबर होता रहता है। ऐसे ही समय इस विपत्ति के भय-स्थल में भी ग़यास के भय संचार को कम करने के लिये वह वीर नारी गान छेड़ देना चाहेगी। उसके कथन में बड़ा अनोखापन है, बड़ा romance है—

वह समुद्र-कन्या ढूढ़ूँगी—अर्धमीन आधी नारी,
जब से कथा सुनी माता से दरस लालसा है भारी।

प्रतीची की संहर्त्री चोट खाकर भी हमारे बहुत से अंधविश्वास दूर नहीं हुए। स्वयं पश्चिम अपनी वैज्ञानिक सत्ता के कारण ईश्वर तक को न मानता हुआ भी बहुतेरे अंधविश्वासों तले दबा हुआ है और समुद्र के स्मरण अथवा उसके प्राथमिक परिचय के समय यूरोप-निवासी को भी ग्रीक mermaid (समुद्र-कन्या) की याद आही जाती है और वह संदेहात्मा अतीत के लुभावने दृश्य का आनन्द लेने लगता है। बेगम ने भी अपनी माता से, दादी से, वह जलकन्यावाली कहानी सुनी होगी। समुद्र की याद आते ही उसे अपने हृदय-पटल पर खिंची आधी मीन आधी नारी की तस्वीर का स्मरण हो ही आया। अपनों में पानी खोने से अच्छा है विदेश में अनजाने मर जाना—हिन्दू नीतिकार ने इसका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण चित्र खींचा है—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयः पक्वफलाम्बुभोजनम्।

तृणानि शय्या परिधान वल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीन जीवितम् ॥

अपने दयादों के बीच धनहीन जीवन बड़ा ही दुखमय होता है। उनकी व्यङ्गवाणी हृदय में निरन्तर आघात करती रहती है। बेगम ऐसे तिरस्कार को नहीं सह सकती। कहती है—

सागर पर विचरूँगी सुख से मोती या भर लाऊँगी,
या दुनिया को पता न होगा चुपके से मर जाऊँगी।

या तो वह मोती भर लाएगी या समुद्र के गम्भीर गर्भ में सदा के लिये सो जाएगी।

क़ाफ़िलों की याद बड़ी सामयिक है। बहुतेरे दरिद्रों को यदि बेगम ने भारत से व्यापार कर धनी होते देखा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। भारत पर अथक हमले करने वाला महमूद भी छोटो अवस्था में अपने पिता की राज्यसीमा पर बैठा दीनारलदे ऊँट गिना करता था। दीनारों की चमक ने उसके हृदय में अदम्य धनलिप्सा की आग जगा दी—ईर्ष्या और तृष्णा की लपटों ने इस हरे भरे देश को जलाकर मरुभूमि बना डाला, कंगाल कर दिया। लोलुपता और अतृप्ति की जिह्वा शताब्दी के चतुर्थांश तक इस प्रकार लपलपाती रही कि उसकी भीषणता की कथा मथुरा और सोमनाथ ही क्या, पंजाब और मध्यदेश भी कहेंगे। इस 'सोने की चिड़िया' को देख आर्यों की जिह्वा से जो लोभ के जलविन्दु टपके आज तक उनका ताँता नहीं टूटा। इस बीसवीं शताब्दी में भी अन्य राष्ट्र इसे आत्मसात करने के लिए अनन्त मुँह खोले सतृष्ण देख रहे हैं। बेगम को प्राचीन कहानी का कुछ स्मरण हो आया और उसने भी अपने दिल की कह ही डाली—

भारत है सोने की चिड़िया, चलो वहीं का करें सफ़र,
हिम्मत करो, कमर तो बाँधो, मुश्किल है अब करनी सर।

देखो कदाचित तुम्हारा भविष्य भी भारत के सम्पर्क से जगमगा उठे! इस पारस पत्थर से लग कर ग़ुलाम तक राजा बन बैठे। बेगम

के मुँह में भी पानी भर आया है। बिलकुल चलने को तय्यार हो गई है। ग़यास किसी प्रकार तय्यार हो जाय। कहती है—

किसी क़ाफ़िले के सँग पैदल चल ही दें अब बहुत हुआ,
अपनी लो तुम तेग़ हाथ में, मैं भी करती चलूँ दुआ।

अबला और कर ही क्या सकती है—ग़यास वीरवर बनकर अपनी तलवार सम्हाले और उसकी सहधर्मिणी उसकी विजय के लिए, उसके कल्याण के अर्थ प्रार्थना करे।

ऐसा नहीं कि बेगम की बातों का ग़यास पर कोई प्रभाव न पड़ा हो। बेचारा बड़े पशोपेश में पड़ा बेगम की बातें सोचने लगा। रात बीत चली पर उसके विचारों का स्रोत नहीं टूटा। एक ओर उसका शिथिल स्वभाव देशप्रेम के नारे लगाता था दूसरी ओर बेगम की बातों की सत्यता उसको घबड़ा देती थी। बेगम का प्यार और पातिव्रत उससे छिपा न था। वह किसी प्रकार नहीं चाहता था कि उसकी सहधर्मिणी की इच्छा की पूर्ति न हो। विदेश के कष्ट उसके नेत्रों के सामने घूम जाते हैं। डरता है कहीं ऐसा न हो कि स्वदेश के दर्शन से भी पीछे वञ्चित हो जाएँ। आशा सदा प्यारी होती है पर सच्ची नहीं—

आशा टिमटिम सी करती है, हुआ चाहती है वह गुल,
किस विदेश में पावेंगे हम, अपना गुल, अपनी बुलबुल?

ग़यास सच्चा है—अपनी—भीतर बाहर की—सभी बातें सोचता है, कहता है, संकोच नहीं करता। आशारूपी दीपशिखा, टिम टिम कर रही है, स्नेह जल चुका है, प्रभातागमन से उसका अन्तिम कम्पन अब शिथिल होने लगा है। अब शीघ्र ही उसका क्षीण कम्पन भी विलीन हो जाएगा। पर क्या यही उसका अन्त है? शायद आशाकली खिलकर फूल हो जाय। 'हुआ चाहती है वह गुल' में कुछ इङ्गीत भी ऐसा ही है। भला किस विदेश में ग़यास 'अपना गुल' और 'अपनी बुलबुल' पाएगा? उसका भय निरा कल्पित नहीं है। बुलबुल की दर्द-भरी आवाज़ जैसी फ़ारस ने सुनी है किसी देश ने नहीं सुनी। उसकी मादकता का रहस्य सिवा ग़यास के और जान कौन सकता है? शराबी

का नशा कौन नहीं छुड़ाना चाहता? पर कितने ऐसे हैं जो वह आनन्द, वह विभोर बनानेवाला नशा, वह कष्टविस्मारक संजीवनी पूर्णरूप से जानते हैं ? मद्यप अपना नशा छोड़ते समय कितना त्याग करता है, किस अंश के आनन्द को ठुकराता है वह दूसरा कौन है जो भुक्तभोगी न होते हुए समझ सके ? बेगम क्या उस नशे को जानती है ? शायद। ग़यास जानता है कि बेगम की बात टालना उसके सामर्थ्य के बाहर है, बस इतनी ही बड़ी बात है। उसको पतन से बचाने के लिये इतना पर्याप्त है। जिस समय वह समझता है कि बेगम की बात वह टाल नहीं सकेगा उसकी नसों में शैथिल्यसंचार हो आता है, आशा पानी भरने लगती है—करुणा से भरी ऊपर की लाइनें निकल पड़ती हैं। सच है—किस विदेश में पावेंगे हम अपना गुल, अपनी बुलबुल ? आख़िर उसने कह ही डाला—

है फिर भी अनुरोध प्रिया का, हठ कैसे यह टालूँ मैं ?

पर—

मैं ही डूब रहा हूँ दुख में, कैसे उसे सम्हालूँ मैं ?

सोचता है—बेगम को समझाने के बड़े प्रयत्न किये, उसे बहकाने के लिये बड़े चकमे दिये पर उसने एक न सुनी, एक नहीं चलने दी। कोई युक्ति उसने उठा नहीं रखी, पर कोई चली नहीं, फिर क्या करे ?

नहीं 'चाल' कुछ और सूझती, चलो मानलें अपनी 'मात'—

शतरंज का खिलाड़ी भरसक 'मात' नहीं मानता पर क्या करे जब कोई चाल नहीं सूझी तो माननी ही पड़ी। मनुष्य बड़ा ही दुर्बल जीव है और उसकी दुर्बलता का कारण उसकी बुद्धि है। जिस समय वह एक बात को पकड़ लेता है उसकी बुद्धि उसके पथ को उचित बताने लगती है। इसका योग मनुष्य के पतन और उत्थान दोनों के साथ होता है। फिर सत्य के अनुभव में जब चित्त सतर्क हो जाता है तब बुद्धि आगा-पीछा नहीं सोचती, चुपचाप सिर झुका देती है। जिस समय ग़यास ने सोचा कि उचित या अनुचित जो भी हो उसे बेगम की बात माननी ही पड़ेगी। उसी दम बेगम की सच्ची अवस्था उसकी आँखों में

झलक गई। सोचने लगा कि उसकी प्यारी पत्नी ने ईरान में बड़े दुख भोगे। जब वह पहले पहल अपने पिता के घर से आई थी दुख का नाम नहीं जानती थी पर प्रतिकूल विधि के विधान ने ग़यास के संसर्ग में कलंक गोया था उसके घर आते ही अभाग्य का सामना हो गया। जिस समय उसे सत्य का बोध हुआ उसकी आत्मा आनन्द से थिरक उठी। बेगम ने उसके हित-साधन के निमित्त अनन्त क्लेश सहे थे क्या यह उसकी एक बात भी नहीं मान सकता? और फिर वह बात भी क्या उसी के हित को नहीं है? तब वह क्यों रुके? अब क्या सोचना—

बस, निश्चय है, तय कर डाला, नहीं हिचकने का कुछ काम,
है प्रस्थान प्रात ही मेरा, हे स्वदेश, है तुझे सलाम।

आशा की दीप-शिखा विलीन तो हो गई पर किसमें? उषा की लालिमा में, जब स्वर्ण से चमकते दिवस का आरम्भ होता है। दिवस के आरम्भ का सूचक अरुण-शिखा भी ठीक इसी समय बोल उठा। सोती हुई बेगम ने करवट बदली। ग़यास के हृदय में प्रेम-स्रोत उमड़ आया था। उसे अपनी बेगम को सूचित करना था कि उसके विवेकशील वाक्यों का प्रभाव पत्थर के ऊपर बाण का नहीं था।

प्रिया को जगी देख ग़यास बोल उठा—"वह जग गई!" इसी समय,

"···कौन? क्या प्रियतम? कब से है निद्रा टूटी?"
बेगम आँखें मलती बोली, बिखरे वस्त्र, लटें छूटीं।

कवि की कल्पना ने रङ्ग-मञ्च का चित्र खींच दिया है। बेगम अभिनेत्री सी प्रतीत होती है। सोकर उठी बेगम के वस्त्र बिखरे पड़े हैं, लटें उसकी छूटी हुई हैं। पति की मुद्रा से ही वह जान गई कि वह कुछ निश्चय कर चुका है, उसके नेत्रों की लालिमा से ही पता चल गया कि उसने रात आँखों में ही काटी है। पूछती है—

बार बार अँगड़ाई कैसी? नींद नहीं क्या आई है?
नयन-गगन के छोरों में अरुणाई कैसी छाई है?

ग़यास का भावुक मन कवि हो गया। छूटी लटों ने घटा का काम किया। ग़यास मयूर सा थिरक उठा। उसकी नस नस में कम्पन होने

लगा। भावुकता ने भाषा धारण की और वह गा उठा—

"भामिनि ! भारत में चलकर मैं सोये भाग्य जगाऊँगा,
तेरे मुख पर सुख की आभा लख निहाल हो जाऊँगा।
आँखें मेरी कड़ुवाती हैं आज छूटता है वह दौर,
अपने हाथों से दो प्याले केवल आज पिला दे और।"

मद्यपो का उत्थान इतना और कहीं नहीं हुआ। साहित्य में मद्य का विसर्जन इस आनन्द और स्वेच्छा से किसी पात्र ने नहीं किया। ग़यास इस समय के बराबर कभी नहीं उठा। इस त्याग में उसने वह विभूति अर्जित की जो उसे कभी प्राप्त नहीं थी। सारा निसार कर दिया—अपनी सहधर्मिणी के मुख पर सुख की आभा पर उसने अपना सारा आनन्द निछावर कर दिया। आज उसका वह 'दौर' जिसने उसके भाग्य को पतन की नींव तक पहुँचा दिया था छूटता है। कोई लिप्सा नहीं, सारी तृष्णा दब सी गई, पर वह चाहता है कि उसकी प्यारी अपने हाथों एक बार अन्तिम प्याले भर दे—अपने हाथों से दो प्याले केवल आज पिला दे और। इन दो प्यालों की बड़ी विसात है—इन्होंने बाकी जीवन की सारी मद-तृष्णा सदा के लिए शान्त कर दी। परन्तु इनका अन्त क्या यहीं हो गया ? ग़यास के पक्ष में तो हो गया पर उसकी बेगम ने इन दो प्यालों के भरने का कार्य उस निष्ठा से किया कि एक भावी सम्राट ने इन्हीं दो प्यालों के बदले अपना सारा साम्राज्य मय अपने शरीर के दे डाला।

बेगम के सुख की सीमा न रही। इस बुरे नशा को छुड़ाने के लिए उसने क्या नहीं किया था ? कौन सा उपाय रख छोड़ा था ? आज ग़यास से डूबते स्वामी को उबार कर पतिप्राणा बेगम कितनी प्रसन्न हुई। गदगद हो गई। यथेप्सित वस्तु का आज उसे लाभ हुआ। आनंद-सागर में निमग्न उसका वर्णन कौन कवि कर सकता है ?

उछल पड़ी, हर्षित हो बेगम, लिपट गई झट बलि जाकर,
अधर हिले कहने कुछ ज्योंही, चुम्बन की लग गई मुहर।

धन्य ! ग़यास धन्य ! उसने अपनी प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं

सुनना चाहा—बेगम पर कृत उपकार को उसने कितनी जल्द भुला दिया ?

स्वदेश छोड़ना बड़ा कठिन है। जहाँ बचपन के खेल खेले, किशोरावस्था बिताई, यौवन-मद में झूमा, प्रौढ़ावस्था में उस जन्म-भूमि को त्याग देना कुछ सरल नहीं। अभी ढाई शताब्दी पूर्व जब इंग्लैण्ड-निवासी अमेरिका बसने के लिए अपने सम्बन्धियों को जहाज पर चढ़ाने आते थे बन्दरगाह करुणा और आर्तनाद का स्थल बन जाता था। कौन जाने फिर लौटना होगा या नहीं, स्वदेश के दर्शन होंगे या नहीं। जिस माता को कन्या ससुराल भेजनी होती है वह कन्या को ही तैयार करने में अपने आँसू दबा रखती है। बराबर यत्न इस बात का करती है कि कहीं कन्या उसमें आँसू देख न ले वरन उसका दुःखावेग और बढ़ जाएगा। माता का दुख विवाह के कार्य-विशेष से भी दबा रहता है पर कन्या के विदा होते ही उसका दुख आँखों में उमड़ आता है। जब उसको अपनी अवस्था की याद आती है तब वह जानती है कि उसने कैसा रत्न अपने पास से दूर कर दिया, खो दिया। बेगम के लिए ग़यास को तैयार करना कुछ आसान काम नहीं था। उसकी गर्मी में उसने नहीं समझा कि वह कर क्या रही है। एकाएक जब ग़यास विदेश जाने के लिए तत्पर हो गया तो बेगम ने अपनी ओर देखा—प्यारा देश छूटता था, सारे नाते टूटते थे। ईरान के बादशाह के मंत्री ख़्वाजा मुहम्मद शरीफ़ के वंशधर के दुश्मनों की कमी तेहरान में न थी, उनके बैर से जान ही बचती परंतु फिर भी स्वदेश-त्याग का महान कष्ट कुछ कम नहीं होता। सब प्रकार के कष्ट सहकर भी मनुष्य साधारणतया अपनी जन्मभूमि छोड़ना नहीं चाहता, पर परिस्थिति बहरी होती है, अन्धी होती है, प्रेम को नहीं सुनती, कष्ट को नहीं देखती। बेगम अपना कष्ट जानती थी उसको तौल चुकी थी। अब क्या सोचना था? अपने प्यारों से विदा लेने लगी। उसका कुनबा छोटा था, मित्रों की संख्या इनी गिनी थी। इनमें प्रथम स्थान इस शस्य-प्रभवा जननी जन्मभूमि का था—

मातृभूमि, तेरी झाँकी यह कभी न मुझको भूलेगी,
तेरे इस गुलाब की लाली, आँखों में नित फूलेगी।

मातृभूमि ईरान है जहाँ गुलाब की क्यारियों का ताँता नहीं टूटता। उसके केवल स्मरण से ही बहुत सी वस्तुओं की याद आ जाती है। गुलाब ईरान की सबसे प्यारी वस्तु है। उसकी वक़त काश्मीर के ज़ाफ़रान के खेतों से किसी प्रकार कम नहीं। सो अब ईरानी गुलाब कहाँ देखने को मिलेंगे केवल उनकी लाली आँखों में संचित रहेगी। बेगम के नेत्रों की अरुणाई क्या गुलाब की लालिमा से किसी प्रकार कम थी? फिर भी गुलाब की लाली अब कल्पना की ही वस्तु हो जाएगी। 'केलि-कुंज' की पत्ती पत्ती में गूँजते हुए बुलबुल का गान बराबर बेगम के कर्णपुटों में तरङ्गित होता रहेगा—बुलबुल तेरी प्रेम-कहानी उठ उठकर मैं गाऊँगी। बुलबुल के प्रेम-संगीत को सुनकर रात में वह कितनी ही बार उठ जाया करती थी, उसकी ध्वनि की मादकता अब कहाँ मिलेगी? पर उसकी स्मृति जीवित रखने के लिए बेगम स्वयं उस नाद का अनुकरण करेगी—उसकी प्रेम-कहानी निशीथ की निस्तब्धता में गा गाकर सुनेगी। बेगम की नज़र मृगछौने पर पड़ती है जो उसका विजित होकर बड़ा प्यारा हो गया था। शकुन्तला की भाँति उसकी दृष्टि उस पर स्थिर हो गई। किस प्यार और कारुण्य से वह उसकी ओर टक-टकी बाँधे निहार रहा था। बेगम की व्यथा पुरानी हो गई—

मृगछौने! क्या मुँह तकता है, कैसे संग तुझे लूँगी?

यात्रा दूर की है, दुर्व्यवस्थाओं और कष्टों से ख़ाली नहीं। अपने आप तो दुख झेलने को तत्पर ही है उसे क्यों कष्ट दे? दिल सम्हाल कर कहती है—

मेरा रुचिर खिलौना है तू तुझे छोड़ती जाती हूँ,
कितने और सुकोमल नाते, सभी तोड़ती जाती हूँ।

मृगछौने पर ही अकेले नहीं बीत रही है यह बात बेगम उसके चित्त में बिठा देना चाहती है। अपना-सा कष्ट सहनेवाले कई हों तो कष्ट कुछ कम हो जाता है। मृगछौने को यही समझाकर शान्त करना

चाहती है। अब वह उसके गले में पड़ा पट्टा—पट्टा जिससे क़ानूनी अधिकार का बोध होता है—तोड़कर उसे ग़ुलामी से आज़ाद कर देना चाहती है पर यह ऐसी ग़ुलामी है जिससे ग़ुलाम बराबर बँधा रहना चाहता है। बेगम उसे अपने साथ ले नहीं जा सकती, अच्छा है अगर वह स्वतंत्र होकर बन बन स्वच्छन्द चौकड़ी भरे। अपनी शुष्कता फिर भी उसे खलती है और वह कह उठती है—

कभी कभी इस प्यारी कुटिया की भी कर देना फेरी,
देख समय का फेर न मन में लाना निठुराई मेरी।

सचमुच यदि समय का फेर न होता, बैरियों के सुयोग के, और अपने कुदिन न आते तो बेगम इस अनन्य प्रेमी को भला क्यों बिलग करती? यदि जीवन बचा रहे, भाग्य फिरे तो फिर ईरान लौटेगी, अपने प्यारे मृगछौने को हृदय से लगाएगी, पर इस आशा पर उसे विश्वास नहीं होता। उसका भरा हुआ हृदय उमड़ पड़ता है—

साँस खींच कर कहते कहते बरस पड़ीं आँखें झर झर,
आँसू पोंछ ग़यास बेग ने लिया अंक में उसको भर।

दूसरा सर्ग

दूसरा सर्ग कई प्रकार के दृश्यों का रंगमञ्च है। कुछ दृश्यों का चित्रण तो काव्य के विचार से बड़ा कठिन है। इसमें सबसे सुन्दर वर्णन कारवाँ के प्रस्थान का है। सूखी मरुभूमि का बड़ा सचित्र और सरस वर्णन है। ग़यास और बेगम का क़ाफ़िला सूखे पहाड़ों, समतल मैदानों और कटीली झाड़ियों से होकर बढ़ता जा रहा था। ऊँटों की लम्बी क़तार चुपचाप बढ़ती जाती थी। बालू में चलने से ऊँटों के पाँवों की गद्दियाँ शब्द नहीं करतीं। इस नीरवता में कभी कभी कोई ऊँट झाड़ियों में मुँह दे लिया करता। उनके पीछे दाहिने बाएँ पैदल चलनेवाले थे जिनके पाँवों में चलते चलते छाले पड़ गए थे। दिन भर के थके माँदे जब सन्ध्या समय मंज़िल पर पहुँचे तो उनके चेहरे पर आनन्द की रेखा फूट पड़ी। जिसने श्रम नहीं किया उसने श्रमोत्तर आराम क्या जाना? क़ाफ़िलेवाले कमर खोलकर सीधी करने लगे। भार से हल्के होकर कुछ ऊँट हरियाली की ओर झुके, कुछ जुगाली करने लगे। रात में सोकर सबने मार्ग-श्रम खो दिया। तड़के ही आज़ान सुनकर सबकी आँखें खुल गईं, सुबह की नमाज़ अदा कर सब नित्य नैमित्तिक पथ पर चल पड़े। इस प्रकार—

> मंज़िल पर मंज़िल तै करता दूर छोड़ता हुआ वतन ,
> बढ़ता रहा क़ाफ़िला आगे करता पार नदी-गिरि-बन।

सब अपनी अपनी धुन में थे—

> केवल उनमें दो मानव थे जो न कहीं पर हरे हुए—
> एक सुन्दरी थी उनमें औ उसके संग था एक नागर ,
> दोनों के विशाल नयनों में लहराता चिंता-सागर।

बेगम और उसका ग़यास क़ाफ़िले में होकर भी उसके नहीं थे। उनका संसार और ही था। दुख का अतीत अभी छोड़ा था, सामने

अदृष्ट भविष्य का अनन्त विस्तार था। भला इस दम्पति को क्या रुचे? आह भरती बेगम बढ़ रही थी—

> गहरी साँसें बारबार ले प्रियतम से कहती ललना,
> छलनी पैर हुए जाते हैं कितना रहा और चलना?
> नित कह देते हो, हे प्रियतम, बस थोड़ा ही और रहा,
> पता नहीं वह हिन्द कहाँ है, है मरुस्थली विकट महा'।

कितनी स्वाभाविक उक्ति है! इस 'थोड़ा और' का महत्व पैदल चलनेवाले ख़ूब जानते हैं। ग़यास उसे सान्त्वना देता हुआ बढ़ता है पर लक्ष्य बड़ी दूर है। हिन्द स्वर्ण का नगर—स्पेन का एल्डोरेडो—सुदूर पूर्व में अवस्थित है, जितना ही बढ़िए दूर हटता जाता है। अभी तो फ़ारस की ही मरुस्थली नहीं बीती, आगे निषध पर्वत की चढ़ाई पामीर के वक्ष पर अवस्थित है, तब कहीं स्वात और बाजोर, सोमा-प्रान्त और पंजाब। इतने में तो क्या से क्या हो जाए। बेगम सोचती है—घर कब का ओझल हुआ, कितने ही शैल-शिखर, नाले, बस्ती-बीहड़, नदी-नद, ऊसर पार कर डाले, पर कहीं उस हिन्द का पता नहीं। मारे कष्ट के बेगम तिलमिला उठी—

> प्यासे काँटे पग से लग लग तलवे चाट माँगते जल,
> झलके के मोती का पानी पिला उन्हें करती शीतल।
> काँटा हुई ज़बान प्यास से, दम अब है निकला जाता,
> चारों ओर विकट मरुस्थली का है दृश्य नज़र आता।

ख़्वाजा मुहम्मद शरीफ़ की पुत्रवधू को पैदल चलने का अभ्यास कहाँ? जिसने कभी मख़मल के नीचे पाँव नहीं रखे वह सैकड़ों मील पैदल क्योंकर चले? काँटों से बेगम के पाँव चलनी हो गए थे, चलते चलते उनमें छाले पड़ गए थे। उनके फूटने से कितना दर्द होता होगा। फूटे छालों से बालू पर चलना बड़े जीवट का काम है। बेगम ही इसे बर्दाश्त कर सकती थी। जो बड़े हौसले रखता है वही उनको मुश्किलें भी आसान करता है—

गिरते हैं शह सवार ही मैदाने जंग में,
वह तिफ़्ल क्या गिरेगा जो घुटनों के बल चले ?

प्यास से ज़बान सूखकर काँटा हो गई है और उसकी भीषणता शुष्क मरुस्थली और भी बढ़ा देती है। बेगम ने घर पर ग़यास का जी बहुत बढ़ाया था आज उसका जी दुख से भर गया। सहधर्मिणी का कार्य है पति को उत्साहित करके कर्म मार्ग पर आरूढ़ करा देना और सहधर्म का विचार करते हुए उसका अनुकरण करना। फिर स्त्री का कार्य समाप्त हो जाता है। विपत्तियों के मार्ग पर आरूढ़ होकर उनका शमन करना पुरुष का कार्य है। फिर भी बेगम दुख से अपने कर्तव्य से विचलित हुई ? अब भी वह पति का मुख देख कर दुख की भीषणता को पैरों तले रौंदती हुई निरन्तर मरुभूमि पर बढ़ती जाती है। उसका दर्द ईरान में घर के वैरियों के व्यङ्ग से कहीं हल्का है। कायरता की गन्ध से उसको विरक्ति होती है। अपनों के बीच वह अपनी दुर्दशा नहीं करा सकती, बाहर वीरान में चाहे जितनी सह ले।

मरुस्थल का सच्चा वर्णन इस कवि ने किया है। रेगिस्तान का चित्र खड़ा हो जाता है। वह वर्णन उसी की पंक्तियों में पढ़ना अधिक प्रिय होगा—

जहाँ भू से मिलता नभ छोर,
चले जाते सब उसकी ओर,
और होता जाता वह दूर,
हुए जाते सब थक कर चूर।
चतुर्दिक बालू का संसार,
देख कर हिम्मत जाती हार,
तेज़ जितना चलते कस कर,
पाँव फँसते जाते धसकर।
विकट है सूखा रेगिस्तान,
वनस्पति का है नहीं निशान,
नाचती हैं किरणें भू पर,

आग जलती नीचे ऊपर।
ऊँट भी मुँह बाँधे रखते,
पाँव हैं फूँक फूँक रखते,
धूप से भूतल है ताया,
नहीं पक्षी की भी छाया।
चमकते कण हैं चम चम चम,
बढ़े जाते हैं सब बेदम।

इस छोटे मीटर में तुक मिलाना भी कुछ साधारण कार्य नहीं है। मरुभूमि का यह एक सुन्दर चित्र है। क़ाफ़िले की चाल का अच्छा वर्णन है। चलते चलते जब लोग थक जाते हैं और एकाएक नख़लिस्तान को देख लेते हैं तो साहस दुगुना हो जाता है, बेदम होकर भी हल्के हल्के झुरमुट की ओर बढ़ते हैं। मरुभूमि जैसे बालू के असीम विस्तार से सत्य ही समुद्र का आभास होता है। कवि ने एक सुन्दर रूपक बाँधा है:—

एकाएक आया नख़लिस्तान,
डूबतों ने पाया जलयान,
खजूर खड़े थे ज्यों मस्तूल,
पथिक लख गए हर्ष से फूल,
पाल से पत्ते लहराते,
हवा में उड़ते दिखलाते।

क़ाफ़िला रेगिस्तान तय कर आगे मटीले मैदान में पहुँचा जहाँ 'अमृत के कुण्ड' बने हिनुआने लोट रहे थे। निषध का पार्वतीय प्रांत आगे फैला हुआ था। फ़ारस की सरहद यहाँ समाप्त हुई, अफ़ग़ानिस्तान की सीमा का आरम्भ हुआ। ग़यास और बेगम ने स्वदेश को अन्तिम बार प्रणाम किया। सामने हिन्दूकुश की पर्वतश्रेणी दूर तक फैली थी जिसके गगनचुंबी शिखर दर्शकों की कल्पना में विचित्र चित्रों का प्रादुर्भाव करते थे। उसके शिखरों के कितने ही स्वाभाविक आकार

शिल्पी की वास्तुकला को लज्जित करते थे। जहाँ तहाँ दरी-गृहों में स्फटिक शिलाएँ प्रतिष्ठित थीं—

चक्करदार पड़ी थीं पर्वत के उर पर मग मालाएँ,
जिसपर चढ़ कर फूल तोड़तीं अश्वकान की बालाएँ।

स्वस्थ, सुडौल, वन प्रान्त की तितलियाँ अफ़ग़ान बालाएँ कवि को क्योंकर भूल सकती थीं? बेगम के लिए आगे की चढ़ाई बड़ी मुश्किल थी—'भारी पैर, दुःख की मारी, पथ श्रम से जो हारी है—ऐसी पत्नी की अवस्था देख ग़यास चिन्तासागर में डूबने-उतराने लगा, उसकी गहरी स्वाँसों से पत्थर का हृदय भी दरक जाता था—

चढ़ते चढ़ते उस पहाड़ पर बेगम का मुँह गया उतर,
उठता दर्द बैठता जाता हृदय चढ़ाई के ऊपर।

इस महाकाव्य का रचयिता Antithesis लिखने में बड़ा कुशल है। पर्वत पर चढ़ते चढ़ते बेगम का चेहरा उतर गया। उसकी अवस्था अच्छी नहीं थी। पर्वती चढ़ाई ख़ाली जवानों को बेसुध कर देती है यहाँ तो बेचारी प्रसव-पीड़ा के साथ साथ बढ़ती थी। जैसे जैसे उसकी पीड़ा उठती थी उसका हृदय बैठता जाता था। पर्वत के ऊपर एक भग्न कोट नीचे के मैदान पर प्रहरी की नाईं नज़र डाल रहा था। उस कोट का वर्णन कवि ने बड़ा सुन्दर किया है—

देख पड़ा पर्वत मस्तक पर मुकुट तुल्य इक कोट विशाल,
लतिकाओं के बूटे जिसपर फल के थे लटकाए लाल।
दृढ़ दीवारों में लोहे के फाटक बड़े लगाए थे,
बहुत मोर्चे देख चुके थे आज मोर्चा खाए थे।
नहीं बुर्जियों पर उसके था किसी संतरी का पहरा,
आगन्तुक को रोके जो कह 'कौन? कहाँ?' ठहरा, ठहरा।
वनबिलाव हाँ घूम रहे थे उस धुस की दीवारों पर,
गिद्धराज पहरे पर बैठा देख रहा था इधर उधर।
टूटे केतु दण्ड पर बैठा गरुड़ पंख फैलाता है,
मानो अपनी पंख-पताका ऊँचे चढ़ फहराता है।

दीवार जो गिरती जातीं समय - समर में खाकर मार,
बढ़ कर रिक्त-स्थान-पूर्ति करती जातीं झाड़ियाँ हज़ार।
कुछ दरार के घावों को विस्मृति-मकड़ी तुरंत आकर,
आशा - जाला की मरहम-पट्टी से क्षत देती है भर।

पर्वत के ऊपर का कोट उसके मस्तक के मुकुट सा प्रतीत होता था जिस पर चढ़ी, फैली लताओं के फल जड़े लाल की तरह शोभा पा रहे थे। दुर्ग के लोहे के फाटक कितने ही युद्ध देख चुके थे कितने ही मोर्चे ले चुके थे पर आज पानी की मार से उनमें मोर्चा लग गया था। आज इस भग्न दुर्ग का कोई रक्षक नहीं था, एक संतरी नहीं था जो आगन्तुकों को ठहरा ठहरा कर 'कौन ?' और 'कहाँ ?' पूछता। आज उसकी बुर्जियाँ ख़ाली थीं। हाँ बनबिलाव उसकी दीवरों पर निर्भय घूम रहे थे। संतरी का स्थान गिद्धों ने ले लिया था। ध्वजारहित 'केतुदण्ड' के ऊपर गरुड़ पंख फैलाए बैठा था। उसकी यह पताका विजयी गुप्त सैन्य और प्रसिद्ध रोमन लीजियनों की फहराती ध्वजाओं का स्मारक थी। समय की मार बड़ी भयानक होती है। इससे युद्ध में आजतक कोई नहीं ठहरा! बड़े बड़े रणधीर इसके गह्वरों में खो गए जिनका पता तक नहीं। जिसने संसार में बड़े बड़े योद्धाओं के प्रहार सहे थे, उनका गर्व खर्व कर पीछे लौटा दिया था वही आज काल के कराल प्रहार को नहीं सह सका, क्षत विक्षत हो चला। फिर भी इस युद्ध में भी दुर्ग भरसक अग्रसर होने का प्रयास करता ही है। उसकी दीवारें जब जीर्ण होकर गिरती जाती हैं सर्वत्र फैली लताएँ शीघ्र उनका स्थान लेकर दुर्ग-प्राङ्गण को ढक लेती हैं। काल-प्रभाव से दीवारों में बड़े बड़े दरार हो गए हैं। ये दरार मानों युद्ध में लगे भारी घाव हैं जिनको मकड़ी रूपी वैद्य शीघ्र अपने जाले रूपी मरहम-पट्टी से भरता जाता है। रूपक पूर्ण और सुन्दर है। इस पर्वत का दुर्ग अफ़-ग़ानिस्तान की सरहद का किसी समय में रक्षक रहा होगा। यहाँ से ही अन्य देशों के आक्रमणकारियों की दुर्द्धर्ष अफ़ग़ान पहले पहल ख़बर लेते होंगे। ऐसे स्थानों के दुर्गों की बड़ी आवश्यकता और बड़ी

महिमा होती है। यह दुर्ग भी इसी प्रकार का था पर अब यह विशेष रूप से भग्न हो चुका था और इसमें वह बल नहीं रहा। कभी की बड़ी और सुन्दर इमारतें जिस प्रकार खण्डहर होकर दूसरे प्रकार का आश्रय हो जाती हैं उसी प्रकार यह दुर्ग भी अब अपना प्राचीन गौरव खोकर अफ़ग़ान दस्युओं का गुप्त अड्डा बन गया था। यहाँ से उनके हमले आगन्तुक, दुर्बल विदेशियों पर होते थे। इनके डर से ही कारवाँ में सशस्त्र योद्धा रखे जाते थे। ग़यास के क़ाफ़िले पर भी इनकी आँखें पड़ीं। एकाएक ये अफ़ग़ान डाकू हथियार लिए हुए दल के दल निकल पड़े। उनका चित्र यदि पूरा पूरा देखना हो तो कवि की पंक्तियाँ ही खींच सकेंगी—

> भौंहें उनकी चढ़ी हुई थीं, दृग थे लाल, बँधा पटका,
> ढाल पीठ पर, भाला कर में, ख़ञ्जर-छुरा बगल लटका।
> काकुल का पट्टा गर्दन पर, देह गठीली गढ़ी हुई—

इन डाकुओं को देखते ही क़ाफ़िला भी लड़ने को तैयार हो गया— कोई नई बात नहीं थी, ऐसी आपत्तियों के लिए क़ाफ़िले वाले सदा तत्पर रहा करते थे। नक़्क़ारे पर चोट पड़ी और सारा क़ाफ़िला सतर्क हो उठा। तलवारों से तलवारें बज उठीं, वीर गिरने लगे। लड़ाई का वर्णन पढ़ कर जगनिक का स्मरण हो आता है। बानगी के लिए कुछ लाइनें उद्धृत की जाती हैं:—

> वे उपद्रवी आते आते टूट पड़े इन लोगों पर,
> चलने लगीं ख़ूब तलवारें, बरछा, भाले, शर, ख़ञ्जर।
> ऊँटों पर से शर जब बरसे, लगे बरसने कटकर सर,
> तलवारें प्यासी ही तड़पीं शोणित की बह गई नहर।
> नहीं खेत में वे जम पाए सर बो दिए हज़ारों के,
> उठकर पानी माँग न पाए घाट उतर तलवारों के।

ख़ूब! शोणित की नहर बह चलने पर भी तलवारों की प्यास न बुझी, वे प्यासी ही तड़पने लगीं, हज़ारों सर बो दिए फिर भी जम न पाए, अफ़ग़ानों के पैर उखड़ गए। जो गिरे वे ऐसे गिरे कि

उठकर पानी तक न माँग सके। तलवारों के घाट उतर गए, जान से हाथ धो दिए पर पानी का एक क़तरा हाथ न लगा। अन्याय का रंग ऐसाही होता है, हज़ारों का वारा न्यारा करके भी कुछ हाथ नहीं आता। जैसा बोता है वैसा ही तो काटेगा? सो भी साधारण मैदान की तरह इस रेगिस्तान में तो हरी झाड़ी तक नहीं होती। कंधार पास ही था वहीं दम लेने की ठानी। सबने अपने मिलने जुलने वाले सँभाले पर—

बेगम के सिर पर मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा,
हृदय - स्रोत आँखों के द्वारा बाँध तोड़कर फूट पड़ा।

इसी समय बेगम की प्रसव-वेदना भी असह्य हो उठी, इन्हें पीछे छोड़ क़ाफ़िला आगे बढ़ गया। ग़यास घबड़ाया हुआ विस्तृत सन्नाटे को देखने लगा। सन्ध्या रात्रि में विलीन हो लगी—

क्षितिज गर्भ से नव ऊषा का जन्म हुआ ज्योंही नभ पर,
ओस-विन्दु सी लगी खेलने तृण दल पर कन्या सुन्दर।
नहीं ठहर सकती थी जिसकी अनुपम आभा देख नज़र,
ऐसी कन्या को माता ने लिया अङ्क में अपने भर।

हल्का अँधेरा घना नहीं होने पाया, क्षितिज के गर्भ से निकल कर दूज के चाँद ने पृथ्वी को दूध से नहला दिया। बेगम-क्षितिज-गर्भ से जो चाँदनी छिटकी उसकी छटा कुछ कम न थी। क्षितिज गर्भ से यदि नव-मयङ्क निकला तो सीपी गर्भ ने सुन्दर, निर्मल मुक्ता को प्रसव किया। सन्ध्या की हल्की गहराई चन्द्र ने क्षितिज पर न टिकने दी, यहाँ बेगम के दुख के बादल जो उमड़ उमड़ मड़रा रहे थे जहाँ के तहाँ हो गए। घने दुःख की छाया में बेटा बढ़कर जहाँ माँ के आँसू पोंछता वहाँ इस कन्या ने भी अपना भार माता पिता पर डाल दिया। विपत्ति की सीमा विस्तृत करने वाली इस कन्या की दीप्ति इस प्रकार थी कि उस पर आँखें नहीं ठहरती थीं। बेगम देखती रह गई। इस भीषण समय में तू कहाँ से आ गई—दुख की कातरता कुछ कम थी। पर कान्ति की छबि कुछ ऐसी थी कि माता के स्नेह का स्रोत उमड़ पड़ा।

कुरूपा कन्या के लिए भी जिस हृदय में अनन्त स्नेह-सागर लहरें मारता है उसके विस्तार की सीमा इस कन्या-रत्न को देखकर कितनी बढ़ी? यथार्थ सारे बादल छँट गए। बेगम ने स्नेह से उसे उठाकर अपने अंक में भर लिया, दूध की बहती धारा कन्या के मुख में खुल गई। एक संसार छोड़ कर आई है, दूसरा सामने पड़ा है, एक जाना है दूसरा अनजाना, पर इसका आरम्भ सुखद अवश्य है, आगे क्या होगा—बेगम क्या जाने?

ग़यास और बेगम के भाई को इस नवजात शिशु से कैसे स्नेह होता। ग़यास ने दुखों की घटा की ओर देखा और वह सहम गया। इस कन्या का भार तो असह्य है कौन उठाए? बेगम यदि इसे छोड़ने पर राज़ी हो जाय तो इस कलिका को इसी वन-प्रान्त में छोड़ दिया जाय। माता का दुःखावेग बढ़ेगा फिर घट भी जाएगा। ग़यास ने कार्यक्रम स्थिर कर लिया। उसने न जाना कि मनुष्य मनुष्य का भाग्य-निर्माता नहीं है, उसके किए कुछ नहीं होता, एक पत्ता तक नहीं हिल सकता। जो समयान्तर का एक पल नहीं जानता, जिसमें, अपने अतीत को निमिष मात्र भी लौटाने का सामर्थ्य नहीं वह अपना या दूसरे का भाग्य क्या बिगाड़ बना सकता है। फिर भी अपना भार ग़यास क्यों न हल्का करे! उसकी कन्या बढ़कर उसका कौन सा उपकार करेगी, क्या उसके भाग्य-नक्षत्र को चमका देगी, या उसका पेट ही भर सकेगी! फिर वह उसे अपने साथ क्यों ले? उसने अपना विचार कार्यरूप में परिणत कर दिया। लोग आगे बढ़ गए।

× × × ×

प्रातःकाल की रमणीयता में, वन प्रान्त की कुसुमित उपत्यका में, बेगम की नवजात बालिका सोई हुई है। उसका वातावरण नन्दन-कानन हो रहा है। वनस्थली के सौरभमय दृश्य का वर्णन कवि ने उस कल्पना से की है जिसकी समता आसान नहीं, जो कल्पना होकर भी सत्य दृश्य को लज्जित करती है—

इन घासों के मैदानों में, इन हरे-भरे मखतूलों पर,
इन गिरि-शिखरों के अञ्चल में, इन सरिताओं के कूलों पर,
जो रहा चाटता ओस रात भर प्यासा ही था घूम रहा,
वह मारुत पुष्पों का प्याला ख़ाली कर कर है झूम रहा।
पर्वत के चरणों में लिपटी वह हरी-भरी जो घाटी है,
जिसमें झरने की झरझर है, फूलों ही से जो पाटी है,
उसके तट के सुरम्य भू पर झाड़ी के झिलमिल घूँघट में,
है नई कली इक झाँक रही लिपटी घासों ही के पट में।

प्रकृति का निरीक्षण हिन्दी के कवि अब करने लगे हैं। कितने ही छायावादियों ने या तो अपना क्षेत्र छोड़कर उसे अपनाया है या अपनी कविता में आवश्यक परिवर्तन कर प्राकृतिक विषयों को स्थान दिया है पर उनकी कविता चुराई पेटी की तरह है जिसके भीतर का रहस्य वे स्वयं नहीं जानते। प्राकृतिक विषयों पर सर्वप्रथम कल्पना करनेवाले इस कवि ने प्रकृति-नटी को सूत्रधार की नाईं ताल ताल पर थिरका दिया है। भावों की ग्रन्थि यहाँ सुलझानी नहीं पड़ती। जो पर्वत-शिखरों की ऊँचाई पर उनकी उपत्यकाओं में, नदी-कूलों पर प्यासा डोल रहा था, ओस चाटने से जिसकी प्यास नहीं बुझी, वह मलयानिल अब पुष्पचषकों में भरे मद को पीकर झूम झूम झाँक रहा है। वन-प्रान्त की इस पुष्पित वनस्थली में झाड़ियों के विकम्पित अवगुण्ठन से दुरित घासों के पट में लिपटी जो एक कली खिली हुई है उसे वह झाँक झाँक मदालस से झूम झूम घूर रहा है। यह नवजात बालिका नगर के कोलाहल से दूर, मानव छल-छन्द से विलग प्रकृति-धाय की गोद में पड़ी खेल रही है। 'क्वारी क्वारी हिमबालाएँ'—ओस की नन्हीं नन्हीं सद्यःजात बूँदें—स्वर्ग से उतर कर उसके साथ खेल रही हैं। उनके हृदय में ऊपर की तारकमालाओं का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है मानो इस छबि पर वे भी निछावर होकर चरणों में उतर आई हैं—

यह नव-मयङ्क है उगा हुआ चारों दिशि छिटके तारे हैं,
ऊषा ने किए निछावर ये मोती जो प्यारे प्यारे हैं।

मनुष्य के चोचले जब उससे दूर हो जाते हैं वह देवता बन जाता है, प्रकृति उसकी सहचरी बन जाती है। नवजात शिशु प्रकृति के अञ्चल में पड़कर कली की भाँति बढ़ता है, जीवनचर्या का यथास्थान प्रबन्ध स्वयं हो जाता है, तृष्णा की आग बुझ जाती है। इस नवजात कलिका को प्रकृति ने अपने हार में पिरो कर धारण कर लिया है। धाय की गोद में इसको डाल जननी कहाँ गई? ऐसे सुन्दर, अनन्य मृदु, पुनीत जीवन के आरम्भ का आश्रय कहाँ है?

स्वर-लहरी तो है खेल रही परदे में जननी वीणा है,
इस भूमण्डल की मुँदरी का यह कन्या सुघर नगीना है।

सत्यमेव, इस स्वरलहरी से ही इसको जननी वीणा का बोध होता है। पर वह झंकृत वीणा है कहाँ? किस गायिका ने भाव स्वर में तरङ्गित कर दिए? सार्वभौम सौन्दर्य की प्रतिनिधि इस नगीना को अधिष्ठात्री अंगूठी कहाँ है? किस निर्बोध, निर्मम जननी ने इस रत्न को अपने से विलग कर दिया? ऐसे अनूठे शिशु की मुसकान किसे खली जिसने अपने स्तनों के दुग्धस्रोत से इसकी तृप्ति न कर स्तनांशुक भिगोया? इस बहिष्कृत सौन्दर्य का ह्रास नहीं हो सकता। ऐसी चमक चकाचौंध उत्पन्न करती है, ऐसा रूप आनन्द की जननी है, सत्य का आश्रय है, पवित्रता की पराकाष्ठा है, जीवन का रहस्य है, नाट्य का अभिनय है, इसे किसने खोया? खोए, पर प्रकृति संसार की जननी है, सब खोए नहीं मिलते हैं, उसने इस नव कुसुम का साहचर्य ढूँढ़ दिया, इसके लिये सुन्दर उचित साथियों को ढूँढ निकाला—

मृदु कलियाँ चुटकी बजा बजा कर बच्चे को बहलाती हैं,
कोमल प्रभात-किरणें हिमकण में नहा नहा नहलाती हैं।

बिना किसी प्रत्युपकार की इच्छा के प्रकृति का उपकार होता है। वन-कुसुमों के मध्य, उनकी मनोहारिणी आभा में, मधुर सौरभ में इस बालिका की आभा फूटी पड़ती थी। उनके ही जन्म, विकास और अन्त की भाँति मनुष्य का भी आरम्भ, मध्य और अवसान होता है। फिर भी मनुष्य के रहस्य का ज्ञान किसी को नहीं। देखें इस

सौन्दर्यधनी को कौन दरिद्र अपने भाग्य की भाँति सञ्चित करता है। देखें कौन वनमाली इस वनकुसुम को सुरभि प्राप्त करता है। अनन्त भविष्य के गर्भ में इसका भाग्य कहाँ छिपा है ? कैसा है ?—

यह भावी के रहस्यमय अभिनय की पहिली ही झाँकी है।
यह सुभग चित्र किसने खींचा ? क्या मूर्ति गढ़ी यह बाँकी है !

अभी तो यह भावी चरित्र के रंगमंच के बाल अभिनय का प्रथम तिरस्करण है, आगे सुदूर गर्भ में समर्थ सूत्रधार के इङ्गित पर किस प्रकार इस नटी का लास्य होगा कौन जाने ? कवि उदार हृदय से इसे सुभग चित्र कहता है पर इसके सौभाग्य का प्राक्कथन कौन मानव कर सकता है ? जिसको जीवन के प्रथम अवसर पर ही त्याग का दान मिला, अस्नेह का आदर मिला, तिरस्कार का पोषण मिला उसके सौभाग्य की कामना कैसे करता है, कवि ? और फिर पूछता भी है किसने यह बाँकी मूर्ति गढ़ी ? उसने, जिसकी सौन्दर्य-निधि में इस मूर्ति का बाँकापन, इसका लावण्य, अणोरणीयां भी दर्शनातीत है—

'देख अतुल सौन्दर्य तुम्हारा मुग्ध हुआ मन मेरा।
जिसने तुम्हें रचा वह कैसा होगा चारु चितेरा'—

उसे ढूँढ़ो, इसकी आभा स्वप्न के स्मरण की भाँति दूर हट जाएगी। फिर भी इस मृदुराशि की कमनीयता पर दृष्टिपात कर भावुक हृदय रो ही उठता है—क्या होगा इस सुघड़ अंकुर का ? वही जाने जिसने इसे पनपाया है, जिसने इस सुन्दर चादर की सजावट से अनन्त पूर्व इसके ताने भरे थे, जिसकी अछूती राह का पथिक वह स्वयं है, जो कभी पथ-भ्रष्ट नहीं होता—वही भाग्य-नियन्ता।

ऐसे सुन्दर और प्रिय वस्तु का निर्माण अवश्य ही बड़े महत्व का होगा। प्रकृति अपनी इस सफलता पर विजय पूर्वक विहँसेगी। क्यों न हो, बड़े प्यार और यत्न के साथ अप्राप्य सामग्री के सम्मिश्रण से कहीं इस रत्न की प्राप्ति हुई है—

सुरभित पुष्पों की रज ले, देकर मोती का पानी,
हिमबालाओं के कर से जो गई प्रेम से सानी,

पृथ्वी की चाक चलाकर दिनकर ने मूर्ति बनाई,
छवि फिर वसन्त की लेकर उसमें डाली सुघराई,
चर्खे नक्षत्रों के चल थे सूत कातते जाते,
जिनको लपेट रवि कर से थे ताना सा फैलाते,
सुन्दर विहङ्ग आ जाकर जिसमें बुनते थे बाना,
फिर सांध्य जलद भर जाता तितली का रङ्ग सुहाना,
ऐसे अनुपम पट में थी शोभित वह विश्व-निकाई,
जिसकी छवि निरख निरख कर मोहित थी विधि-निपुणाई।

विख्यात नायिकाओं की काया-धातु का निर्माण महाकवियों के होते हुए भी अपूर्ण सा प्रतीत होता है। उनकी प्रभा इस ज्योत्स्ना की कान्ति में कुछ क्षीण हो जाती है, इसकी कमनीयता और सौकुमार्य के समकक्ष महा मर्मज्ञ और कलाधुरीण की भी सृष्टि कुछ अप्रतिभ और अप्रकृतिस्थ हो जाती है। किसी साहित्य की कोई नायिका इस प्रकार के प्रकृति-साहचर्य एवं सौहार्द्र के बीच नहीं जन्मी, नहीं बढ़ी। महाकवि शेक्सपीयर की डेस्डिमोना बड़ी मधुर बड़ी नाज़ुक है पर उसकी मिट्टी भी इतनी क़ीमती, इतनी मृदु नहीं। नव कुसुमों ने इसकी मृत्तिका अपने रज से, अपने मकरन्द से—सो भी सुरभित—तैयार की है। ऐसी रज की मर्यादा साधारण जल से नहीं रखी जा सकती। मोती का जल यदि हो तो कहीं इसमें कान्ति की उचित प्रचुरता होगी। जब इस प्रकार का आब मोती से निकलकर इसमें बसेगा तब कहीं इस काया से कुन्दन को फीका कर देनेवाली ज्योत्स्ना बहिर्गत होगी। इस मोती के पानी का धनी साधारण मोती भी नहीं हो सकता। इस मुक्ता का प्रादुर्भाव समुद्र या सीपी में, ताम्रपर्णी या पाक में नहीं होता। वैसे होता तो सब स्थलों पर है—क्योंकि प्रकृति का दान भेदपूर्वक नहीं होता—परन्तु कुछ ही भाग्यवान अपनी सत्पात्रता के कारण इसको अपना हृदय पसार कर धारण करते हैं। वनस्पतियों के हरित पत्रों पर सुन्दर सुडौल ये मुक्ताएँ प्रातःकालीन वायु से खेलती रहती हैं। इन 'हिम बालाओं' की मृदुलता की उपमा भला और कहाँ मिल सकती

है। अपनी आर्द्रता के मृदुस्पर्श से जब ये 'हिम-बालाएँ' कुसुम रज में अपना पानी देकर प्रेम से स्वयं जिसे सानती हैं फिर उस मिट्टी की मृदुलता के क्या कहने ! इस व्यापक रूप का गठन भी कुछ आसान नहीं इसीलिए तो इस मिट्टी के लिए चाक का काम वसुन्धरा ने स्वयं किया। पृथ्वी का चाक चलानेवाला भी कोई साधारण कुम्हार नहीं हो सकता स्वयं सूर्य उसमें अपना तेज भर चुका है। उसकी आभा भी कभी न कभी इस मूर्ति में छिटकेगी। चन्द्र की ज्योत्स्ना रमणी की रमणीयता को बढ़ाकर उसमें स्त्रियोचित आकर्षण का निरूपण करती है सूर्य का तेज उसमें वह धवल धाम प्रतिष्ठित करता है जिसके समक्ष कोई ठहर नहीं सकता। इस बाला के रूप में चकाचौंध भरनेवाला सूर्य स्वयं कुम्हार का अभिनय करने पृथ्वी रूपी चाक पर बैठा और सचमुच कुछ वह चक्कर दिये कि पृथ्वी अपनी ही धुरा पर घूम कर सृष्टि का अनुपम अनन्त रूप, जीवन का शाश्वत स्रोत, अनजाने रच गई। ऋतु, दिवस की जननी, नक्षत्रों की गति वाहिनी, ग्रहों की रानी इस पृथ्वी ने आज वह वस्तु रच डाली जिसकी रचना पूर्व में कल्पनातीत और पश्चात अनहोनी ही होकर रही। ऐसे समर्थ ग्रहपति का ग्रहपत्नी से दैवसंयोग होकर ही इस लक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ। एक समय जीवन्मुक्त राजा जनक की निष्ठा से प्रसन्न होकर वसुन्धरा ने जानकी सी तेजस्विनी रूपराशि प्रसव की थी इस बार अपने आराध्य परिक्रमाग्नि सूर्य के तप से संतुष्ट होकर उसने एक नई मूर्ति उतारी जिसका इतिहास अभी भविष्य के गर्भ में है। पृथ्वी की गढ़ी विभूतियों में वसन्त का स्थान सर्वोच्च है उस रसीले वसन्त की सुन्दरता का पुट दिनकर ने इसमें पूरा दिया था। यह तो हुआ शारीरिक बाह्य आवरण जिसका सानी कहीं और दुर्लभ है, जिसकी कला चातुरी का श्रेय उस प्रजापति को है जिससे सारा चराचर जीवन पाकर धारण करता है और जिसकी अमृतमयी मरीचियाँ करुणासागर के दीनोद्धरण कार्य में संलग्न करों की भाँति बढ़कर उसके राग को उत्तरोत्तर संचित करती हैं।

अब आभ्यन्तर तत्व को किञ्चित् देखें। इस अपूर्व देवी की अन्त॰रात्मा का जीवन भी कुछ प्रकृति के अवयवों से उपमित हो सकता है। नक्षत्रों के चर्खे चल चलकर सूत कात रहे थे—जीवन-तन्तु का निर्माण कर रहे थे। उस सूत को स्वयं अपने हाथों लपेट सूर्य ताना करता था। इस दिन और रात के ताने-बाने में प्रातः सन्ध्या के प्रकृति-विरद-पण्डित पक्षी आ जाकर, सूत की भाँति 'बयों' में पैठ-पैठ कर, निकल-निकल कर सुन्दर वसन बुन रहे थे। इस शुभ्र दुकूल में पीत, लोहित, हरितादि सूर्य के सप्तरङ्ग कौन भरे ? वही जो इनका धनी हो। सो संध्या इस वसन-रञ्जन के कार्य का अनुपम सम्पादन करती है। जलद की आर्द्रता से सूखे रङ्ग को भिगो कर इस देव-दुर्लभ हिरण्य राग से रक्तपीतवान वस्त्र को रञ्जित करती है—

ऐसे अनुपम पट में थी शोभित वह विश्व-निकाई,
जिसकी छवि निरख निरख कर मोहित थी विधि-निपुणाई।

यह रञ्जित पट कबीर की वह 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' है जिसकी पावनता स्वतः पूर्ण है परन्तु आवरण की छाया से जिसका रङ्ग धूप-छाँह वस्त्र की नाईं कभी चमकदार कभी धब्बादार हो जाता है। स्वच्छन्द निर्लिप्त तेजस्वी आत्मा जब तेजक्षीण होकर जीवात्मा हो जाता है तब उसकी स्वच्छन्दकारिता परिमित हो जाती है, हीरे पर मिट्टी की तह जा बैठती है फिर तो उस 'चदरिया' पर मैल की एक तह जम ही जाती है चाहे जितने यत्न से भी कोई इसे ओढ़े। संसार तो वह काजल की कोठरी है जिसमें "कैसहू सयानो जाय काजल की रेख एक लागि है पै लागि है"। इस चदरिया में बिना मैल लगाए कोई 'जैसी की तैसी' किस प्रयत्न से 'धर' दे। देखना है इस प्रकृति-सहचरी की चादर जिसका बाह्यावरण सूर्य और पृथ्वी और ऋतुराज वसन्त से समर्थों ने प्रस्तुत किया है अन्त तक कितनी स्वच्छ रहती है।

भावुकता की इस संसार में कमी नहीं, एक-से-एक बढ़कर भावुक हैं। हृदय बड़े-से-बड़े हैं। दया की सीमा नहीं। अभी-अभी पूछा था कौन इसकी खबर लेगा ? जिसको सम्हालना था उसने सम्हाल लिया।

किसको ख़बर थी कि इस बियाबान में सरदार मलिक मसऊद अपना काफ़िला लिए आ पहुँचेगा, रास्ता छोड़ इधर की वनस्थली में आ उतरेगा ? पर त्राण का सेहरा उसी के सर बँधना था, त्रात्र-श्रेय उसी को होना था। इस नवजीवन को देखकर उसकी आत्मा स्वतः कह उठी—

नवल हृदय की दुर्बलता का पश्चाताप बना साकार,
ज्योति सरीखी कौन अप्सरा छोड़ गई तुमको सुकुमारि ?
किस दुखिया के मूर्छित मन सी पड़ी हुई हो पृथ्वी पर,
आँसू सी किसकी आँखों से, हे बालिके, गई हो झर ?
वारि—बीथियों की सरोजिनी, कविता की आनन्द-लहर,
मानसरोवर की मरालिनी, मरु - प्रदेश की सरिता वर,
तरुणी - अञ्चल की क्रीड़ा सी जिसे हिलाता हो मारुत,
कौन आँसुओं की भाषा सी, अलसाई आँखों सी बुत,
किस अनन्त को देख रही हो साधक की अभिलाषा सी,
चमक रही हो किस दुलहिन की नव-कल्पित मृदु आशा सी ?

ग़यास और बेगम की एक दुर्बलता ने उसे शरीर दान दिया दूसरी ने उसे वन के अञ्चल में डाल दिया। ऐसी दुर्बलता का साकार पश्चाताप बनी यह नवबालिका किसी अप्सरा ही द्वारा अवश्य परित्यक्त हुई होगी, दूसरे में इतनी सौन्दर्य-राशि उत्पन्न करने का सामर्थ्य कहाँ ? बेगम का पश्चाताप जबतक वह जीवित रहेगी उसके साथ अमिट रूप से लगा ही रहेगा। राग और व्यथा का रूप बनकर वह पृथ्वी पर पड़ी हुई है। दुखिया का मूर्छित मन कातर और दुःखातिरेक से पृथ्वी पर लोटता है भला यह किस कातरा की व्यथा है, किस भरे हृदय के करुण धन आँसू की बूँद-सी यह दुलक पड़ी है ? हल्के जल-तरङ्ग से खेलते नव-इन्दीवर-सी, काव्य-गान के आनन्द स्रोत की भाँति मादकता में पगी यह यहाँ कैसे आ पहुँची ? मानस की रानी मरालिनी, मरुस्थली के प्राण-स्वरूप, जीवन-प्रदायिनी जल की कृश रेखा की भाँति यह किधर से यहाँ आ बहकी ? रसिक पवन रसपूरिता तरुणी के अञ्चल में खेल खेलकर लहरें उठाता है ऐसी लहरों-सी चञ्चल, भाव-पूरित आँसुओं

की मूक भाषा-सी और मादकता की खुमारी भरी आँखों-सी बुत यह कौन है ? साधक अपनी क्रियाएँ समाप्त कर बड़ी गहरी अभिलाषा से सिद्धि की राह देखता है बालिका की आँखें आकाश की ओर लगी देख मसऊद को स्वभावतः साधक की साधना याद आ जाती है। बड़ी अभिलाषा की भाँति नववधू के भविष्य की आशा-सी अमूल्य इस बालिका को उसने उठा लिया। ऊपर की उद्धृत पंक्तियों में कितना रस है, कितनी मादकता और कितनी भावुकता है कोई समझ सकता है। कल्पना किस स्वच्छन्दता और सुघराई से कवि ने की है ? कुछ भाव तो बिलकुल अछूते से हैं। भावों की मृदुता सराहनीय है। 'साधक की अभिलाषा' में बड़ा ही रहस्य भरा है। दाम्पत्य जीवन जिस क्षण से आरम्भ होता है उसी क्षण से साधना का भी प्रारम्भ होता है। साधक की भाँति दम्पति भी सुदूर भविष्य में एक अज्ञात सुख की लहर से स्पन्दित होने के लिए देखा करते हैं। पर इस बार तो ग़यास और बेगम के दाम्पत्य भाव का आरम्भ बड़ा प्यारा होते हुए भी सांसारिक झंझावात में पड़ गया था इसी हेतु बालिका तो अनन्त रूपराशि लेकर अवतरित हुई परन्तु उस झंझावात में पड़कर माता-पिता के प्यार से बिलकुल ही वञ्चित रह गई। साधक की इष्टपूर्ति के प्रथम ही उसकी निष्ठा चलायमान हो उठी और फलस्वरूप उसकी अभिलाषा कुछ समय के लिए निद्राभिभूत हो गई।

मसऊद की दया ने शकुन्तला-प्रदत्त दुष्यन्त की अँगूठी की भाँति प्रियजनों का पुनर्मिलन करा दिया। इस नव-बालिका के रिक्त भाग्य के भाण्डार कोना-कोना मसऊद की उपस्थिति ने भर दिया। अथवा रिक्त ही क्यों ? सामयिक उलट-फेर तो भाग्य के ही होते हैं। इसके क्रूर भाग्य के उलट-फेर ने इसे शिलाओं के बीच डाल दिया था पर उसी भाग्य की प्रेरणा से मसऊद त्राणकर्ता बनकर इधर आ निकला। कौन किसको अपराध लगा सकता है ? भावी की चालें किसकी समझ के बाहर नहीं हैं ? ज़रा देर पहले किसने न सोचा होगा कि वन्य जन्तुओं की इच्छाएँ प्रायः बड़ी हिंस्र और नृशंस होती हैं कहीं कोई इधर आ न निकले पर

बजाय उनके एक मानव-रत्न, दया का स्रोत, आ पहुँचा जिसने इस मातृ-वञ्चिता, बुभुक्षिता कन्या का जीवनांकुर सींच दिया, जिसके कोमल हृदय की मृदु कामना से यह अंकुर पनप उठा।

प्रकृति-धाय से इसे लेकर वृद्ध सरदार मसऊद किसी मानवी धाय का अंक ढूँढ़ने लगा। क़ाफ़िले में ऐसा कोई न मिला जिस पर वह पूरा भरोसा कर शिशु को दे देता। कंधार की सराय में दुख की मारी पुत्री से वञ्चिता माता की आँखों में नींद कहाँ थी? बेगम की आँखों से झरने बह रहे थे। मसऊद ने समझ लिया—करुणा के द्वार आँसू होते हैं। जिसमें आँसू बहाने का सामर्थ्य है उसके हृदय अवश्य होगा, बालिका को ला चट उसके रिक्त अंक में डाल दिया। माता की आँखों की झड़ी और भी वेगवती हो गई। दम रोक कर उसने देखा होगा—यह क्या वही है? अंग प्रत्यंग निहारा होगा कहीं कुछ हुआ तो नहीं। साधक की अभिलाषा पूरी हुई, झंझावात थम गया। अपनी खोई टकसाल पाकर बेगम कृतकृत्य हो गई। किस प्रकार कहाँ उसे रखे। कभी के धनी, दरिद्र ने अपना रत्नाकर पाया बारम्बार चूमकर हृदय में रख लिया, निहाल हो गई। संसार ने जाना—बालिका को धाय मिली पर बेगम ने अपने खोए रत्न को पाकर दूध की धारा बहा दी। कहाँ तो वह नवजात बालिका हिन्दूकुश की दुर्गम घाटी में, कहाँ क़ाफ़िले का सरदार मसऊद और कहाँ कंधार के सराय की यह अभागिनी जननी। किसको किसने दिया? मसऊद ने बेगम को? भाग्य ने अभागे ग़यास को? कौन जाने? मनुष्य अपनी क्षुद्र बुद्धि द्वारा सैकड़ों कल्पनाएँ करता है जिनके ज़रा देर में उड़ते देर नहीं लगती। जो है वह तो है ही—

The moving finger writes
and having writ moves on—

यह उमर खय्याम का कहा एक सुन्दर सत्य है जिसका कभी अन्त नहीं हो सकता। हमारी बहकी बुद्धि कभी भाग्य को कभी कर्म को दोष लगाती है पर नियति की प्रबलता किसने जानी? कौन यथार्थ दोषी

है ? कौन किसके इङ्गित पर तर्क करता है, नाचता है ? जब स्थिरप्रज्ञ के शुद्ध दैव चक्षु स्थिर हो जाते हैं तब उस नियन्ता के सूत्रों के अस्तित्व का उसे कुछ आभास होने लगता है—पर आभासमात्र ही, फिर भी वह नहीं जानता कि कैसे, क्या, कब होता है। भाग्य स्वयं जिसके इशारे से दूर नहीं जाता, जिसके समक्ष सामर्थ्यहीन है उसकी वही जाने।

बीज जब अंकुरित होता है उसकी दो दालें दो आँखों सी दीखती हैं। ऐसा भास होता है जैसे बीज इन आँखों से देख रहा हो। इस बीज का आकार लिखे शून्य जैसा होता है। कवि की उत्प्रेक्षा में बीज रूपी शून्य के ऊपर अँखुए की क्षीण आशा-रेखा खिंची हुई है। शून्य की व्यापकता की अनन्त मर्यादा है, प्रलय के बाद भी केवल शून्य ही स्थित रहता है। अनवरत श्रमानन्तर केवल शून्य को हस्तगत कर प्रयत्न-विमुख मानव आशा की कोर पकड़ कर रह जाता है। उसके प्रयत्नों का कोई फल नहीं, किसी कर्म का उचित पुरस्कार नहीं, पुण्योदय नहीं फिर क्या करे ? फिर भी आशा की क्षीण रेखा ही उसका मार्ग प्रदर्शक होती है। उसी के क्षीण आलोक में वह साहसहीन, उद्योग-रहित व्यक्ति नीयमान अन्धे की भाँति खिंचा जाता है। बड़ी प्यारी आशा की रेखा होती है तभी तो बिना किसी पौरुष के फल के अधिकार के भी मनुष्य उसकी ओर मुँह किए निरन्तर देखता रहता है। इसी शून्य के ऊपर आशा की क्षीण रेखा ने बैठ कर इस जगत के जीवों के अन्त को रोक रक्खा है। भविष्य के शून्य गर्भ को लेकर ही ग़यास की कन्या अवतरित हुई थी। उसके भविष्य की थाह कौन लगा सकता है ? केवल मसऊद के इक़बाल के साथ हिन्द में अपने भाग्य परखने उसके माता पिता उसे लिए जाते हैं। हिन्द की प्राप्ति और वहाँ कदाचित् भाग्य का उदय, यही इस भविष्य शून्य में आशा की पड़ी हुई क्षीण रेखा है—

अंकुरित बीज ने अँखुए की आँख खोल जब देखा,
थी शून्य-बिन्दु पर मानो खींची आशा की रेखा।

सुपर्ण की भाँति बीज ने क्षेत्र में प्रवेश कर ऊपर उठने के लिए पर फैलाए, ब्रह्मानन्द के लोभ से आत्मा ने पृथ्वी छोड़नी चाही, परन्तु लोभ का स्वाद मधुर होता है, होंठ सट जाते हैं। कर्मों का क्षय न होने के कारण पुनरावर्तन स्वाभाविक है। कच्छप की भाँति जब तक विषयों से इन्द्रियों का विराग नहीं होता तब तक ब्रह्मानन्द कैसे मिल सकता है? वासनाओं की आसक्ति में सने पंख-पल्लव 'लसलसे' होकर व्यर्थ हो जाते हैं। हवा में चाहे जितना पर मारिए, पंख फड़फड़ाइए कुछ लाभ नहीं,'वसुधा' छोड़ नहीं सकते। बारम्बार यहीं आना होगा। अन्य पक्षियों के डैने लसलसे नहीं होते उनमें विराग होता है चाहे जितना भी उनको देख कर स्पर्धा की चाह से प्रयत्न करे, व्यर्थ है। जब तक स्वयं इस भट्टी में जल कर इसकी अङ्गिरस अग्नि से तप कर उज्ज्वल नहीं हो जाएगा तब तक अक्षय सुख का लोभ केवल लसी उत्पन्न करेगा, जीव को पार्थिव आसक्तियों से और साट देगा। इतनी सुन्दर काया देख कर 'भक्त' को स्वभावतः उसके बन्धन की गाँठ पर ग्लानि हो आती है और वह कह उठता है:—

अंडे से निकला पक्षी उसने दो पर फैलाए,
लसलसे सुकोमल पल्लव थे माणिक के ढलवाए।
पर बहुत हवा में मारा पर बसुधा छोड़ न पाए,
विहँगों को उड़ते लखकर लज्जित हो हो ललचाए।

बेगम की यह बाल-निधि, कवि की यह शिशुनायिका, प्रकृति के साहचर्य से बढ़ती है। सूर्य अपनी मरीचियों से उस तक पहुँच कर मैत्री का दम भरता है, सुधाकर सुधा का पुट दे दे उसमें निरन्तर नव-जीवन भरता रहता है। ऋतु-समुदाय अपने अपने समय से आकर इस नन्हीं बालिका के तन को श्रृंगार से सुसज्जित करता है। उषा की कान्ति उसके नेत्रों में व्याप्त होकर छोरों तक फैले उनके तम को छाँट देती है, अपने आगमन से उसके स्वप्न-शैथिल्य को दूर कर नवजीवन का संचार करती है, फिर दिनान्त में संध्या उसके क्रीड़ा-शिथिल गात्रों

को थपकियाँ देकर, विहग-कलरव की लोरी सुनाकर उसपर नींद का जादू डालती है। इस प्रकार—

वह मधुर नवेली बाला अंकुर सी बढ़ती जाती,
जीवन दे सींचा करती माता की निर्झर छाती।

माता क्यों पीछे रहे। जब प्रकृति के कण-कण ने अपना कर्तव्य निभाया फिर जननी अपना जीवन-स्रोत क्यों रोके? उसने भी इस पौधे को दूध से सींच-सींच कर हरा कर दिया। शैशव का यह अद्वितीय रूप कितना मनमोहक था—

वह दीप-शिखा शीशे में निश्चल आभा फैलाती,
आँखों में पुतली सी थी मानस में घर कर जाती।

शीशे में बन्द दीप-शिखा का विद्युत कम्पित कम होता है, उसकी निर्मल आभा शान्त, निश्चल रूप से स्वयं छिटकती हैं औरों को आलोकित करती है। शीशे की आँखों में दीप-शिखा-सी पुतली बनकर, शरीर में मानस बनकर उसका शैशव पैठा जाता है, ऐसी प्यारी प्राण सम वस्तु कौन नहीं अपनाएगा। इस शैशव का आधार भी औरों ही जैसा है। जहाँ प्रकृति का राज्य है वहाँ अन्याय नहीं होता, सबसे एक सा बर्ताव होता है, उसकी विभूतियाँ अन्धों के लिए भी बिखरी रहती हैं। सो वही—

प्यारा शैशव हँस हँस कर पलने पर सुन सुन लोरी,
घूमा घुटनों ही घुटनों मिट्टी खा चोरी चोरी।

शैशव में बच्चे सोते सोते हँस देते हैं फिर रोने लगते हैं। महाकवि को इसका कारण बड़े महत्व का ज्ञात होता है। बालिका सोते में जो मुसकाती है उसका कारण यह है कि अभी उसने उस अपने स्रष्टा से नाता नहीं तोड़ा है। नाता तो वैसे टूट चुका है पर उसने अपनी ओर से क़ायम रक्खा है। उसकी सुधि उसे अब भी है। उसकी स्मृति में वह कभी स्वप्न भी देख लेती है और फलस्वरूप मुसकरा देती है फिर उसका दुखदायी विछोह उसे अधीर कर डालता है। वह रो उठती है।

नद-नदी की भाँति अपने उद्गम स्थान की ओर वह देखती है। उस समय उसे देख उसकी हृदय-कली आनन्द से खिल उठती है पर फिर ज्योंही उसे अपनी अवस्था का बोध होता है वह रो उठती है—कहाँ किस समुद्र में जाकर गिरना होगा? यह प्रवाह कहाँ जाकर रुकेगा? इस प्रवाह का अन्त भी कभी होगा? उद्गम—अवसान—समुद्रागम—वाष्प—मेघ—उद्गम, फिर वही उद्गम—इस वृत्त का अन्त क्योंकर हो? वीज-वृत्त और वृत्त-वीज के अनादि प्रवाह से कब त्राण मिलेगा इसे सोच कर वह सोते सोते रो उठती है। इसलिए महाकवि का अध्यात्म कहता है—

उद्गम-सरसी के अब तक लख स्वप्न, कभी मुसकाती,
फिर रो उठती नव सलिला—हूँ कहाँ बही मैं जाती?

जन्म किसी आश्रय से विछोह का द्योतक है। जितना ही वह उससे दूर होता जाता है उतना ही उसकी स्मृति धुँधली होती जाती है। जैसे जैसे बच्चे की अवस्था बढ़ती है उसका स्रष्टा से सम्बन्ध धुँधला होता जाता है ठीक उसी तरह जैसे दूर हटते जलयान से समुद्र-तट। फिर वह मनुष्य जलयान की भाँति तट से दूर होकर कितने ही चक्कर खाता है, तूफ़ान के चक्कर में पड़ जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। बाल-सुलभ चंचलताओं और क्रीड़ाओं का नीचे बड़ा सुन्दर चित्रण है। अध्यात्म का भी आनन्द इन पंक्तियों में कुछ कम नहीं है—

जलयान बढ़ा ज्यों जाता धुँधला तट होता जाता,
विस्मृति-सागर में खोकर फिर कितना चक्कर खाता।
जब दाँत दूध के टूटे चञ्चल बालापन आया,
तब बाल सुलभ क्रीड़ा ने आनन्द खूब छलकाया।
गुड़ियों से ब्याह रचाए मिट्टी के बना घिरौंदे,
गढ़ गढ़ मूरतें बहुत सी नन्हें पैरों से रौंदे।
टूटे प्यालों में व्यञ्जन रज तृण के बना बना कर,
पात्रों में पत्रों ही के देती सबको ला ला कर।
वह बात बात में अड़ना, ज़िद करके इठला जाना,

फिर लोट लोट पृथ्वी पर रोना गाना चिल्लाना।
उँगली से सान बुझाना पानी को मम बतलाना,
मुख चूम चूम सब लेते सुन कर प्यारा तुतलाना।
थे अभी अभी पहनाए कपड़े सफेद नहला कर,
मण्डित कर भूषण से इक टीका श्याम लगा कर।
माता धंधे में भूली यह दौड़ी दौड़ी जाकर,
पानी में छपका खेली गागर को गिरा गिरा कर।

बाल-क्रीड़ा का बहुत ही विशद और सुखद वर्णन है। जब मानव जलयान ब्रह्मारूपी तट से दूर होने लगा तो ब्रह्मानन्द की स्मृति धुँधली होने लगी। शैशव बीतने लगा, बालापन आया और उसने वे खेल खेले जिनकी गुरुता का उसे गुमान तक न था। 'गुड़ियों से व्याह रचाया'—मनुष्य के जीवन का सबसे पुनीत बन्धन नियति के पथ के खेल मात्र थे। मिट्टी के बनाए घरौंदों में कितनी ही मूरतें बना बनाकर नन्हें पावों रौंद डालीं। नव बालिका के खेल ब्रह्म की सृष्टि के खेल की ओर इशारा करते हैं। रावण और बाण के-से असुर उसकी क्रीड़ा-शक्ति के सामने वही सामर्थ्य रखते हैं जो बालिका की इच्छा और उसके क्रीड़ार्थ बनने बिगड़ने वाले मिट्टी के खिलौने। यदि मिट्टी के खिलौने कहने लगें कि बालिके, तुम्हारी हमारे सामने क्या बिसात तो कितनी हँसी की बात होगी। असुरों का घमण्ड कितना अस्थिर, कितना क्षणिक होता है। बालिका के नन्हें पाँव शक्ति के स्वरूप हैं जिनके समक्ष किसी की नहीं चल सकती। बालिका का ऋग्वेद की ओजस्विनी ब्रह्मवादिनी ऋषि 'वाक्' है जो कहती है—अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वाऊ—मैं ही ब्रह्म-द्वेषियों के दमन के लिए रुद्र के धनुष को चढ़ाती हूँ। सो बालिका की इस क्रीड़ा पर कुछ अंश में महाकवि ने अध्यात्म का वह चित्र खींचा है जो उसके काव्य का प्राण है, प्रकृति-निरीक्षण के साथ साथ उसके काव्य का सर्वस्व है। स्वाभाविकता, सत्यता और रसिकता इस काव्य के जीवन-तन्तु हैं। इस क्रीड़ा-स्थल पर अध्यात्म के साथ-साथ इन तीनों गुणों का रसास्वादन हो जाता है। सूरदास के बाल-

श्याम की भाँति अनन्त क्रीड़ा करने वाली यह बालिका अपने क्रीड़ा-व्यवसाय को शीघ्र समाप्त नहीं करती। उसके और भी बहुतेरे खेल हैं जो यथार्थ में जीवनराम्भ में सबके हैं—

अब हाथ बढ़ा लतिका से वह फूल तोड़ लाती है,
हँस, खेल खेल कर घुमड़ी, चक्कर खा गिर जाती है।
वह दौड़ बीच में होती, जो उठता कहीं बवंडर,
माता घबड़ाई फिरती वह लोटी जाती हँस कर।
वर्षा में घन लख लख कर वह नाच नाच कर गाती,
फिर तड़प तड़ित की सुनकर अंचल में छिप छिप जाती।

आगरे के शाही बाग़ में वह तरुओं पर झूला झूलती, बतखों के बच्चों को पकड़ने के लिए बढ़ती पर स्वाभाविक ममता वाली माता अपने बच्चे के कल्याण के लिए, पंख फड़का कर, चोंच चलाकर, 'कें कें' शब्द कर उसे डरा देती। इतने में वे बच्चे पानी में डूब-डूब दूर निकल जाते थे। फिर—

वह भी पानी में उतरी पर बत तक पहुँच न पाई,
'बरबत' की स्वर-लहरी सी, लहरों को छेड़ उठाई।
लड़ियाँ तरङ्ग-माला की टूटीं उससे लड़ लड़ कर,
मोती से हुए निछावर जल कण उठ उठ कर, झर झर।
वह मीन, तोड़ बढ़ जाती थी बीचि-जाल की माला,
लहरों के प्याले में वह भरती जाती थी हाला।

पानी में बढ़ती हुई बालिका के धक्के से जो बुलबुले बनते हैं उनका ऊपर सुन्दर वर्णन है। सामने जल पर बैठे पक्षियों को पकड़ने जब वह आगे बढ़ती वे उसे हवा बता कर उड़ जाते। परन्तु उसका क्षोभ बाल-रवि ने समझा। बालक की बात बालक ही समझता है—

वह हाथ बढ़ा कर केवल छू लेती उसकी छाया,
जो बाल सूर्य ने बरबस उस तक था खींच बढ़ाया।

परछाईं का कारण सूर्य ही है। सूर्य न होता तो छाया कैसे

पड़ती। परन्तु छाया तो एक प्रकार से माया द्वारा निर्मित काया है इसलिए—

> तन शिथिल हुआ जाता था जितना ही थी बल करती,
> पर काया वह माया की छलना सी थी छल करती।

इस प्रकार की बाल-सुलभ क्रीड़ा का बड़ा विशद और विस्तृत चित्र कवि ने खींचा है। महाकाव्य में नायिका या नायक का जिसने बाल चित्र नहीं खींचा उसने कुछ भी नहीं किया। बालकाण्ड महाकाव्य का आवश्यक अंग हो जाता है क्योंकि बालरस का पूरा स्रोत यहीं मिलता है। भक्त-शिरोमणि सूरदास की विजय बालकृष्ण के क्रीड़ा-चित्रण में ही है।

तीसरा सर्ग

तीसरे सर्ग की कथा अर्ध-रात्रि की शान्ति में जन्म लेती है—

> था निशीथ, कालिन्दी कलकल शांत था,
> था मारुत हो श्रांत कहीं पर सो रहा।
> सुखधरा का रजनीतम से मलिन मुख
> जगमग नभ-दीपों ही से है हो रहा।

सर्वत्र शान्ति विराजमान थी, चारों ओर स्वपन की ही धूम थी। कालिन्दी-कलकल शान्त होकर सो रहा था, हवा बन्द थी—उसकी आँख भी लग गई थी, स्वयं धरा सो रही थी। यमुना का आचरण माता का सा हो रहा था। तटवर्ती प्रासाद उसके वक्ष पर शिशु की नाईं सो रहे थे। निशीथ में बालक की नाईं 'निश्चल' सोते थे। बच्चों की नींद बड़ी गहरी होती है, नक़ारे की आवाज़ से भी नहीं खुलती। सो तटस्थ अट्टालिकाएँ इस समय जन-कोलाहल से रहित थीं, दिन की चहल पहल रात्रि पसन्द नहीं करती। नीरवता निशीथ का प्राण है। कवि ने चित्रण बड़ा सुन्दर और व्यापक किया है—

> तटवर्ती प्रासादों के प्रतिबिम्ब शिशु,
> निश्चल सोते थे यमुना के वक्ष पर
> जिनकी व्योम-विचुम्बी-वर-अट्टालिका
> व्योम-मीन को बेध रही थीं लक्ष्य कर।

इङ्गित प्रासादों के प्रतिबिम्बों की ओर है जो नीरवता में यमुना के स्वच्छ जल में लहरा रहे थे। अभ्रंलिहाग्र इन प्रासादों की नीचे जल में छाया देखकर कवि को महाभारत के एक बड़े सुन्दर कथा-प्रसङ्ग का स्मरण हो आता है। राजा द्रुपद की कन्या द्रौपदी के स्वयंवर में अर्जुन ने ऊपर चक्र में घूमती मछली को नीचे तेल में उसकी छाया देखकर बाण से बेधा था। इस नीरवता में दम साधे खड़े इन मेघ-परिच्छन्द

प्रासादों की उँचाई और नीचे कालिन्दी में उनकी छाया देखकर कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो वे भी अपने उन्नत अट्टों से जल में देख कर आकाश में स्थित मीन (राशि) के लक्ष्य-वेध के निमित्त मौन भाव धारण किए खड़े हों।

इस वर्णन के बाद एक बड़ा गम्भीर ज्योतिष विषयक चित्रण आता है। कवि का ज्ञान सर्वतोमुखी ज्ञात होता है। जब मीन-वेधन की कल्पना होती है तो आकाश स्वतः कवि के नेत्रों के सम्मुख घूम जाता है। आकाश चैत्र का सा प्रतीत होता है क्योंकि—

रश्मि रंग में भर भर 'चित्रा' तूलिका
रञ्जित करती सांध्यगगन वर चित्र से।

'चित्रा' नक्षत्र का चैत्र में ही सांध्य गगन को अपने चित्र से चित्रित करना सार्थक है। मास के प्रारम्भ में उसका नक्षत्र पूर्वाकाश में सन्ध्या समय लगभग ६½–७ बजे चमकता है और मध्य रात्रि में धीरे धीरे आस्मान पर चढ़कर उसके बीचोबीच पहुँच जाता है—

अब चित्रा हो स्वयं चित्र नभ-बीच में
किस ऊषा का प्राणनाथ ले जा रही?

बड़ा सुन्दर दृश्य है। सन्ध्या समय जब 'चित्रा' पूर्वाकाश में प्रथम निकलती है तो सचमुच ऐसा ज्ञात होता है जैसे पूर्व गगन रूपी रङ्गमञ्च पर कोई चमत्कृत, रजत वसन धारण किए नायिका मुस्कराती हुई प्रवेश कर रही हो और धीरे धीरे अपनी मरीचियों की तूलिका में श्वेताभ रङ्ग भर भर कर सांध्य गगन का रजत-रञ्जन कर रही हो। सत्य ही चित्र खड़ा हो जाता है। 'चित्रा' तो स्वयं चित्र है और धीरे धीरे नीलाकाश के रंगमञ्च पर अपना अभिनय करती हुई, नितान्त नीरव और शनैः शनैः नृत्य करती मध्य व्योम में पहुँच जाती है। उसके आगमन से संध्या की पाण्डुता मिट गई, अब रात की चाँदी है—

अब चित्रा हो स्वयं चित्र नभ बीच में
किस ऊषा का प्राणनाथ ले जा रही?

चित्रा स्वयं कान्तिमती है और अन्यों के लिए कल्याणप्रदा है।

उसके चित्र से कवि को उषा-अनिरुद्ध की याद आती है। उषा और अनिरुद्ध के विरह-तपन का अन्त किसने किया था? चित्रलेखा ने। इस चित्रा के वर्णन के साथ ही चित्रलेखा का स्मरण अस्वाभाविक नहीं है। यह चित्रा किस उषा का प्राणनाथ ले जा रही है? उस उषा का जो प्रातः प्राची गगन में स्वर्ण के रथ में बैठी ब्रीड़ा-मण्डित, लज्जा-लोहित कपोलों वाली प्रणयी सूर्य के शाश्वत अनुसरण से शिथिल होकर उसके सहस्र करों में अन्तर्लीन हो जाती है। चित्रा तीव्रगति से प्राची से उठ कर प्रतीची में विलीन होने जा रही है जिसमें वह शीघ्र सूर्य को उसके नित्य नैमित्तिक पथ पर उषा को क्रोड़स्थ करने भेज सके। चित्रा की उपस्थिति में, उसकी कान्ति के तेज तले सारे रजनीचर कार्य-शिथिल हो जाते हैं। 'मृगशिरा' का लोलुप 'लुब्धक' उसपर छलाँग नहीं मारता केवल पीछा करता है। 'मृगशिरा' आकुल है परन्तु व्यर्थ। 'व्याध' उस तक पहुँच नहीं सकता क्योंकि 'चित्रा' का राज्य है। मध्य में स्थित वह सर्वत्र देख रही है इसीलिए तो शायद यमुना-जल में देखकर ऊपर 'मीनराशि' को बेधने की इच्छा करनेवाले तटवर्ती प्रासाद अपने अट्टबाण केवल ताने ही रह जाते हैं, चित्रा के सम्मुख 'मीन'-बेधन का साहस नहीं होता। निशाकाल में विचरण करने वाले दुराचारी आत-तायियों की क्षमता चित्रा की उपस्थिति में शिथिल पड़ जाती है, ऐसा जान पड़ता है। ऊपर आकाश में और क्या है—

अति आकुल नभ-काननचारी 'मृगशिरा',
भागा जाता, 'व्याध' न पीछा छोड़ता।
धूल उड़ी क्या! पथ सा है जो बन गया,
क्या ऐरावत गया कहीं है दौड़ता!

वन में विचरने वाला मृग जिस भाँति व्याध को देखकर प्राण भय से भागता है उसी भाँति आकाशरूपी वन का 'मृगशिरा' अपने प्राणों के त्राणार्थ 'लुब्धक' के शर-लक्ष्य से दूर भागा जा रहा है। आज से नहीं प्रत्युत् जब से सूर्य चन्द्र-मण्डलों की सृष्टि हुई तभी से लुब्धक अपनी पिपासा शान्त करने के लिए मृगशिरा की ओर दौड़ता है परन्तु

नियामक को सभी को देखना है। यह मृगशिरा आकाश-पट्ट पर पड़ा नक्षत्र मात्र नहीं है वरन् उसका और लुब्धक का स्थान प्रत्येक प्राणी के अन्तरङ्ग में है। दोनों उसमें भाग पाते हैं। मृगशिरा मनुष्य के पुण्य हैं और लुब्धक उसकी पापमयी दुर्बलताएँ। बहुधा पुण्य दुर्बलताओं से आच्छादित हो जाते हैं, आज से नहीं सदा से। अक्षय पुण्य का ह्रास कभी नहीं होता पाप उन्हें केवल ढक मात्र लेते हैं। नाना प्रकार की मानुषिक तृषित वासनाएँ ही लुब्धक हैं। पुण्य को हड़प जाने के लिए पाप सदा मुँह बाए उसकी ओर दौड़ता रहता है। पर उसका ग्रास नहीं कर सकता। लुब्धक उसी प्रकार मृगशिरा का निरन्तर पीछा करता है। सचमुच ही भले-बुरे में अन्न और अन्नाद का, जीवन और मृत्यु का, सम्बन्ध है। आकाश-गंगा (Milky way) वाले श्वेत, उज्ज्वल तारापथ को कवि ने एक अन्य उत्प्रेक्षा से अङ्कित किया है। वह कहता है कि सफेद पथ-सा यह जो आकाश में बन गया है वह मालूम होता है कि गगन पथ है जिससे होकर इन्द्र का ऐरावत दौड़ गया है और उसके दौड़ने से जो धूल उड़ी है वही पथ की शुक्लता के रूप में दीख रही है। कितनी सरल उत्प्रेक्षा है। आकाश में चमकते तारा-पुञ्ज का श्वेत तारतम्य कवि को क्यों न दीखता।

कवि आकाश में कुछ और देखता है। स्थिरता का प्राण, दिशा-ज्ञान का कारण, उद्वेलित समुद्र में दिशाभ्रम में पड़े, मझधार में बिलखते माझियों का मार्गदर्शक, सती हृदय की भाँति अचंचल, सदा एकरस रहने वाला, शाश्वत उत्तरापथ का निवासी निश्चल 'ध्रुव' उत्तर दिशा से सबको स्थिर रहने का उपदेश करता है। चंचलता में ओछापन है, ध्रुव सत्य है उसमें विकार नहीं होता। संसार की संसृति पर वह हँसता है। सबसे, सदा, सजग वह कहता है—स्थिर रहो, कहाँ बहे जाते हो—

सती-हृदय सा अचल, एक रस, थिर सदा,
मार्ग-प्रदर्शक भ्रांत पोत का सर्वदा,
चंचल-सागर-सतत-प्रश्न का 'ध्रुव' अटल,
उत्तर से उत्तर देता 'रह थिर सदा'।

उसका इङ्गित सबकी ओर है—चंचल सागर को शान्त रहने की शिक्षा देता है। प्रश्नों में सन्देह और असन्तोष होता है इससे उनको भी स्थिर करता है। नीचे यमुना में देखकर ऊपर मत्स्यभेद की लालसा वाले प्रासादों को थिर करता है। भागते मृगशिरा और उसका पीछा करते लुब्धक को रोकता है—शान्त रहो, भय और तृष्णा छोड़ो। दौड़ते ऐरावत पर हँसकर उसे शान्त करता है। चित्रा ने जन्म धारण किया तब ध्रुव ने देखा, उसका उत्थान और श्री-वृद्धि भी उसने मध्याकाश में देखी फिर हाथ उठाकर कह दिया, चित्रे, अब न बढ़, प्रतीची अवसान का मार्ग है अतः 'मा मा प्रापत्प्रतीचिका'। फिर उसका दूतीकार्य भी ध्रुव को ओछा लगा। ध्रुव समाज के नियमों में स्थिरता चाहता है। उनके छिछोरेपन से उसे घृणा है। उसका आदर्श वह सती है जो अपने पति में शाश्वत अव्यभिचारिणी भक्ति रखती है। वह भक्ति शान्तिमय अनुद्विग्न पतिवरण के पश्चात् वह सफल मानता है। गुह्यप्रेम का वह शत्रु है। चित्रा के मार्गयापन में वह कुछ और देखता है—उषा और सूर्य का गोपनीय प्रणय, और हाथ उठा कर चित्रा को रोकता है—क्या करती है? अब तो रुक जा। परन्तु यथार्थ ही आगे चित्रा का भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही रूप से पतन है।

× × × ×

लाल पत्थर का, सुदृढ़ और उन्नत आगरे का क़िला आज भी अकबर के वैभव की घोषणा कर रहा है। कवि के चित्रण से उसके सौन्दर्य की कुछ झलक मिल जाती है। इस विशाल प्रस्तर-प्राङ्गण में सुन्दर सजा राजमन्दिर हिमालय की श्रेणियों से घिरे 'मानसरोवर' सा प्रतीत होता था। इस आगरे के मानसरोवर का 'मराल' सलीम मरालिनी और मृणालिनी दोनों ही का समान प्रिय था। युवावस्था में अधिकतर लोग अल्हड़, बावले हुआ करते हैं। सलीम का प्यार भी मूर्तिमान होकर अनेक रूपों में यहीं बिचरता, खेलता था।

सम्राट् के प्रासाद में कहीं कहीं जहाँ मुगल समृद्धि के फलस्वरूप स्तम्भों पर रत्नों के बेल-बूटे और लता-प्रसून बने हुए थे वहाँ की छटा

निराली थी। ये मणि-माणिक्यों से रची द्रुमलताएँ कुसुमरूपी यौवन भार धारण करने के कारण झुकी जाती थीं जिन पर उनकी रसवारुणी से प्रमत्त मलिन्द वेग से टूटते थे और ये लताएँ मानो विहँस विहँस कर उन्हें हटा हटा कर अपने सुकोमल अंग उनकी तीखी पानप्रणालिकाओं से बचाने की क्रिया में संलग्न दिखाई गई थीं—

> द्रुम और लताएँ मणियों की फूल भार से झुक कर,
> मद्यप मलिन्द के छेड़ों से विहँस रही थीं लुक कर।

इनसे परिवेष्टित 'क्रीड़ाकक्ष' नाना प्रकार के 'मंजुल चित्रों' और 'भाव-भंगिमा' के दृश्यों से अंकित था। कमरे के सौन्दर्य और महार्ह सजावट का वर्णन कवि के ही शब्दों में विशिष्ट है—

> थे फूल बनाए सुन्दर कर मणिमय पच्चीकारी,
> मख़मल का फ़र्श ज़रीकश, थीं छतें सुनहली सारी,
> लाल और ज़मुर्रद, हीरे, मोती, मूँगे औ नीलम,
> जड़े केलिशाला में चारों दिशि करते थे चमचम।
> गंगा-जमुनी थे अनुपम फ़ानूस सहस शाखा के,
> दिन कर देते थे निशि को, उज्वल आभा फैला के।

ऐसे सजे सुन्दर प्रासाद-प्रांगण में बैठा सलीम नर्तकियों की रानी अनारकली का नर्तन मुग्ध मन से देख रहा था। अनार के सौन्दर्य का वह स्वयं धनी था क्योंकि अपना सारा यौवन और यौवन-मद अनार उस पर वार चुकी थी। उसके सौन्दर्य की गहराई में कितने ही डूब चुके थे केवल सलीम को उस गहराई का थाह मिला था। अनार का यौवन अभी अभी निखर कर चमका था और उसने आगरे में चकाचौंध उत्पन्न कर दी थी—

> शिशुता की निशा सिरानी उग आया यौवन-दिनकर,
> छवि-विलसित तन-सरवर में दो सरसिज लसे मनोहर।

उस रक्त दुर्ग के अभ्यन्तर श्वेत प्रस्तर के प्रासाद-प्रांगण में सुवासित, मधुर गन्ध की तरंगें उठती थीं और सद्यःप्राप्त यौवन से गर्वीली मातङ्गिनी—

उस सरस सुगन्ध लहर में यौवन-हाला में छक कर

पुतली सी नाच रही थी आँखों में जादू भर कर।

जादू भरी आँखों का असर यौवन की हाला में बड़ा तीव्र होता है। अनार को अपने हाल के पाए यौवन-धन का मूल्य ज्ञात था। किसको नहीं होता? और वह

होकर विनमित यौवन के नवकुसुम-भार से भोरी

थी क्षीण लंक लचकाती कर चितवन से चितचोरी।

बन बीचि-विलास सरित की वह रस ही रस बरसाती,

आँखों को नचा नचा कर झखकेतु ध्वजा फहराती।

पिछली दो लाइनें कवि की सौन्दर्य परख और उसकी कल्पना के द्योतक हैं। सरिता की 'बीचि-विलास' बनी अनार अपनी सुघराई से सुधा बरसा रही थी। नेत्रों को नचा नचाकर दृष्टि इस तेज़ी से इधर उधर फेंकती थी कि लहराती ध्वजा का रूप खड़ा हो जाता था। यदि फ़ारसी के पण्डित कवि भक्त का कहीं संस्कृत से थोड़ा भी सम्बन्ध होता तो इन पंक्तियों का लेखक इस बात को कहे बिना न रहता कि इस कवि की 'बीचि-विलास सरित की' और 'रस ही रस बरसाती' पर मेघदूत में निर्विन्ध्या का वर्णन करते हुए कालिदास की उक्तियों—'वीचिक्षोभः' और 'रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य'—की क्रमशः और 'आँखों को नचा नचाकर झखकेतु' आदि पर 'चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि' की छाप है। पर नहीं, समान अश्वत्थ पर बैठकर पूर्व और उत्तर काल के पक्षी उसका समान फल खाते हैं और समान प्रकृति का खुला भाण्डार सबके लिए समानतः प्राप्य होता है। कुछ आश्चर्य नहीं यदि कवियों की कल्पना और उनके कथन में क्षणिक समानता आ जाय।

कवि 'भक्त' नृत्य कला का असाधारण पारखी है। नीचे की लाइनों में उसने मुगलकालीन नृत्य की कुछ मुद्राओं का उल्लेख किया है—

रस ढाल नियत मुद्रा में थी भावों को दर्शाती,

कर विधिवत देह-प्रचालन वह निपुण नटी बन जाती।

नूपुर को बजा बजाकर बहुबार भावभंगी कर,
लहरों सी उठती गिरती रच करके रस का सरवर।
वह डमरू कभी बनाती वह देह मरोड़ नचाती,
वह कभी कपोती बनती, वह कभी शिखी हो जाती।
घट लिए शीश पर नाची, कर में ले दीपक बाले,
पानी न बूँद भर छलका, दीपक भी रही सम्हाले।
लेकर दीपक औ' घट को वह झुक दोहरी हो जाती,
फिर लोट रसा पर घुँघरू गिन गिनकर साफ़ बजाती।
ज्यों हलका सा वारिदपट मारुत से उड़ता जाता,
शशिमुख को कभी छिपाता पट खोल कभी हट जाता।
त्योंही घूँघट में विधुमुख वह नटी छिपा लेती थी,
फिर खोल चाँद की झाँकी पूरी थी दिखला देती।

अनार के सौन्दर्य में उसका उठता हुआ यौवन आँधी की तरह था और जिधर उसकी नज़र उठती उधर ही हृदय रूपी नौका संकट में डूबने उतराने लगती थी। उस लावण्य-सागर की लोल लहरों में अनार का मुखमण्डल चन्द्र-प्रतिबिम्ब की भाँति हल्के हल्के हिलता था पर कामातुर हृदय जैसे ही उधर बढ़ने की इच्छा करते लोल लहरें सागर की उत्ताल तरंगें बनकर उन्हें संकट में डाल देतीं।

विधु देख तरंगित होता लावण्यसिन्धु उठ उठ कर,
था हृदय-पोत संकट में उस प्रबल लहर में पड़कर।

और वे दृग जिन्होंने साधारण वारुणी को तिरस्कृत कर 'यौवन की हाला' ढाली थी मदमस्त साक़ी की भाँति छलकते प्याले भर भर कर लोगों को बेहोश किए देते थे—

मदमस्त दृगों के साक़ी रमणी यौवन की हाला
मदहोश किये देते थे, देकर प्याले पर प्याला।

सलीम ने अनार को पहले भी देखा था और उसको लावण्य-शिखा पर शलभ की नाईं टूट पड़ा था पर कवि के वर्णन में अनार आज शायद पहले पहल उसके सामने नाच रही है। एक तो घटा

की तरह उठता हुआ यौवन दूसरे साँचे में ढले हुए शरीर पर उसका आना फिर उसपर भी कला की गन्ध—बेचारे विलासी सलीम की क्या हक़ीक़त जो सम्हल सकता?

सुध खो सलीम तन मन की, हो गया प्रेम मतवाला।

प्रेम में मतवाला होकर सलीम ने शराब के नशे में कुछ उद्‌गार निकाले हैं जो अन्यत्र तो नहीं पर उसके से विलासी के पक्ष में सार्थक ही हैं। यहाँ पर कवि ने उसका चित्रण नग्न और सच्चा किया है। सलीम अनारकली को प्यार करता था। इसके प्रमाणस्वरूप अनार-कली की क़ब्र आज भी लाहौर में सुरक्षित है। इस हिन्दू नर्तकी के लिए उसके हृदय में बड़ा स्थान हो गया था पर उसीके अभाव में रसिक-सम्राट अकबर के हृदय का भी एक कोना सूना था। सुन्दर काया देखकर पिता-पुत्र दोनों के मुँह में पानी भर आना मुगल वंश की परम्परा में कोई अनहोनी घटना न थी। शान्तनु के देव-व्रत-भीष्म और मेवाड़ के चंड आगरा दुर्ग के विलासकर्त्ताओं में नहीं हुआ करते। उनके लिए या तो दृढ़प्रतिज्ञ कुरुवंश हो या मेवाड़ की प्रचण्ड चट्टानें। सो सलीम के आमोद-प्रमोद में विघ्न पड़ गया। राज-घरानों की गुप्त बातें गरुड़ से भी प्रबल पंख धारण करती हैं। शीघ्र अकबर को पता चल गया कि पुत्र का उस हृदय पर राज्य हो गया है जिसने पिता की प्रार्थना ठुकरा दी थी। युवा और प्रौढ़ावस्था का संघर्ष था। एक ओर चुम्बक था दूसरी ओर कुटिल नीति। सम्राट पहुँचा, समाज थम गया, अनार गिर पड़ी, आनन्द का अन्त हो गया, रंग में भंग पड़ गया।

चौथा सर्ग

अनारकली नर्तकी होती हुई भी हृदय की धनी थी। जिसको एक बार हृदय दे चुकी थी उससे ले नहीं सकती थी। उसकी रूप-शिखा ने दरबार के कितने ही श्रीमानों को पतंग बना दिया था। स्वयं रसिक-शिरोमणि अकबर उसके प्रेम का भिखारी था। चतुर्थ सर्ग की कथा में अनार और अकबर की आन की परीक्षा है। इसमें एक ने अपने पशु-बल और शान से दूसरी को जीतने का प्रयत्न किया है पर व्यर्थ। सम्राट की शक्ति पराजित हुई, प्रेमी अबला जीती, पुरुष का पौरुष स्त्री की आन के सामने झुक गया। अनार दुर्ग की मज़बूत दीवारों के बीच कारागार में बन्द है। वहाँ वह अन्धकार में पड़ी चिन्तासागर में डूब उतरा रही है। बाहर तो अन्धकार है ही उसके हृदय पर भी घोर तम का परदा पड़ा हुआ है। इस अँधेरे में—

केवल मणि-मालाओं से शर थे प्रकाश के चलते,
जो बेध हृदय - तम निश्चर का दीपक से थे बलते।

इस प्रकार कभी-कभी अंधेरे में चमक उठनेवाले बहुमूल्य आभूषणों से अंधकार की गम्भीरता और भी बढ़ जाती थी। इस तम-रात्रि को उसके केशों ने और भी घना बना दिया था जिनके बीच रह रहकर कंगन में जड़े हुए हीरे चमक उठते थे। बाँह के ऊपर अपना सिर रख कर वह सिसक रही थी, उसे उसके प्रेम का पुरस्कार मिल रहा था—

थीं लटें पोंछतीं आँसू झुक झुक मानो मतवाली—
मणि अलंकार आभा में थीं ओस चाटती काली।

इस अँधेरी रात में नीचे सीड़ के खाए कारागार में यदि काली नागिन चूड़ामणियों के प्रकाश में ओस चाटने के लिए निकलें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? अनार की लटें उसके कपोलों पर बिखर आई थीं और उनके नीचे से आँसू बह रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो मत-

वाली काली नागिनें ओस चाटने के लिए वहाँ उसके कपोलों पर लोट रही हों। चारों ओर की नीरवता उसे और भी खाए डालती थी। संसार का सारा कोलाहल, सारा व्यवसाय निस्तब्धता में डूब गया था, दिन रात्रि में लय हो गया था परन्तु हृदय जिसे और भी शान्त होना चाहिए था और भी चंचल हो उठा था। उसका स्पन्दन और स्पष्ट और तीव्र हो गया था। बच्चे को चुप रखने का कितना ही प्रयत्न कीजिए वह और भी चंचल हो उठता है और विशेषकर निस्तब्धता में जब हृदय को स्तब्ध होना चाहिए उसकी गति और भी स्पष्टतया सुन पड़ने लगती है। चिन्ता के समय एकाग्रता होनी चाहिए परन्तु इस एकाग्रता में एक प्रकार की ऐसी बेचैनी जन्म धारण करती है जिसकी चंचलता से हृदय घबड़ा कर उठने-बैठने लगता है, मनुष्य अपने शरीर से ही डरने लगता है। इस व्यग्र निर्जनता में—

> वह मानस के छायापट पर खींच रही थी झाँकी,
> जिसने उसका कर पकड़ा उसकी मूरत वह बाँकी।

हृदय के चित्र-फलक पर वह अपने प्रणयी का चित्र खींच रही थी। हृदय-पटल पर तो उसका अक्स पड़ ही चुका था आभ्यन्तर चक्षुओं से उस बने चित्र को बारम्बार वह झाँकी ले रही थी। इस तमपूरित नीरवता में यह हृदय पर बना चित्र ही उसका साथी था नहीं भय से अबला अब तक कातर होकर विक्षिप्त हो चुकी होती। यह झाँकी किसकी थी? उस बाँकी मूर्ति की जिसने उसका कर पकड़ा था। पाणि-ग्रहण केवल अग्नि के साक्ष्य में पुरोहित के आदेश से ही नहीं होता, हृदयों के आदान-प्रदान से, तप्तवारि के अभिसिञ्चन से भी होता है। इन लाइनों में भीतर ही भीतर कवि का हिंदुत्व कुछ सजग हो उठा है। अनार यवनी नहीं है, गणिका होती हुई भी हिन्दू है। जिसका चित्र हृदय पर खिंच गया है उसके ही कर में चुपके से हाथ नहीं धर देती परन्तु इसके ठीक विपरीत आचरण करती है, जिसने उसका हाथ पकड़ा उसकी मूर्ति उसके लिए बाकी है और उसी की झाँकी वह बारम्बार अँधेरे में देख रही है। ओथेलो (Othello) काला मूर

था परन्तु उसके मुख की सुन्दरता डेस्डिमोना ने उसके मस्तिष्क में देखी थी— I saw Othello's visage in his mind—वैसे ही हाथ पकड़ने वाला चाहे जैसा होता उसे अनार अपनाती ही फिर यहाँ तो वह सुन्दर राजकुमार सलीम ही था जो अपने बचपन का प्रथम प्यार उसे दे चुका था। उसकी कमनीयता ने ही उसके हृदय में प्रथम प्रणय की गुदगुदी उत्पन्न की थी। अनार ने भी सलीम को अपने जीवन में पहली ही बार प्यार किया था। बड़ा वेग होता है इस प्रथम प्यार का—कोई त्याग, कोई कष्ट इस क्षेत्र में अत्यधिक नहीं समझा जाता। अधिक से अधिक मूल्य भी उसके समक्ष नितान्त न्यून है। सलीम का प्रेममय अंक अनार के लिए 'वेतस निकुञ्ज' था, उसकी, प्रणयान्त में, कुसुम-शय्या थी पर वह शय्या विधि को उचित न जँची उसने उस पुष्पराशि पर अग्निज्वाला रख दी बस सारा एक क्षण में भस्म हो गया—वेतसगृह और कुसुम-शय्या। कुसुम के अंक में रात्र्यागम के साथ ही हिमकण भरने लगते हैं, सारी रजनी क्षण भर में अन्तर्ध्यान हो जाती है, प्रातः सूर्य की किरणें हिमकणों को अलक्षित रूप से चुराने लगती हैं और शीघ्र कुसुमांक शून्य हो जाता है। सलीम वह कुसुम-अंक है, अनार हिमकण और अकबर उस पुष्प की गोद को सूनी करने वाला, कुसुम-शय्या को झुलस देने वाला सूर्य—

> उस कुसुम-अंक में विलसी सुख से मैं हिमकण बनकर,
> दिनकर ने जहाँ बिलोका फिर ठहर न पाई क्षण भर।

दुख की सीमा नहीं होती। अनार अपने कष्ट को देख कर कहती है—

> जीवन में बहुत न रुकना, रुकने में दुख ही दुख है,
> आए, चल दिए चमक कर, बन धूमकेतु, यह सुख है।

ठीक है जब तक इस जीवन का सबेरा रहे, फिर वह चढ़कर मध्याह्न हो जाय तब तक तो इसे धारण करे फिर अलग कर दे। अवसान का मार्ग न पकड़े, दिनान्त निशामुख है—अत्यन्त काला। फिर जीवन तो स्वयं नहीं रुकता इसका तो अनादि प्रवाह है जब से आरम्भ

होता है चलता ही रहता है अन्त में फिर बहने के लिए मृत्यु में लय हो जाता है। जल-प्रपात के रूप में जब से हिमाच्छादित देश से पिघल पिघल कर हिमखण्ड बहने लगते हैं तब से जीवन का प्रवाह अनवरत अधोऽधः होता ही रहता है जब तक कि अन्त में अम्बुनिधि में वह खो नहीं जाता फिर तो उस अनन्त जीवन विस्तार में, उस अनुद्वेलित जलराशि में उसे कौन पहिचान सकता है? उसकी मर्यादा असीम हो जाती है। चाहे जितना भी क्षणिक क्यों न हो जीवन प्रकाशमान होना चाहिए, इसको धूमकेतु सा ही आचरण करना उचित है। धूमकेतु अनियंत्रित वेग से दौड़ता हुआ सौर-मण्डल में घुस कर सूर्य से जा टकराता है फिर उसका कोई पता नहीं पाता। उसका जीवन अनार की दृष्टि में सर्वोत्कृष्ट है, उसका रूप प्रकाश से आरम्भ होता है और उसी में डूब जाता है हम उसे कभी अप्रकाशित नहीं देखते। प्रेम का मार्ग तमपूरित और दुखद है, मृत्यु उससे अच्छी है। यही अनार के जीवन-अध्यात्म का रहस्य है। शशि के जीवन-मरण की क्रिया को घृणा की दृष्टि से देखती है। उसका घटना बढ़ना उसे नित्य के मरण सा प्रतीत होता है। उससे अच्छा तो धूमकेतु है जो एकदम उठकर गिर जाता है—'बढ़ कर फिर शशि सा घटना यह कैसा मर कर जीना!' पर अनार, यही संसार है, इसमें यदि संसृति न हो तो इसका संसार नाम सार्थक क्योंकर हो? जगत की सार्थकता केवल उसके जन्म धारण करने और फिर त्याग देने में है। जो भी प्राणी—लक्ष्य अथवा अलक्ष्य—स्थिति धारण करता है उसके आरम्भ के साथ ही उसका मरण होने लगता है। जीवन मृत्यु का है पर इतना अवश्य है कि यदि जीकर आँसू ही पीना हो तुम्हारे जैसे कितने ही अमृत तक को तज सकते हैं। सच ही है इस अमरता का स्वाद कोई भीम द्वारा बलपूर्वक निकाले हुए शिरस्त्राण से अंकित मस्तक वाले अश्वत्थामा से पूछे और पूछे जरा के बोझ से नित्य मरने वाले ग्रीक टिथोनस से।

सलीम के अंक में खड़ी अनार को लज्जा ने जकड़ लिया था, भले प्रकार वह उसे देख भी नहीं सकी थी इसी का उसे बड़ा दुख है।

जब वह उसे आलिङ्गनादि उपन्यासों से रिझा रहा था तब तो उसे उस पर अपनी निखरी हुई जवानी ही निसार कर देनी थी पर वह बेमौके चूक गई—

वे बार बार कहते थे बोलो, बोलो, कुछ बोलो,
यह चन्द्रबदन दिखला दो, खोलो घूँघट पट खोलो।

अनार जब गाती थी अनवगुण्ठिता थी, पर नृत्य करते समय भाव-भङ्गियों के प्रदर्शनार्थ उसने मुख पर घूँघट डाल लिया था इसी समय विलास में भर कर सलीम ने दौड़ कर उसे अपने अंक में भर लिया था। इस समय नर्तकी गणिका नहीं थी वरन् उसमें वह निश्छल और खरी लज्जा भर गई थी जो प्रेम के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए उसमें अलक्षित रूप से वर्तमान रहती है। यही एक समय होता है जब प्रेम स्वकीया और परकीया दोनों में एक सी सात्विकता का सृजन करता है, सो अवगुण्ठिता अनार को अंक में भरे सलीम बारम्बार उससे 'घूँघट पट' खोलने का आग्रह कर रहा था, उससे कुछ भी बोलने के लिए अनुनय विनय कर रहा था परन्तु—

क्या कहूँ कलीमुख से कुछ परिमल बोलो नहिं फूटी,
जब काल सामने नाचा तब मेरी निद्रा टूटी।

हृदय में बहुत कुछ भरा हुआ था, कहना बहुत था पर कण्ठ खुलता ही न था। बारम्बार मेरे सुषुप्त हृदय को उन्होंने जगाया पर उसकी निद्रा नहीं टूटी अब जब प्रणय की व्यथा से हृदय पर चोटें पड़ रही हैं तब उनके आघात से उस व्यथा का अनुभव करने के लिए ही यह हृदय जाग्रत हो उठा है—

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम्॥

अब वह कल ही मरनेवाली है—ऐसा अनार को प्रतीत होता है—'मैं घाट उतर जाऊँगी पाकर करवाल किनारा'। कितने ही इस करवाल किनारे को अपने दुःखातिरेक में ढूँढ़ा करते हैं अनार भी उसीको खोज में है शायद कल प्रातः मिल जाय—

है विदा माँगने वाली बंधन-निशि की अँधियाली ,
मुझको स्वतन्त्र कर देगी आ अरुणोदय की लाली ।

प्रातः की लाली कदाचित उसका अन्त कर दे, उसके रक्त से दिशाएँ रञ्जित कर दे। अनार सोचती है कि दूसरे दिन प्रातःकाल उसे अवश्य प्राणदण्ड होगा। उसने अपने प्रणयी-जीवन में अंधकार ही अंधकार पाया है उसका अन्त करके वह स्वतंत्र विचरेगी। इस जीवन-रात्रि का कल सूर्योदय के साथ ही अन्त हो जाएगा। प्राणवध प्रायः प्रातःकाल ही किया जाता था। सो अनार समझती है कि इस अन्धेरी दुनिया से निकल कर बाहर अनन्त सागर पार करने के लिए प्रातः सूर्य ही जल-यान बनकर उसकी सहायता करेगा—

इस अंधकार-अंबुधि का दिनकर जलयान बनेगा ,
विश्राम जीव पावेगा या फिर संग्राम ठनेगा ।

कवि की लेखनी अनार के हृद्देश और वहाँ के भावों का चित्रण करते-करते और आगे बढ़ जाती है। कल प्रातः जब इस जीवन का अन्त हो जाएगा तब यह जीवात्मा इस शरीर से मुक्त हो जाएगा। यह तो तय है पर अनार पूछती है क्या फिर आवागमन का अन्त हो जाएगा? वह तो प्रेम को ही सर्वोपरि तप समझती है। मुक्ति का सर्वोच्च साधन उसके निकट निश्छल प्रेम ही है और इसीलिए वह सोचती है कि चूँकि उसने प्रेम को पूर्णतया निबाहा है अब उसका जीव विश्राम करेगा, आवागमन के बन्धन से छूट जाएगा। और यदि ऐसा न हुआ, यदि प्रेम ही जीवन का उद्देश न हुआ तो जीव मुक्त नहीं हो सकता उसे अभी फिर जीवन धारण कर इस पार्थिव संग्राम में उतरना होगा—'फिर संग्राम ठनेगा'। सम्भव है अकबर प्राणदण्ड की आज्ञा न दे, फिर? तो अवश्य ही संग्राम ठन जाएगा—उसमें और उनमें जो उसके हृदय का गतिरोध करते हैं, अकेली अनार में और ऐश्वर्यवान प्रतापी अकबर में।

अनार की वीरता का पता उसके निम्नलिखित वक्तव्य से लगता है—

उस मेरे मृत्यु समय में जब लोहे से हूँ जकड़ी,
जल्लादों ने नंगी कर तलवारें जब हों पकड़ी
शोणित पीने को प्यासी करवालों की छाया में,
यह अमर जीव हँसता हो इस मिट्टी की काया में,

× × × ×

जब नहीं कामना कोई सुखशान्ति भंग करती हो,
जब सागर से मिलने को सरि अंतिम पग धरती हो,
जब जीवन हरी चरी को होवे मृग चरने वाला,
हो एक बूँद में भरने वाला जीवन का प्याला,
सब तारे चले गए हों रजनी का अंतिम तारा,
झिलमिल झिलमिल टिमटिम कर उड़ता हो जैसे पारा,
दीपक का स्नेह चुका हो बुझने पर होवे बत्ती,
जब हो हिसाब कर डाला चुकता कर रत्ती रत्ती,
हत्थे से टूट गई हो चकरा पतंग गिरती हो,
पुतली, फिरने से पहिले, प्रिय दर्शन को फिरती हो,
बस एक छेव हो बाकी, तरुवर हो गिरने वाला.
रवि-कर कमंद फेंके हो, चढ़ने को हो हिमबाला,
चिर निद्रा में सोने से पहिले जब नयन बेचारे,
हों ढूँढ रहे जब तुमको तब आ जाना तुम प्यारे।
मैं देख आँख भर तुमको निज चूक क्षमा करवाती,
तुम हँस देते स्वीकृति में, मैं हँस हँस कर मर जाती।

जब आधुनिक जेलों का क़ैदी तीस बेंतों की मार बर्दाश्त करने के लिए तैयार हो जाता है तब वह कारागार की सारी यंत्रणाओं से मुक्त हो जाता है, फिर तो वह चैन की नींद सोता है। उसकी ओर कोई आँख नहीं उठा सकता। जेलर, वार्डर सभी उसके रुख़ को देखकर बातें करते हैं, सभी उसकी पसन्द की वस्तुएँ जेल के भीतर 'तिकड़म' के ज़रिए पहुँच जाती हैं और बाकी दिन उसके शीघ्र कट जाते हैं। पर ये तीस बेंत साधारण नहीं बड़े भयानक होते हैं। इसी प्रकार जब

मनुष्य के हृदय से मृत्यु का डर निकल जाता है तब वह अपनी असली रंगत पर आकर चमक उठता है। कायरता में सारे दुर्गुण भर जाते हैं और निर्भयता सद्गुणों का आश्रय है। जब तक मृत्यु का भय बना रहता है मनुष्य पग पग पर काँपता है पर जैसे ही वह अपना सिर हथेली पर ले लेता है उसकी चुनौती बड़े बड़ों का गुमान क़ाफ़ूर कर देती है, बड़े-बड़े सम्राटों की ताक़त नाप देती है। अनार प्रेम की दीवानी है और इस राह के पथिक न तो अपनी ओर देखते हैं न संसार की ओर। न तो उन्हें अपने शरीर की मर्यादा की फ़िक्र होती है न सामाजिक विनयन की।

गणिका का चरित्र बहुत ही उच्च है—प्रेम से ओत प्रोत वह मृत्यु को चुनौती देती है, आत्मा को अमर जानती है। जिस समय उसके प्राणबध के लिए जल्लादों की तलवारें तड़पेंगी उस समय उसके बाहरी मिट्टी के आवरण के भीतर 'अमर जीव' हँसता होगा—प्राण-वध की आज्ञा देने वाले अहंकार-धनी सम्राट पर और नित्य बध की वृत्ति करने वाले बधिकों पर। कौन किसको मारता है—नायं हन्ति न हन्यते। अनार मृत्यु का आह्वान करती है। यह शरीर जो विविध कष्टों का घर बन गया है नष्ट ही हो जाय तो अच्छा है। यदि इससे सलीम की प्राप्ति न हो सकी, प्रेम का आश्रय न मिल सका, तो इसको धारण करने से लाभ ही क्या है ?

अनार अपनी मृत्यु का समा बाँध रही है। उसके वध काल का कल्पित आदर्श इस प्रकार है—जब कोई अन्य कामना मुख मण्डल पर अपनी छाया न डाल रही हो केवल प्रेम की आभा उससे फूट फूट कर निकल रही हो, जब अपने सुदूर मार्ग पर चल कर उसका अन्त कर अपना सारा जीवन समुद्र में ढरका देने के निमित्त सरि उसके पास पहुँच कर एक बार उठ कर अपने चारों ओर देख रही हो, अपनी तीर्थयात्रा में वह अन्तिम पग रखने के लिए चरण उठाती हो, जब जीवन रूपी हरित शस्य को अन्तक-मृग चरने वाला हो, जब जीवन का प्याला भर रहा हो केवल एक बूँद बाक़ी हो, वह प्याला जो उस

एक बूँद के मिलते ही लबालब भर कर ढरक जाता है, कृष्ण-प्याला का वह बूँद जो कृष्ण-चरण को छूकर सारा प्याला ही ख़ाली कर देता है, जब कालरात्रि का अन्त होने वाला हो, एक जीवन तारे को छोड़ सभी डूब चुके हों और वह भी जब डूबने के निमित्त पारा की भाँति झिलमिल कर उड़ जाने वाला हो—पारा को हाथ पर रखिए आकाशस्थ तारे की भाँति झिलमिल झिलमिल करने लगेगा और देखते ही देखते करके किञ्चित कम्पन मात्र से पलक मारते ग़ायब हो जाएगा—दीपक का तेल जब समाप्त हो चुका हो—इह लोक की क्रियाएँ समाप्त हो चुकी हों—स्नेह के वियोग से दीपवर्तिका सूख कर एकाएक भभक उठने वाली हो, जब किसी का लेना देना न हो, कुशल मुनीम की भाँति सारा हिसाब देख चुके हों, रोकड़ सारा मिला चुके हों, पैसे पैसे का हिसाब जब चुका दिया गया हो, व्योम में ऊँची उठती हुई पतंग की डोरी जब हत्थे से ही टूट गई हो, पतंग ने लौट कर संसार न देखा हो, प्रेम-सूत्र से बाँध कर उड़ाने वाले के हाथ से निकल कर जब पतंग उसकी ताकत से बाहर निकल गई हो और अन्त की ओर वारम्बार चक्कर खा खा कर गिर रही हो, बस जीवन अब शान्त होने वाला हो और अन्तिम समय में आँखों की पुतली उलट रही हो, प्रेममद में मतवाली होकर घूर्णित हो होकर अपने प्रेमाधार को खोज रही हो, कुल्हाड़ों की निरन्तर चोटों से तरुवर कट चुका हो पर एक छेव—वह छेव जो उसके जीवन को शेष करके उसे धराशायी कर देता है—जब बाकी हो, जब हिन्दू बाला आमृत्यु बन्दी होने के लिए—कौतुक-सूत्र में बँधने के लिए—सिन्दूर-करस्थ वर के सम्मुख खड़ी हो, जब सिन्दूर-विन्दु की लाल टीका उसे पति के जीवन-मरण की संगिनी बना रही हो, जब चिर निद्रा में सोने के लिए नेत्र उत्सुकता में उलट-उलट कर तड़प रहे हों तब सलीम क्षणभर के लिए अनार के सम्मुख आ जाए जिससे उसे अपने अन्त समय में देखकर वह अपनी अन्तिम साध पूरी कर ले। सलीम को किसी और ने क्या इस मात्रा में प्यार किया होगा? क्या किसी अन्य प्रेमिका का प्रेम-राग—किसी हंस का अंतिम

गान (swan-song) इतना करुण, इतना सुन्दर हुआ होगा ? अनार की सारी साधें मिलकर एक हो गई हैं—एक बार उसकी मृत्यु के समय जब सारी दुनिया उसके वधस्थल के इर्द-गिर्द घूम रही हो और ताँतिया टोपी की फाँसी के समय की भाँति दूरस्थ खड़ी जनता नेत्रों से मूक आँसू बरसा रही हो उस समय प्रेम के अर्थ, प्रिय प्रेम-भाजन के लिए, अकबर की क्रोधाग्नि में जलते उसे देर न लगेगी, वह प्रसन्न बदन अपने जीवन के मोती बिखरे देखे, तमन्ना केवल इतनी है कि सलीम क्षणभर के लिए कहीं से पहुँच कर उसकी आँखों में बस जाय। इस प्रकार इस कल्पित मृत्यु की सुखमयी कामना अनार के भीतर-बाहर व्याप्त हो रही है, पर क्या उसकी यह साध पूरी होगी ?

गणिका ने अपना सब कुछ खोकर, व्यवसाय नष्ट करके सलीम को अपनाया है। एक ओर संसार था दूसरी ओर सलीम। उसने सलीम को अपनाया, सलीम ने उसको—'दुनिया हो गई पराई जब से तुमने अपनाया'। इसलिए जब उसका अन्तिम समय निकट हो उस समय—

अंतिम है एक विनय यह आना अवश्य तुम आना,
है हवा भरी पालों में लंगर है रहा उठाना।

इस विनय में केवल बेचारापन ही नहीं है बल्कि ओज है, शक्ति है। अनार मुफ़्त का त्याग नहीं चाहती, उसने स्वयं अपना सब कुछ सलीम के लिए बिगाड़ दिया है मृत्यु तक की कामना करती है और शूली का आलिंगन करने को प्रस्तुत है इसलिए वह चाहती है कि अन्त समय में वह आकर उसे विदा कर दे। अपना सारा अतीत अपने हृदय के उद्गार में भर कर वह सलीम की याद में उससे कहती है—

हो कोर दया की कुछ भी, कुछ भी हो प्रेम हमारा,
बदली हो यदि निज कर से मेरे जीवन की धारा,
मेरे कौमार्य-सलिल में यदि रंग ही तुमने डाला,
यदि मेरे कोरे मन में हो भरी प्रेम की हाला,

तो तुम्हें शपथ है मेरी प्यारे प्यारे भावों की,
है आन तुम्हें निज प्रण की, इन हरे हरे घावों की।
आना अवश्य ही आना अंतिम दर्शन दे जाना,
सूखे में अटकी तरणी जल में ढकेलते जाना।

इस प्रेम-पूर्ण आह्वान पर, इस करुणोत्पादक गान पर कौन मानव नहीं रीझ जाएगा? किसकी साध इस प्रेम-प्रदर्शन से नहीं मिट जाएगी? बड़ी आजिज़ी के साथ अपने प्रेम का सारा अतीत बतलाकर वह सलीम को बुला रही है। शपथ ऐसी बलवती है जिसे कोई निर्दयी नहीं ठुकरा सकता। किसकी ताक़त है जो इस विनय की उपेक्षा कर जाए? अनार कुछ दया नहीं चाहती अपना उचित भाग ही माँगती है—यदि सलीम ने अपने हाथों उसके बहते जीवन की धारा अपना हाथ लगाकर फेर दी है, यदि उसके सीधे चलते भाग्य में अपना भी मिलाकर सलीम ने एक तीसरे भाग्य का सृजन किया है। यदि उसके स्वच्छ, सादे जल में उसने अपना प्रेम रंग घोलकर रंगीन बना दिया है, यदि उसके अछूते, कोरे चित्तचषक में प्रणय की हाला भरी है तो वह लौटकर स्वयं उसे क्यों नहीं पी जाता? यदि उसके अतीत का सिंहावलोकन सही है तो सलीम को अनार की शपथ है और शपथ है उनके प्यारे प्यारे भावों की। दो प्रेमी जब आकर्षित होते हैं, तब मिलकर बातों का जो ताँता लगाते हैं वह नहीं टूटता। दिन-रात वे बातें करते हैं, उनकी बातें समाप्त नहीं होतीं। संसार आचार्य के साथ घूरता और पूछता है—भला ये कौन-सी बातें करते हैं जो कभी समाप्त ही नहीं होतीं! फिर भी सारा संसार अपने-अपने समय में व्यक्तिगत रूप से स्वयं वही करता है जो ये करते हैं। बातें क्या होती हैं उनका कुछ ओर-छोर नहीं होता केवल मैं तुमपर मरता हूँ, मैं तुमपर बिकी हूँ—इसी में दिन रातें और रातें दिन हो जाती हैं। यही निचोड़ है उस अनन्त वाक्तारतम्य का। हृदय भावों को भर-भरकर सबको पूरा-पूरा कह देने के लिए नित्य मिलते हैं परन्तु भावातिरेक के कारण उनसे कुछ विशेष कहा नहीं जाता। ये भाव जिनको जिह्वा से, स्पर्श और नेत्रों से प्रेमी एक दूसरे पर व्यक्त

करते हैं बड़े नाज़ुक और गम्भीर होते हैं उनकी याद दिलाकर सलीम को उन्हीं की शपथ दिलाकर कहती है—

आना अवश्य ही आना अन्तिम दर्शन दे जाना,
सूखे में अटकी तरणी जल में ढकेलते जाना।

प्रेम के प्राथमिक भावों की शपथ बड़ी क़ीमती होती है उनके स्मरण पूर्वक अनार सलीम से अन्तिम दर्शन देने के लिए कहती है—आना और जीवन में कमी आ जाने के कारण जो हमारी नौका सूखे थल पर—रेते पर—अटक गई है उसमें ज़रा हाथ लगा देना, वही हाथ जो प्रणय का होता है—प्र-नय का—;वही हाथ जो हिन्दू ललनाओं का सर्वस्व होता है जिसको एक बार पाकर वे कभी नहीं खोतीं और जिसे एक बार खोकर वे अपना सर्वस्व खो देती हैं, अनन्त वैधव्य जिसके अभाव में उनके माथे के सिन्दूर पर, उनकी काँच की चूड़ियों पर, उनकी रँगी चुँदरी पर, उनके शृङ्गार पर, उनके आनन्द और उल्लास पर एक साथ घूरता है, आक्रमण करता है। उस हाथ की याद दिलाकर वह अपनी स्मृति में बने सलीम को बुलाती है, उससे अपनी जीवन-नौका को जीवन-स्रोत में डाल देने के लिए करबद्ध होती है। सलीम क्या आएगा ?

जब प्राणी अपने जीवन की आशा छोड़ देता है और अन्त समय निकट देखता है तब, कोई अपना पास हो या न हो, वह अवश्य कुछ न कुछ कहता है। मृत्यु की विभीषिका तो बहुतों को कायर बनाकर चीत्कार करा देती है। बहुतेरे यह जानते हुए कि सहायता मिलनी असम्भव है सहायता के लिए चिल्ला उठते हैं। अनार अपना मृत्यु समय सन्निकट देखकर अनुपस्थित प्रियतम का सम्बोधन करती है। उसे पूरी आशा है कि सलीम उसके पीछे अवश्य रोएगा ज़रा भी, ध्यान आते हो। उसके आँसू इसे परलोक में भी विकल कर देंगे। सलीम के आँसू उसे लौटा भी तो नहीं सकेंगे। अनार चाहती है कि उसकी मृत्यु के उपरान्त संसार से उसकी स्मृति विलुप्त हो जाय। वह अपना स्मारक नहीं चाहती। जब जीवन के प्रभात में उठती

उमंगों की हविश पूरी न हो सकी तब भला मृत्यु के उपरान्त समाधि का स्मारक रूप किस काम का ?—

मिट्टी में लोग दबा दें तो मत समाधि बनवाना,
जो कली नहीं खिल पाई उस पर मत फूल चढ़ाना।

सम्भव है अनार ने वाराङ्गना होने के नाते निस्पृह प्रेम दान किया हो, परन्तु प्रेम का प्रवाह तो उसने अब पहचाना जब वह स्वयं उससे सराबोर हो गई। प्रेम की कली तो अब निकली थी, अभी वह हल्के हल्के मुँह खोलने की चेष्टा कर ही रही थी जब कि झंझावात के एक निर्दय झोंके ने उसे तोड़कर अलग कर दिया। समाधि की लालसा तो नहीं है, और न 'चिराग़' और 'गुल' की ही है—नै चिराग़े नै गुले—फिर भी उसे विश्वास है कि राह चलते श्रद्धालु अवश्य 'मिट्टी का दीप जला के' उसकी क़ब्र प्रकाशित कर दें उस समय उसकी इच्छा है कि सलीम अपने हाथों हवा करके जलते दीप को 'ठंढा' कर दे, लौ-कली को 'गुल' कर दे ('Lovers never welcom light in dark') सलीम जब उसकी कब्र पर पहुँचे तब अनार चाहेगी कि उसके चारों ओर नीरव रजनी का प्रसार हो, क़ब्र के ऊपर टिमटिमाता हुआ दीप भी शान्त कर दिया जाय। प्रज्वलित दीप निर्वाण को प्राप्त होकर शान्ति लाभ करेगा, वरन अनार के वक्षस्थल पर जलता हुआ उसकी हार्दिक ज्वाला का उद्दीपन ही करेगा, उसके दिल में आग भी लगा दे तो कुछ ताज्जुब नहीं, इसीलिए वह चाहती है कि चिराग़ 'गुल' कर दिया जाय। जीवन काल में उसकी प्रेमकली खिलकर 'गुल' नहीं हो सकी थी अब मृत्यु के उपरान्त उसका प्रेमी भ्रमर सलीम ही यदि उसे अपने हाथों 'गुल' कर दे तो उसके बड़े भाग्य ! निराशा में आशा का आभास स्वाभाविक है। अनार जानती है कि उसका सुख समाप्त हो चुका। अब उसके प्रेमी से उसकी देखादेखी तक नहीं हो सकती फिर भी वह आशा करती है कि मृत्यु के उपरान्त भी उसका प्रेमी कम से कम उसकी मिट्टी का स्पर्श तो करे। तृष्णा मनुष्य की सहचरी है, कभी साथ नहीं छोड़ती !

जिस चोट का अनुभव इस समय अनार कर रही है उसकी वेदना इतनी तीव्र है कि वह चाहती है कि उसके प्यारे सलीम को उसका सहन न करना पड़े। उस वेदना का अनुभव सलीम को भी अवश्य होगा यदि वह अनार के प्रेम का दीवाना बना रहा, यदि अनार उसकी स्मृति में बनी रही। इसी कारण अनार चाहती है कि उसका प्रेमी सलीम उसे उसी प्रकार भूल जाय जैसे बालक प्रायः उठकर रात के स्वप्न को भूल जाता है। कवि की यह उपमा बड़ी ही सार्थक है। स्वप्न की स्मृति कभी मृदु कभी कठोर होती है। प्रायः तो वह विस्तृत होती ही नहीं। विशेषकर प्रेमस्वप्न की स्मृति तो जागने पर भी बारम्बार चोट करती है और उससे हृदय क्षतविक्षत हो जाता है। इस चोट को अनार अच्छी तरह जानती है इसी कारण वह साधारण जनों के स्वप्न की बात नहीं कहती, बालक के स्वप्न की बात कहती है—तुम भूल मुझे यों जाना ज्यों बालक स्वप्न सबेरे। बालक रात के स्वप्न प्रायः प्रातःकाल तक भूल जाया करते हैं। यह सन्देश तो सलीम के लिए है परन्तु स्वयं वह उस प्रेम को नहीं भूल सकती जिसने उसके गणिका-जीवन के नरक में केवल एक बार स्वर्ग की झलक दिखाई है—पर भुला न मैं पाऊँगी तुमको हे प्रियतम मेरे।

हिन्दुत्व की छाप अनार के प्रेम पर पड़ गई है। निःस्वार्थता इस प्रेम की जान है जो अनार में पूरी तरह से चैतन्य हो उठी है। 'इह' 'पर' का बोध नष्ट होगया है—

मैं आगे जब बढ़ जाऊँ जीवन मंज़िल तै करके,
सरि में लहरों सी उठकर निजता जल में लय करके,
तब देखो नाथ दुखित हो मत आँसू कहीं गिराना,
तुम सुखमय जीवन-तट में मत खारा नीर मिलाना।

भक्तजी का श्लेष एक ऐसा गुण है जो खलता नहीं रञ्जन ही करता है। सृष्टि का प्रवाह नदी के जल की भाँति है। इसका प्रवाह अनादि है। इसमें लहरें होती हैं। लहरें ही जीवन हैं। जिस प्रकार सरिता में अनन्त तरंगें उठ उठ कर उसी में विलीन हो जाया करती हैं उसी

प्रकार सृष्टि रूपी नदी में जीवन तरंग की भाँति है। अनन्त जीवन इस सृष्टि में स्फुट होकर लुप्त हो जाते हैं। जैसे नदी में जीवन अथवा जल का प्रवाह छोटी बड़ी तरंगों के रूप में हुआ करता है और ये तरंगें नदी की चाल में मंज़िलों का काम देती हैं उसी प्रकार सृष्टि में जीवन का स्थान है। सृष्टि जीवन के आरम्भ और अन्त का इतिहास है। जीवन रूपी मंज़िलों ही से उसकी अपने अन्त की ओर गति होती है। अनार का निजत्व नदी में तरंग की भाँति है। जल की तरंग नदी की अपनी है। तरंग का स्वयं स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं। नदी के जल - कणों से ही तरंग-मंज़िल का काय-निर्माण होता है वह काय उठकर फिर उसी में निमज्जित हो जाता है, उसका निजत्व कुछ पृथक तो है नहीं। सरिता और तरंग का निर्माण-द्रव्य एक ही—जीवन अर्थात् जल ही—है। सृष्टि भी जीवात्मा के शारीरिक जीवन के साथ अपने मंज़िल तै करती है। अनार कहती है कि जब वह यह जीवन समाप्त कर अगले मंज़िल को तै करने के लिए बढ़े तब उसके सुखमय, स्वच्छन्द जीवन में, मीठे जल से पूर्ण घट में आँसुओं का खारा जल मिला कर सलीम उसे दूषित न कर दे। अनार को अपने प्रेम की गति में कितनी ही रुकावटें पड़ीं अब जीवन के साथ ही उनसे भी उसका छुटकारा हो जाएगा। यहाँ से चले जाने के बाद उसके प्रेम पर किसी और का नियन्त्रण नहीं हो सकेगा। वहाँ अकबर की सेनाएँ चक्कर नहीं काटतीं, न उसके कारागार ही बन्दी-जीवन को चिरायु करते हैं। ऐसी अवस्था में उसकी कल्पना है कि उसका जीवन सुखमय होगा ही। परन्तु बेचारे सलीम के आँसू क्या रुक सकेंगे? इसका अनार को पूरा अन्देशा है और वह डरती है कि कहीं सलीम उसके मीठे गंगाजल में सामुद्रिक, आँसुओं वाला खारा, जल न मिला दे। बहुत पहिले कालिदास ने कहा था—

अपशोकमनाः कुटुम्बिनीमनुगृह्णीष्व निवापदत्तिभिः।
स्वजनाश्रु किलातिसंततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते॥

यहाँ अनार का हिन्दूत्व कवि के विश्वास का प्रतिबिम्ब है। कवि

को याज्ञवल्क्य का निषेध ज्ञात है:—

श्लेष्माश्रु बन्धुभिर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः।
अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः स्वशक्तितः॥

अनार अपने भाव-स्वप्न में प्रेमी को औचित्य का बोध करा रही थी। अपनी कल्पना में वह इस प्रकार लीन थी कि अकबार का प्रवेश करना उसे कुछ इन्द्रजाल-सा प्रतीत हुआ। लौह द्वार के खुलने से आँखों में चकाचौंध हो आया और तब जो उसने एकाएक राजसी पोशाक में किसी को प्रवेश करते देखा उसे अपना भाव-स्वप्न ही सत्य होता हुआ दीख पड़ा, ऐसा जान पड़ा जैसे सलीम ही प्रवेश कर रहा हो। भक्तजी की कल्पना और उसका वर्णन dramatic तो होता ही है, अनार ने अपने भावों को कार्यान्वित होते देख वह अकबर को ही सलीम समझ प्रेमपूर्वक उसका सम्बोधन कर उठी—'आओ सलीम प्रिय आओ।' शीघ्र ही अकबर की बिजली की कड़क सी आवाज़ सुन कर उसका स्वप्न टूट गया। अकबर के प्रेम-प्रस्ताव को उसने ठुकरा दिया। सम्राट उसे कभी भय, कभी ऐश्वर्य के लोभ से जीतने का प्रयत्न करने लगा परन्तु सारा व्यर्थ हुआ। उसने उसकी तलवार के आगे 'क़लम' होने कि लिए अपना सिर झुका दिया। राज्य-वैभव का प्रलोभन दे दे कर अकबर अनार को उस नीति से वश करने का प्रयत्न करने लगा जिसका प्रयोग अधिकतर प्रौढ़ करते हैं—

तू राजमुकुट की मणि बन लड़कों का नहीं खिलौना,
कितनी चौकड़ी भरेगा मिट्टी का वह मृगछौना?
यदि राज्यभोग हो करना तो मेरे उर में आओ,
तुम राज करो रानी बन जीवन को सफल बनाओ।
तेरे इंगित के ऊपर संसार नाचता होगा,
तेरी करुणा की कोरें सब राज जाँचता होगा।
जिस पर भ्रू-बंक करोगी उसका विनाश ध्रुव मानो,
जिस पर कृपालु तुम होगी उसको निहाल ही जानो।
आँखों के एक इशारे से राज उलट जावेंगे,

तू जिसे देख भर लेगी बस भाग पलट जावेंगे।
अपनी आँखों से देखी मैंने तेरी वह लीला,
करवाल गई गिर कर से तेरा लख रूप रसीला।
यदि काम बुद्धि से लोगी, हो हृदय न रस से ख़ाली,
हो आँख जौहरी तेरी महि रत्न परखने वाली,
तो सिंहासन के सुख को बन मूर्ख न ठुकराओगी,
यों हँस कर मेरे उर से तुम दौड़ लिपट जाओगी।

प्रेमी की आँखें जौहरी नहीं पारस होती हैं, रत्न परखतीं नहीं, कुधातु को भी स्वर्ण कर देती हैं। लैला और शीरीं की आँखों के सामने से कितने ही शाहज़ादे गुज़र गए पर चढ़ न सके। प्रेम कोई सोचकर, तौलकर, नहीं करता यदि कहीं ऐसा हो सकता फिर उसको सारी व्याधियाँ ही दूर हो जातीं, मुहब्बत का रोना ही क्या रहता? उर्दू शायरों का एक-एक बोसे के लिए रात-रातभर का तड़पना ही क्यों होता? फिर तो 'दिल की दवाओं के लिए दुकान-दुकान' मारे-मारे फिरने की परेशानी ही क्यों होती! अथवा 'मुहब्बत के मसीह' ही क्यों हरवक्त अपनी 'दुकान बढ़ाए' रहते? यह न सौदा है और न आँक तौलकर दिया जा सकता है। यही तो वह स्थान है जहाँ पहुँच कर मनुष्य अपनी भौतिक विभूतियों को भूल जाता है, जहाँ वह अपने सारे ऐश्वर्य को प्रेमाश्रय की एक हल्की मुस्कान पर निछावर कर देता है फिर भी उसकी हविशें पूरी नहीं होतीं। यही वह कसौटी है जिसपर कसकर सम्राटों की सारी श्री अपनी प्रभा खोकर कान्तिहीना हो जाती है, जहाँ कितने ही किरीट-मुकुट धूल में लोट-लोटकर भी उसकी नखप्रभा का स्पर्श नहीं कर सकते। काबुल से ढाका और काश्मीर से अहमदनगर तक अप्रतिवार्य वीर्य सम्राट के ऐश्वर्य की गणिका का अनारकली के एक 'नहीं' शब्द ने गरदन नाप दी। मानधनी अकबर के 'मान-माप का पारा' उतर गया। एक लुटेरा दूसरे को हराकर उसका माल छीन ले, एक सम्राट अन्य नृपति का राज्य धूल में मिलाकर स्वायत्त कर ले परन्तु वह किसी मनस्विनी का हृदय दण्डबल से नहीं ले सकता। कोमलांगी की काया

सुकुमार अवश्य होती है परन्तु उसमें प्रवेश तबतक असम्भव है जब तक उस कोट के अन्दर का ही कोई सैनिक आक्रमणकारी से मिलकर सिंहद्वार की अर्गला न खोल दे। अकबर ने भारत-विजय में कितने ही कोट बल और बुद्धि से सर किए थे परन्तु उसकी कला इस क़िले पर न चली। तड़प उठी अनार—

> इस कोमल तन के भीतर है हृदय-कोट का मंडल,
> जिसमें न कभी घुस पाते हैं विश्व लुटेरों के दल।
> कापुरुषों को भय देकर कितनों का धर्म बिगाड़ा,
> है बना महल जो तेरा परियों का एक अखाड़ा।
> चिड़ियों सी पिंजड़े में हैं, हैं रोम रोम से रोतीं,
> छिप छिप कर अश्रु गिरा कर दाने विनाश के बोतीं।

राजाओं को कवि 'लुटेरों का दल' कहता है। सच ही है, अमन और क़ानून के नाम पर, विजय और साम्राज्य के लिए रक्तपात करना लूट के सिवा और क्या है? ग़रीब डाकू जब किसी बेकस को लूटता है तो उसके नाम पर थू-थू की जाती है और रघु और सिकन्दर के नाम दिग्विजयी वीरों के आगे लिखे जाते हैं परन्तु यदि न्याय की दृष्टि से देखें तो क्या समुद्रगुप्त और क्या महमूद, क्या हैनिबाल और क्या नेपोलियन सभी मनुष्यता के खून के प्यासे, निरीहों के रक्त से रँगे, विजय और वैभव के मद में झूमनेवाले, लूट के लोभी लुटेरे ही हैं। साधारण लुटेरों और इनमें अन्तर केवल इतना ही है कि इनके रणहुंकार और उत्सवनाद जनता की उठी हाहाकार को अपनी ध्वनि में दबा देते हैं और बेचारे 'सुल्तान' की आवाज़ बरेली के ऊपर भी नहीं उठ पाती, उनके अनुयायियों की संख्या अनन्त होती है यहाँ ताँतियाँ भील पीछे फिर कर जब देखता है तो मैदान साफ़! अकबर को अनार ने चुनौती दे दी। वह उनमें से नहीं है जिनके चयन से अकबर ने अपने महल को खासा 'इन्दर-सभा' बना रखा है, परियों का अखाड़ा सा कर रखा है, पर उन परियों की दुर्दशा वह क्या नहीं जानती? उनमें से कितनी ही सुकेशी और तारा की भाँति रावण

और बालि द्वारा बलपूर्वक हरण कर ली गई हैं जो पञ्जरबद्ध पक्षियों की भाँति रोम रोम से नीर ढरका रही हैं। उनके आँसू क्या निष्फल जायँगे? अरे वे तो विनाश के बीज हैं जो क्षेत्र में गिर गिर कर नाश के पौधे खड़े करेंगे जिन्हें अकबर के वंशधर औरंगज़ेब और मुहम्मद काटेंगे। इन बीजों को पनपते देर भी क्या लगी? कुछ ही साल बीते थे और फ़तहपुर सीकरी का वह क़िला, जिस पर अकबर को इतना नाज़ था, जहाँ मरियम और जोधबाई के साथ लेसों की भाँति कटी संगमरमर की अनन्त जालियों के भीतर पाँच सहस्र बेगमों पर ऊपर बारहदरी के एकाकी स्तम्भ अथवा अन्य प्राचीरों पर खड़ा सम्राट अपनी मुस्कान की वर्षा करता था, सूनसान बियाबान हो गया। जहाँ शाहंशाह ने सारे संसार के धर्मों को सुलझा कर उनके प्रतिनिधियों के सहयोग से 'दीने इलाही' की नींव डाली, जहाँ 'पचीसी' की गोटियों की जगह उसने चाँद को भी लजानेवाली ग़ुलाम बाँदियों का संचालन किया वहीं उसकी मृत्यु के शीघ्र ही बाद भेड़िए और चीते अपने शिकार ढूँढ़ने लगे! रानियों के खेत में बोये हुए आँसू कुछ ऐसे सूखे कि सारा सीकरी जलविहीन मरुप्रदेश सा हो गया, भाग कर आगरा और दिल्ली जा बसा। स्वयं अकबर की आत्मा शान्तिपूर्वक अपनी समाधि में नहीं सो सकी और शीघ्र ही भरतपुर के जाटों ने उसकी क़ब्र खोद कर उसकी अस्थियाँ बाहर बिखेर दीं। ऐसे प्रतापी विक्रम में आदित्य के समान सम्राट की मिट्टी की यह गति! अनार नहीं जानती कि वह किस भीषण सत्य का कथन कर रही है। उसके शाप की एक एक मात्रा सत्य हो गई।

अनार के हृदय का कोना कोना चीत्कार कर रहा था। अकबर ने चोट पर चोट की, अनार विकल हो उठी। जब उसके प्रणयी का ध्यान ही उसके हृदय से हटा दिया गया तब उस महासुख का नाश करनेवाले व्यक्ति की छाया को ही अपने वीरान हृदय में वह क्योंकर स्थान दे सकती है? कातर होकर अनार कहने लगी—

तू ईर्षा क्यों करता है? है सारी दुनियाँ तेरी,

मत छीनो रहने दो तुम छोटी सी दुनियाँ मेरी।

अकबर ने प्रायः सारी भारतीय पृथ्वी जीत ली है, हिमालय से सागर तक—'आसमुद्रक्षितीश' इस चक्रवर्ती ने कुछ नहीं छोड़ा फिर भी वह अनार के सामने दरिद्र ही है। अनार को आश्चर्य इस बात पर है कि सम्राट् ससागरापृथ्वी का भोग करता हुआ भी उसकी छोटी सी, दीन दुनिया पर आक्रमण करते नहीं हिचकता। कहती है— भगवान ने तुम्हें रानियाँ दी हैं, ऐश्वर्य दिया है, पृथ्वी दी है भोगो, प्रताप की भाँति दुर्द्धर्ष शत्रु दिए हैं उनके भालों के साथ अपने तेग़ नापो, नेज़े खड़काओ, इस ग़रीब की छोटी सी दुनियाँ से क्यों इतनी ईर्ष्या करते हो, यह तुम्हें क्यों इस क़दर खटकती है? मुझ ग़रीब को राज्य नहीं चाहिये, बस ग़रीबी ही मुबारक रहे—

मैं रानी नहीं बनूँगी रहने दो मुझे भिखारिन।

पर अकबर को यह मंज़ूर नहीं। किन्तु अनार ही कौन सी कमज़ोर है। अकबर की धमकी से अनार का हृदय जला जाता है और वह कह उठती है—

मैं मरने को बैठी हूँ बलिदान प्रेम पर कर दो,
प्यासी पृथ्वी के मुख को शोणित से मेरे भर दो।

उसने सोचा था कि चुपचाप अकबर उसे मृत्युदण्ड दे देगा परन्तु अभागों की त्राणकर्त्री मृत्यु उसे नहीं मिली। अकबर उसे आसानी से नहीं मरने देगा बन बन की धूल छनवाएगा—यह सुन कर वह दुखिया सन्न रह गई। अकबर भी कुछ सहम गया, दुःखार्द्र हो गया और जाते हुए उसके मुख से अकस्मात् यह शब्द निकल पड़े—

जा! सुन्दर थी पर हृदयहीन! मैं जीत नहीं तुझको पाया।

अवश्य, सुन्दर थी वह और हृदयहीन भी थी, परन्तु न सही अब, हृदय था कभी उसके जो; उसने सलीम को सौंप रखा है, कोई वहाँ जाकर शाहज़ादे के दिल के पास उसे टटोले।

पाँचवाँ सर्ग

पाँचवें सर्ग में 'दुखिया अनार' 'विकट विपिन में खो खो कर मग शोध' रही है। यहाँ पर अपना कोई नहीं है फिर भी सभी अपने हैं। कवि ने इस सर्ग में अपना, अनार और प्रकृति तीनों का हृदय खोल दिया है। जहाँ तक मेरा विचार और इस कवि का मेरा अध्ययन है मैं समझता हूँ कहीं प्रकृति का इतना सुन्दर निरीक्षण नहीं हुआ। प्रकृति सम्बन्धी काव्य के जनक स्वयं इस कवि ने भी इतना सुन्दर नैसर्गिक साहित्य अन्यत्र नहीं सिरजा। यहाँ पर सचमुच ही प्रकृति सजीव हो उठी है। उसने हृदय खोलकर अपना वास्तविक स्वरूप कवि को दिखा दिया है। इस विराटता में पग पग पर कवि की आत्मीयता दृष्टिगोचर होती है। नृत्य करता हुआ कवि-हृदय कभी पृथ्वी पर, कभी पर्वतों पर और कभी आकाश के अनन्त विस्तार पर बिहरता है। अनार के हृदय के साथ ही एक एक वन्य जीव, एक एक चर अचर स्तब्ध, सुन्न खड़ा रहता है फिर अचानक उसी के साथ उद्विग्न हो उठता है और रुके हुए हृदय का स्पन्दन फिर एकाएक आरम्भ हो जाता है। क्या नदी, क्या पर्वत और क्या वनस्पति सभी कवि की कठिनी से वैसे ही अप्रयास प्रकट होते जाते हैं जैसे विधि की सृष्टि। अस्तु।

अनार के सामने जो छोटी नदी है, उसका पाट बहुत ही कम है— 'बस इक छलाँग मृगशावक की'। उसका वर्णन कवि की लेखनी से ही सुन्दर प्रतीत होगा—

> चीतल दल चंचल है चरता जिसके अंचल की दूब हरी।
> है तपस्विनी वह कृशकाया फेरा करती मणिमाला है,
> शिव बना बना कर सलिल चढ़ाती रहती वह गिरिबाला है।
> निर्मल जल में है झलक रहा बालू का एक एक कण कण,
> आराध्यदेव उसके अंतर में प्रकट दिया करते दर्शन।

वह नित घटती ही जाती है, हो गई सूख कर काँटा है,
कर दिया परिश्रम ने उसके पत्थर - पथ को भी आटा है।
कुछ देर निरखती रही नदी सुनती अस्फुट-कल-मंत्र जाप,
उसके दुकूल पर फिर देखा बिहँगों के पग की फूल-छाप।
'काण्डर' के पीत पुष्प देखे झाऊ झुरमुट में कूलों पर,
फिर दौड़ गई उसकी आँखें तट के ऊपर के फूलों पर।
चरते चीतल भी चौंक उठे आँखें फैला इसको देखा,
फिर चमक चौकड़ी चपल भरी उड़ गए बाण की हो रेखा।

उसके अंचल की हरी दूब चीतल मृगों का दल टूँग रहा है। इस लाइन की सरसता उसकी अनुप्रासानुप्राणित ध्वनि से भिन्न भी स्पष्ट है। नदी कृशकाया है, पर्वती नदियाँ ऐसी होती ही हैं। कवि ने इसे गिरिबाला कह कर उत्प्रेक्षित किया है। पार्वती शिव की कामना से कठोर तपस्या में लीन हुई, यह नदी भी किसी कामना के वशीभूत हो तप रही है। कृशकाय होना तप का फल है। नदी मणिमाला फेरती रहती है—वह मणिमाला क्या है? पत्थर के ढोके ऊँचे पहाड़ों से गिर गिर कर नदी-स्रोत के साथ बहते हैं। प्रवाह के कारण उनमें चिकनाहट होती जाती है और जल भी उन्हें और हलका करता जाता है यही शिलाएँ घिस कर छोटी छोटी शालिग्राम और फिर बालू के कण हो जाती हैं। नदी जब पहाड़ों में ही रहती है तब हम उसके अन्तर में इन पत्थर के छोटे घिसे हुए सुन्दर टुकड़ों को हलके हलके लुढ़कते और बहते हुए पाते हैं। इनका निरन्तर प्रवाह कवि को वृत्ताकार रूप में दीखता है और वह इस झर झर शब्द रूपी प्रवाह को माला फेरना कहता है। यों तो ये रुद्राक्ष की माला से हैं परन्तु उनका यथार्थ रूप तो कवि को शिव सा दीखता है। शैव लोग शिव की सहस्रों पार्थिव मूर्तियाँ बना बना कर नित्य पूजते हैं और फिर उन्हें जल में प्रवाहित कर देते हैं। यहाँ भी यह गिरिबाला रुद्राक्ष फेरती हुई शिव बना बना कर उस पर 'सलिल' चढ़ाती रहती है। उसके आराध्य देव 'शिव' उसके अंतर में साफ़ दिखाई देते हैं। तपस्वी

किसकी आराधना करता है कौन जाने? परन्तु उसके इष्टदेव साफ़ अनन्त संख्या में उसके हृदय में पड़े झलक रहे हैं। तपस्विनी नित्य घटती ही जाती है—बिना वर्णन किए ध्वनिमात्र से कवि ने स्पष्ट कर दिया कि दिन ग्रीष्म के हैं, पानी सूखता जा रहा है, नदी तन्वी होती जाती है। परन्तु उस तपस्विनी का तप क्षीण नहीं होता, उसका उत्साह भंग नहीं होता—

मृणालिकापेलवमादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपः शरीरैः कठिनैरुपार्जितं तपस्विनां दूरमधश्चकार सा॥

—ऐसी इस तपस्विनी ने कठिन से कठिन तप का भी आचरण किया है उसके निरन्तर के श्रम ने उसके पथरीले पथ को भी पीस कर धूल-बालू कर दिया है।

अनार स्तम्भित हो यह प्राकृतिक दृश्य देखती है और सरित्प्रवाह के कल-कल शब्द उस अस्फुट-मंत्र-जाप से प्रतीत होते हैं। नदी के बालुकामय तट पर पक्षियों के चलने से पदचिह्न बन गए हैं जो उसकी साड़ी में बुने फूल-छाप—'हंसचिह्नदुकूलवान'—से जान पड़ते हैं। अनार की आँखें धीरे धीरे जल से उठकर ऊपर तट पर जा लगती हैं जहाँ 'झाऊ-झुरमुट' के बीच से 'काण्डर' के पुष्प उस नवागता को घूर घूर कर देख रहे हैं। एकाएक उसकी आँखों ने मन्थरगति छोड़ दी और वे मृगों पर जा लगीं। जब प्रतिद्वन्द्वियों का आपस में सामना हो जाता है तब उनमें से एक के ग़ायब होते देर नहीं लगती। 'चरते चीतल भी चौंक उठे'—हैं क्या हमारे नेत्रों की समानता कहीं और भी है? आँखें फाड़ फाड़ उन सीधी लगी हुई आँखों को देखने लगे, 'फिर चमक चौकड़ी चपल भरी उड़ गए बाण की हो रखा'—नौ दो ग्यारह, इतनी भी हिम्मत न हुई कि जी भर देख लें। क्या ही सुन्दर शब्दयोजना है—अनुप्रासों की सादगी ने सौन्दर्य में जान डाल दी है। ध्वनि की मधुरता ऐसी है कि कुछ शताब्दियाँ पहले 'ध्वन्यालोक' का रचयिता अपने ग्रन्थ को इससे अवश्य सुशोभित करता। मृगों के भागने को बाण रेखा कही है। उपमा ऐसी सुन्दर है कि कुछ कहते

नहीं बनता। जिसने कभी बाण चलते देखे हों वही इसकी कल्पना कर सकता है। बाण जब छूटता है तो वेग के कारण ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसके पीछे एक रेखा सी बन गई हो। शीघ्र वह ओझल हो जाता है केवल उसके मार्ग की स्मृति रह जाती है। मृगों के गए रास्ते का भी ध्यानमात्र ही रह गया। अनार खड़ी ठगी सी रह गई। उसे अपनी आँखों का असर क्या मालूम ? कोई अकबर से पूछे।

यहाँ एक बात और विचार करने को है। कवि अपनी आत्मीयता को प्रकृति-वर्णन में कुछ ऐसा खो देता है कि ग़रीब पाठक को उसके इशारे समझ नहीं पड़ते। अनार आकर नदी के तीर पर खड़ी हुई है अथवा आगे प्रवाह देख रुक गई है। कवि नदी का वर्णन करता है परन्तु उसके ऊपर कुछ ऐसा नैसर्गिक आक्रमण होता है कि वह स्वयं भूल जाता है कि वर्णन वह नदी का करता है, अथवा अनार का—कृशकाया तपस्विनी कौन है—नदी या अनार ? यह 'गिरिबाला' कौन है—पत्योन्मुख दौड़ती हुई नदी अथवा प्रेम में असफल, बन बन घूमने वाली अनार ? आराध्यदेव कौन और किसके—नदी के शालिग्राम, पार्वती के शिव अथवा अनार के सलीम ? नित्य घटनेवाली, सूखकर काँटा हो जानेवाली कौन है—गिरिबाला ? ग्रीष्मकाल की सरिता अथवा प्रेम और विपत्ति की मारी गणिका ? परिश्रम और तप ने किसके पत्थर-पथ को पीस पीस कर आटा कर दिया है—शिलाओं पर प्रवाहित होनेवाली दुकूलिनी अथवा सैकत तट परी खड़ी अनाथिनी के ? आगे पहेली है—

कुछ देर निरखती रही नदी सुनती अस्फुट-कल-मन्त्र-जाप ,
उसके दुकूल पर फिर देखा विहँगों के पग की फूल-छाप।

कौन निरख रही है किसको—नदी अनार को या अनार नदी को ? कुछ देर निरखती रही नदी—शायद अनार को, अस्फुट स्वर से कदाचित सलीम के नाम का जाप करती हुई। और क्या देखा—विहँगों के पग की फूल-छाप। हंसचिह्नों से बुनी हुई रेशमी साड़ी धारण किए अनार को—'तस्योत्संगे प्रणयिनि इव स्रस्तगंगादुकूलां—स्वयं को नहीं।

वाह रे विक्षिप्त ! स्वयं तो चक्कर में पड़ा ही, नदी और अनार को चकित कर वाचकों को भी चक्कर में डाल दिया ! नैसर्गिक विषयों का वर्णन करते हुए यथार्थ ही यह कवि अपनी सुध बुध खो देता है और ऐसी ग्रन्थियाँ डाल देता है जो खुलने में कुछ समय लेती हैं। वह स्वयं तो ऐसी पहेली क्या सुलझाएगा, वह बेबस, दीवाना।

अनार उस स्वच्छनीरा को हल जाने का निश्चय कर अपने पैर बढ़ाती है पर 'पानी में पैर बढ़ाते ही कुछ लगा धड़कने उसका दिल'।

> वह नाप नाप कर पग धरती बढ़ती थी थाह, थाह लेती,
> धारा में सरक सरक जाती थी पग के नीचे से रेती।
> एड़ी डूबी, पिंडली डूबी, घुटने डूबे, जब पैर बढ़ा।

ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि स्वयं अनार का जल में हलना चित्र की भाँति देख रहा हो। बौद्ध ग्रन्थों में मूर्तिकार तक्षक को कहा है कि प्रतिमा-निर्माण के पूर्व उसे समाधिस्थ होकर काम्यदेव के स्वरूप को हृदयस्थ करना चाहिए। जब उस देवता की आकृति सम्मुख अन्तर्दृष्टि को गोचर होने लगे तब तक्षक उसका निर्माण करे। कवि तक्षक से कुछ कम नहीं होता। हमारा 'भक्त' कवि भी कथा-प्रसङ्ग को प्रथम अपने अन्तर में स्पष्ट कर हमारे लिए चित्रित करता है और हम उसे स्पष्ट चित्रगत दृश्य की भाँति देखते हैं—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जल में बढ़ती हुई सुन्दरी अनार का मुख-कमल देख जल में बहनेवाले सहस्रों छोटे भौंरे तैरना छोड़कर रुक जाते हैं, अटक कर उस चुम्बक की ओर खिंच जाते हैं—

> कटि से लहरों के किंकिण में बुदबुद के घुँघरू लटक गए,
> जल-भौंरों के कितने ही दल यह कमल देख कर अटक गए।

जल नीचे से साड़ी के भीतर प्रवेश करता जा रहा है, ऊपर कमर में पैठ कर वह बुद्बुदों का रूप धारण कर रहा है। कवि किसी सुन्दरी को काञ्चीरहित कैसे देख सकता है? बुद्बुदे घुँघरू से बन बन कर कटि से लटक गए। कितना स्वाभाविक वर्णन है ! कमल को

देख अनन्त प्रवाह में बहते हुए भी जल-भ्रमर अटक जाते हैं—इस अटक शब्द में कितनी जान है, कितना रहस्य है!—जैसे मार्ग में चलता हुआ भूखा भोजन-सामग्री देखकर रुक जाय वैसे ही भौंरे इस कमल को देखकर अटक जाते हैं। भौंरे और कमल में अन्न और अन्नाद का सम्बन्ध है। अब स्वकर्मनिरत भौंरे कर्तव्यविमुख होकर अपनीयता की ओर झुक पड़े, इसी भय से कालिदास के यक्ष ने अपने मेघदूत को सावधान किया था—

प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि

ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः—

फिर भी—भवान्वाहयेदध्वशेषं

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।

पर ये जल-भौंरे उस अनन्त सुख की प्राप्ति का लोभ न संवरण कर सके, कमल को देख कर अटक ही गए!

इधर—उर मिलकर जीवन उर्मिल से रोमाञ्चित होकर उठा सिहर।

छाती तक जल आ पहुँचा। जिस हृदय की अकबर सा प्रतापी सम्राट् भी कामना करके ही रह गया, वह जिसका स्पर्श तक नहीं कर सका उसी हृदय को हृदय से लगाकर जल-तरङ्ग स्पन्दित हो उठा, सिहर उठा, काँप कर अलग जा पड़ा। जल में आघात होने पर वृत्ताकार हलकी तरंगें उठती हैं यहाँ कवि उन्हीं की ओर इशारा करता है। जैसे जैसे सुन्दरी अनार जल में बढ़ती है वैसे ही वैसे उसका सौन्दर्य धुल धुलकर निखरा जाता है। पानी बढ़कर उसकी ग्रीवा तक जा पहुँचा फिर क्या था—

हो मुक्त दाम से चिकुरराशि हिल क्रीड़ा जल में करते हैं,

कुछ भींगे वस्त्रों संग लिपट तन में बालक सा डरते हैं।

चिकुरराशि मुक्त हो पड़ी, जुल्फ़ें घूम गईं, लटें जल की सतह पर बिखर गईं। कुछ बाहर न गिर आँचल के भीतर ही गिरीं और भींगे वस्त्रों में ऐसे जा सटीं जैसे जल से डरता हुआ बालक। यह उपमा भी बहुत ही घरेलू है—इस पर कोई क्या प्रकाश डाले।

दुख सुख झेल अनार जल से बाहर निकली। अपूर्व दृश्य था—

छिप गए वस्त्र थे डूब डूब उसकी आभा के पानी में।

नदी के जल में वस्त्रों का डूबना और बात थी, यहाँ तो अनार के शारीरिक आभा के पानी में, उस मोती के आब में 'वस्त्र' डूब डूब कर छिप गए थे, शरीर से सट सटकर अन्तर्धान हो गए थे। साधारण जल में डूबकर मनुष्य निकल जाता है पर इस पानी में डूबा हुआ फिर नहीं उबरता, इसकी गहराई की कुछ थाह नहीं। अनार के स्वर्ण-शरीर पर उसकी आभा के पानी में सटे हुए वस्त्रों से उसके तन की छटा ऐसी हो रही थी—

मानो इक मूरत गढ़ी हुई थी खड़ी सजीव जवानी में।

ऐसी सजीव जवानी में खड़ी गढ़ी हुई मूर्ति कोई मथुरा के कुषाण-कालीन वेदिकास्तम्भों (Railing Pillars) पर उत्कीर्ण कुशल तक्षकों की उत्कृष्ट कला की अद्‌भुत् विभूतियों में देख ले। ये यक्षी-मूर्तियाँ 'सजीव जवानी में' गढ़ी हुई खड़ी हैं। इनके ऊपर जो वस्त्र हैं उनका केवल आभास दर्शक को नीचे चरणों पर पड़ी एक मोटी रेखामात्र से होता है। अन्यथा पानी से सटे वस्त्र की नाईं उनके ऊपर के परिधान की कल्पना तक नहीं होती और दर्शक साधारणतया उन्हें नग्न ही कह कर चल देते हैं। उनकी सजीवता का वर्णन कोई क्या कर सकता है। मथुरा म्यूज़ियम को तीर्थ समझ कर बारम्बार उसमें सुरक्षित भण्डार का दर्शन करनेवाले 'भक्त' ने इन मूर्तियों को देखकर ही क्या अपनी 'मूरत' की कल्पना की होगी?—

छिप गए वस्त्र थे डूब डूब उसकी आभा के पानी में,
मानो इक मूरत गढ़ी हुई थी खड़ी सजीव जवानी में।

फिर ऐसी अवस्था में जब मानव सहृदयता प्राणी से विमुख हो जाती है तब प्रकृति अपने हाथ बढ़ाकर उसको अपने अंक में भर लेती है। सो—

आकर समीर ने रस ले ले पट सुखला करके फहराया,
फिर बाल-जाल को उड़ा उड़ा दृगकंज-राग को गहराया।

रस जल का गुण है। बिना उसके दूर हुए जल क्योंकर सूख सकता है। फिर समीर को भी तो कुछ पारिश्रमिक चाहिए—फिर पट फहराना, ध्वजा उड़ाना कुछ आसान काम नहीं बड़े ख़तरे का है—दूसरों की आँख लगती है।

अनार की मुसीबतों का अभी अन्त नहीं हुआ अभी तो वह उनके अरण्य में प्रविष्टमात्र हुई है! यहाँ भी—पथ डूब गया था पानी में, पग-डंडी भी आगे खोई—आगे राह ग़ायब है, पीछे लौट नहीं सकती। कटीली झाड़ियों से होकर आगे चल पड़ी, पर पर्वती वन में बिना पथ के चलना कुछ हँसी खेल नहीं है—

कांँटों की कूँची पदअंकों में लाल रंग भर देती थी।

काँटों से छिल छिल कर पाँवों से खून टपक रहा था। 'नगमाला में नग-तरल बनी वह जगमग ज्योति जगाती थी'—नगों से जड़ी हुई माला का वह नग-तरल अर्थात् बीच का बड़ा नग थी और उस अंधकारमय अरण्य में उसकी प्रभा छिटक रही थी। घना जंगल हरियाली और ऊँचे वृक्षों से भरा हुआ था। कहीं कोई मार्ग नहीं था—

नीचे से पौधे निकल नए तरुवर वयस्क को बगली दे
वारिद सा उठते जाते थे नभ पर हरीतिमा सागर से।

ऊँचे वृक्षों के पास से पौधे निकल निकल कर ऊपर उठने की जगह न पाकर वृक्षों के स्कन्धों से होकर उनकी डालियों के मध्य से ऊपर उठ जाते थे। उनका दृश्य दूर से अद्भुत प्रतीत होता था। आगे आता हुआ सघन घासों का दृश्य ऐसा ज्ञात होता था मानो बादल-से उठ रहे हों और सम्मुख के पहाड़ों की यह हरियाली नभ में फैले समुद्र की भाँति दीख रही थी। यह वन का सजीव वर्णन है। बिना स्वयं इस रूप का दर्शन किए कवि केवल कल्पना से यह वनचित्र नहीं खींच सकता। उत्प्रेक्षा भी कितनी सुन्दर है—नीचे से पौधे नए निकल तरुवर वयस्क को बगली दे—घने जंगल में बड़े वृक्षों की सघनता को छेद कर ऊपर उठना छोटे पौधों के लिए असम्भव होता सो वे अनजाने उनकी बगल से चुपके ऊपर निकल जाते थे। वे पौधे ऊपर उठने

की—नभ तक पहुँचने की—कोशिश करते थे परन्तु लताएँ उन्हें माताओं की भाँति अपने वक्ष से दबा कर शिशु की भाँति रखती थीं—विहगशावकों को पक्षियों की नाईं सेती रहती थीं। इस प्रकार ये तृण भी सदा ऊपर उठने का प्रयत्न करते हुए बहुत ऊपर नहीं पहुँच सकते थे और 'लतिका-भूषित-तरु-शाख-जाल में' इन विहग-शावक रूप पौधों के पंख फँस जाते थे। आगे वन-प्रान्त का जो दृश्य कवि ने चित्रित किया है वह इतना यथार्थ और सजीव है कि उसके जोड़ का वर्णन हिन्दी साहित्य में कहीं नहीं मिलता। कवि ने इस वन्यहरियाली की समुद्र से उपमा दी है। वह कहता है—

मकरंद-बीचि में मुकुल-बुदबुदे फूट फूट कर खिलते थे,
सब सुमन-घंटियाँ बजा बजा कर मधुकर मद से मिलते थे।

इस मकरंद के समुद्र में कलियाँ चिटक रही हैं। वे मानो सागर के बुद्बुदे हैं जो फूट फूट कर खिल रहे हैं। बुद्बुदे पानी में फूट फूट कर ही 'खिलते' हैं। कलियों के खिलने के समय एक हलका सा शब्द हुआ करता है जो चिटकने जैसा होता है इस कारण 'खिलने' की पर्यायवाची संज्ञा 'चिटकना' हो गयी है। यह शब्द कवि के कानों में मधुकरों द्वारा बजाई जाती हुई 'सुमन-घंटियाँ' हैं जिनको बजा बजा कर वे मतवाले होकर झूमते हैं। ये घंटियाँ मतवाले हाथियों से मधुकरों के सादृश्य को रंजित करती हैं।

इस कानन की सघनता को भेदती हुई, स्त्री की चंचलता सी वेगवती नदी जो जामुनों की जड़ों को धोती बहती आ रही है शायद अनार के जले हृदय को कुछ शान्त करे—

कानन-काया की धमनी रमणी सी चंचल इक सरि सुन्दर
जीवन-वाहक बन घूम रही है विश्व-हृदय की इंगित पर।

विस्तृत वनरूपी इस शरीर की यह नदी धमनी रूपिणी है और जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक भाग को हृदय शोणित के प्रवाह से क्षण क्षण भरा करता है उसी प्रकार विश्व-शरीर का हृत्रूप यह वन भी द्रुतगति से इस नदी द्वारा सारी स्थली को रसमय कर रहा है। इस

विश्व हृदय के इशारे पर यह सरि चतुर्दिक जीवराशि को अनुप्राणित कर रही है—जीवन वहन कर रही है—जलप्रदान ही उसका धर्म हो गया है। आगे कवि उत्प्रेक्षा करता है—

जामुन की बाढ़ें बढ़ बढ़ कर दोनों कूलों की लिपट गईं,
अथवा प्रतिरोधी सेनाएँ दो मल्लयुद्ध में चिपट गईं।
अथवा तरु अपनी रानी को परदे में लेते जाते हैं,
पलकों में पुतली सा रख कर तारों की आँख बचाते हैं।

वृक्ष अपनी प्रेयसी को अपनी पलकों के तले पुतली की भाँति सुरक्षित रखते हैं कहीं तारे आँख न लगा दें। तारे पानी में छेद करके उसमें बस जाते हैं। टोने टमाने से बचाने के लिए कृष्णविधियों का अवलम्बन प्राचीन विश्वास है। सो चमकते तारों की आँखों से रानी की रक्षा पलकों की कृष्णता से की गई है। शब्दों पर बहुत ही सुन्दर pun है—'पलकों में पुतली' और 'तारों की आँख' समानान्तर कल्पनाएँ हैं। अनार और सरि में एक ही भाव स्पन्दित होता है, सरि उसका प्रतिविम्ब मात्र है—

निज मन-प्रवाह को ढके हुए आशा-तरुओं के घूँघट में
सरि के सँग बढ़ती जाती थी अबला भी अपनी ही रट में।

अनार आगे बढ़ती है। दूर की पर्वत-श्रेणी ऐसी दीखती हैं मानो उलटे लटकते आकाश में झालर टँगे हों—'उस अंतरिक्ष की छोरों में झालर सी थी पर्वतमाला'। अनार बढ़ती जाती थी और दूर के पौधे जो पहिले छोटे दीखते थे पास आने पर बड़े पेड़ दीखने लगे। पर्वत के ऊपर लगे घने बन में शंकर के जटाजूटमण्डित सिर का आभास होता था और उस जंगल से टेढ़े होकर गिरनेवाले प्रपात शिव के शरीर में शोभा देनेवाले नागों से चमकते थे—

थे चन्द्रमौलि के जटाजूट में निर्झर-नाग हवा खाते।

इस बीहड़ बन में गिरि कन्दराओं को पार करती घने बन से होती अनारकली निरुद्देश आगे बढ़ती जाती थी। कहाँ? वह स्वयं नहीं जानती। फिर भी कड़ी मिहनत करती वह बढ़ी जाती थी। न तो उसे

लौटने के लिए घर था न उसके कोई सहायक थे--

घासों के झुरमुट थाम थाम वह करती खड़ी चढ़ाई थी,
था साँस फूलता जाता श्रम-सीकर में डूब नहाई थी।

भक्त की कला अकेली, एकाकी चित्रण नहीं करती। उसके पात्रों की आन्तरिक स्थिति का बाह्य जगत् पर सदा प्रतिबिम्ब पड़ता है। अनार के अन्तर्जगत का कोना कोना सन्तप्त है और वह अभागे नट की भाँति जहाँ भी जाती है उसके आगमन से चारों ओर विषाद की कालिमा फैल जाती है। बाह्य अन्तर के सुख दुख का प्रतिध्वनि करने लगता है—

समयान्तर के प्रतिघातों से सर्दी गर्मी पानी खाकर
था दरक गया पाषाण-हृदय भी पर्वत का होकर जर जर।

समयान्तर के घात-प्रतिघात किसको नहीं सहने पड़ते? चर और अचर, निर्जीव और सजीव सभी इस प्रबल काल के परिवर्तन-मुख द्वारा कवलित होते हैं। उसकी मार के सम्मुख सबल और निर्बल का अन्तर नहीं रह जाता। सो पाषाण-हृदय पर्वत तक उसकी मार से जीर्ण हो उठा है। फिर कमज़ोर रक्त-मांस की बनी मानव-मूर्ति की क्या विसात? इस लाइन में 'भी' का प्रयोग पर्वत और अनार की तुलनात्मक समानता के प्रदर्शन के अर्थ हुआ है। अनार के सुविस्तृत दुःखसागर को कुछ कम करने के लिए और दुःख की सर्वत्र अनिवार्यता को सिद्ध करने के लिए ही पर्वत के पाषाण-हृदय तक को कवि दरका देता है। फिर भी इसी दुखमय जगत के हृदय में जहाँ तहाँ क्षणिक सुख का भी आभास होता है और अनार देखती है कि पर्वत के उसी दरके हुए हृदय की दरार में ही पनप कर ऊँचा से ऊँचा सिर उठा कर बाँस बंशी बजा रहा है और साथ ही प्रकृति की गोद सजाता हुआ वह उसका ऊँचा, हरा झंडा फहरा रहा है—

था वेणुवंश भी उस पर्वत में अपनी वंशी बजा रहा,
हरिताभ पताका फहरा कर था गोद प्रकृति की सजा रहा।

बाँसों की नई खुली कोंपलों में होकर जब हवा बहती है तो उनमें

से एक प्रकार का मधुर स्वर निकलता है। आधुनिक वंशी का निर्माण सर्वप्रथम बन-प्रान्तर में ही आदिम मनुष्य ने किया था।

इस प्रकार अनार दुःख की मारी बियाबान में घूम रही थी। अचानक जो वह एक कन्दरा से होकर गुज़री उसने बाहर बड़ा ही मनोहर प्राकृतिक दृश्य देखा—

उस दूरबीन के शीशे में सारा जंगल इक तारा था।

अँधेरी गुफा में ही आगे के आलोक के सहारे आगे बढ़ी। ऊपर पहाड़ की छत से होकर झरना बहता था और 'समयान्तर' के प्रभाव से जो छत में सुराख़ हो गए थे उनसे होकर पानी रह रह कर टपकता था। यह दृश्य प्रायः पहाड़ों में देखने को मिलता है। एल्लोरा दरी-गृहों में विशेष कर इसका बाहुल्य दीखता है। वहाँ कैलाश में तो यह एक विभूति है। यह छत से झरनेवाले झरने—

उस पत्थर की दुनिया में भी, जीवन, कल कल से भरते थे।

यह सूखे पत्थर में भी जल का प्रादुर्भाव था, निर्जीव जगत में जीवन का संचार था और दुखिया, विपत्ति की मारी अनार के हृदय में आशा की सान्त्वना थी। सूखा संसार जीवन के संसर्ग से हरा हो उठता है, कदाचित उसकी भी प्यासी आशा-बेलि जल-समागम से कुछ हरी हो उठे। फिर भी—

उस शांति-निकेतन में अपने अति विकल हृदय को बहला कर
आगे जाने की राह न पाकर आई लौट पुनः बाहर।

अशांति जब भीतर होती है तब बाहरी बातों का प्रभाव कुछ नहीं होता। अशांति लिए अनार घूम रही थी। गुफा की शीतल शांति उसका क्या भला कर सकती थी? दरी-गृहों की शांति प्रसिद्ध है बौद्धों द्वारा उत्कीर्ण दक्षिण भारत की सैकड़ों गुफाएँ इसकी घोषणा आज भी कर रही हैं। संसार की झंझटों और आवागमन के भारी दुःख से छुटकारा पाने के लिए सहस्रों भिक्षु इन दरी-गृहों में निवास करते थे परन्तु बाह्य एकान्त की निर्जनता चाहे जितनी भी भौतिक शांति का आवरण क्यों न उत्पन्न करे आभ्यन्तर का निवासी मानस

सदा अक्षुण्ण ही बना रहता है। उसकी गति आन्तरिक शान्ति और अशान्ति पर ही निर्भर रहती है। चाहे जितनी बार भी उसे कोई खींच खींच कर बाहरी शान्तिमयी गुफाओं के भीतर सत्य एवं सुख की खोज में ले जाए वह जातकों के 'नन्द' नाई की भाँति बारंबार संसार में उतरता आएगा। सो अनार की अन्तरात्मा कुछ और ढूँढ रही है। उसका भूखा हृदय बुभुक्षित ही रह गया और आज स्वाद की लालसा त्याग कर भी वह बन बन भटक रही है और उसकी कामना नष्ट भ्रष्ट होकर लुप्त हो चुकी है।

अनियंत्रित, अनाकृष्ट वह बढ़ी जाती है, उसका कोई लक्ष्य नहीं, कोई भविष्य नहीं। धीरे धीरे वह उस सरिता के तट पर पहुँची

सहस करों से खींच रहा है दिननायक जिसका वर चीर।

और जो—बेपानी होने के भय से कृष्ण कृष्ण चिल्लाती है,

मीन ब्याज तड़पी जाती है लहर ब्याज बल खाती है।
अचल बने गिरि निरख रहे हैं पत्थर की करके छाती,
पानी खो, पानी पानी हो, कठिनी है रोती जाती।

अद्भुत वर्णन है। कवि ने सूखे स्थलों में महाप्राण फूँक दिए। गिरि-कन्दराओं के वर्णन में महाकवि कालिदास ने अपना सानी नहीं रखा, प्रकृति के वर्णन में महाकवि 'भक्त' भी आधुनिक भारतीय भाषाओं में जोड़ नहीं रखता। प्रस्तरमय, निर्जीव पर्वत में प्राण फूँक कर उसे सजीव कर देना उसी का कार्य है। महाभारत की कहानी का आश्रय लेकर कवि ने भाषा और भाव दोनों को ही अलंकृत कर दिया है। कौरवों की सभा में द्यूत-क्रीड़ा में पराजित पंचपाण्डवों की एक मात्र भार्या द्रौपदी को बेशर्मी से नग्न कर दुर्योधन और दुःशासन ने पाण्डवों को लज्जित और अपमानित करना चाहा था। दुःशासन के क्रूर, कायर करों से बिखरे कचोंवाली कृष्णा घसीट कर भीष्म और द्रोण की उपस्थिति से विभूषित सभा में लायी गयी। दुर्योधन की खुली जाँघों ने उस मनस्विनी का अपमान किया। अर्जुन की भुजाएँ फड़क उठीं, भीम की गदा की मुट्ठी ने एकाएक फ़ौलादी पंजों का स्पर्श पाया पर

दाँव पर जीती हुई भार्या पर किसका अधिकार था? देवव्रत भीष्म की प्रचण्ड ओजस्विनी दीक्षा भी कुछ सहायता न कर सकी, द्रोणाचार्य के तीर तरकश में ही दबे रहे। सब ने, खुली आँखों से, ललकारते दुःशासन का दुराचार देखा, कर्ण और कुरुराज के व्यंग सुने, और शकुनि की प्रतारणा पाण्डवों के शरीर में ओतप्रोत होती रही। पर अर्जुन-भीम की क्रोधाग्नि दुर्बल की लाचारी की भाँति ठंडी पड़ गई। कृष्णा ने सबको चुप मारे देख, भीष्म और द्रोण की मौन गम्भीरता से जरजर होकर वासुदेव कृष्ण की वन्दना आरम्भ की और उसका चीर अग्रसर पथिक के सम्मुख अनन्त आकाश की भाँति दुःशासन के करों में बढ़ने लगा। दुःशासन की भुजाएँ थक गईं पर चीर की छोर न मिली। कवि भक्त ने उस कथा का बड़ा ही सुन्दर उपयोग अपनी अलंकृत उक्ति में किया है। सरिता-कृष्णा का चीर सूर्यरूपी दुःशासन सहस्र करों से खींच रहा है। दुःशासन के कर दो ही थे सूर्य की रश्मियाँ अनन्त हैं। सरिता स्त्र्योचित लज्जावश वस्त्र-विहीन होने के भय से 'कृष्ण कृष्ण चिल्लाती है'। ग्रीष्म ऋतु में सचमुच ही सूर्य नदियों के जल को सहस्र करों से खींच खींच कर उन्हें 'बेपानी'—जल-विहीन—नङ्गी कर देता है। सो अपनी लज्जा के अर्थ सरिता उस वासुदेव कृष्ण का स्मरण करती है जिसने द्रौपदी की लज्जा रखी थी। सूखते जल में मछलियाँ भी सूखेंगी ही। उनकी उछल उछल कर तैरनेवाली गति को कवि सरिता का तड़पना कहता है। मीनों की गति के बहाने, उनके रूप में, नदी तड़प रही है। उनकी लहरों का उठना और लै होना ऐसा जान पड़ता है मानो वह भावी दुर्दशा की कल्पना कर उसकी चोट से काँप काँप कर ऐंठ रही हो। पास के उपस्थित प्रकृति-सहचर चुपचाप कुरुराज के सभासदों की भाँति मौन दुःख से देख रहे हैं। दुःख है, पौरुष भी है पर सूर्य के कार्य में हस्ताक्षेप नहीं करते, हृदय पत्थर का कर लिया है और अचल बने, दम साधे, पहाड़ चुपचाप देख रहे हैं। पहाड़ ने पत्थर की छाती कर ली है—क्या ही सुन्दर सूझ है। और जब इन्हीं से आशा थी और इनका सहारा

नहीं मिला तब नदी और क्या करे ? अबला के अन्तिम बल का सहारा लिया—आँसू बहाने लगी। पानी काफ़ी खो चुकी है, बसन—चीर-बढ़ता है पर बदन से उभड़ता भी तो जाता है। सो 'पानी खो, पानी पानी हो, तटिनी है रोती जाती'। और साथ ही 'कृष्ण कृष्ण' की भी उसने पुकार मचा दी। इस जादू के प्रभाववाले नाम ने सत्य ही सरिता की लाज रख ली। नदी के कल कल शब्द के साथ जो जलप्रपात का भयंकर शब्द होता है उसे कवि ने 'कृष्ण कृष्ण' की पुकार कही है और इस निर्झर ने ही सूर्य के प्रयास को व्यर्थ कर दिया है। निर्झर की ओट से कृष्ण सरिता-कृष्णा की लाज बचा रहा है—

किन्तु खड़ा वह नट-नागर जो परदे में उस निर्झर के
जल-प्रपात का अम्बर देकर आबरवाँ का पट दे दे,
मद-मंथन कर दिया सूर्य का, कर अनंत उस सारी को,
लज्जित हो फिर डूब गया रवि शीश नवा बनवारी को।

निर्झर के पीछे खड़ा नटनागर जल-प्रपात रूपी अम्बर को दे दे कर और आबरवाँ—बहते हुए पानी, सूक्ष्म वस्त्र—की साड़ी बढ़ा बढ़ा कर अबला का पट अनन्त करके उसकी लाज रख ली और सूर्य का 'मद-मंथन कर दिया'। सूर्य, स्वयं लज्जा से लाल होकर और प्रबल विजयी प्रतिद्वन्द्वी को सामने देख, अपमान के समुद्र में डूब गया, तिरोहित हो गया। सन्ध्या की घोषणा करने के लिये कवि को और लाइनों की आवश्यकता नहीं पड़ी। कथा-भाग के वर्णन में ही दिवसा-वसान का इशारा कर दिया। बनवारी को शीश नवा कर सूर्य डूब गया। रात्रि का आगमन हुआ।

पास ही दूसरा स्वच्छ नाला जल से लबालब भरा था। सारा आकाश उसमें प्रतिबिम्बित हो रहा था। कवि की उक्ति है—'जिसमें आकाश नहाता था'—और जिसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब लहरों के उठने बैठने के कारण 'डूब डूब' उतरा रहा था—

उसके तृण-संकुल कूलों पर तब मानव भूल न आये थे,
हो स्वेद अनिल के झोंकों से नरकुल, हाँ, तट पर छाये थे।

इन ऊपर की लाइनों में मानव की उपस्थिति का अभाव कवि ने समान ध्वनिवाले 'नरकुल' से पूरा कर दिया। नीरवता की मात्रा और घनी करने के लिए कवि कहता है—'चरते पशुओं को चेत हुआ, चल पड़े चौंक कर कान उठा।'

\+ \+ \+ \+

टीले पर बैठी अनार अपने अभाग्य पर तप्त आँसू गिरा रही है। उसके एकाकी रुदन में बड़ी वेदना है। निर्झरों का पहाड़ से गिरना उसे रोना सा दीखता है और वह कहती है—

दुःख यहाँ भी आ पहुँचा क्या निर्झर जो तुम रोते हो ?
किस पीड़ा में, हे प्रपात, गिरि से गिर जीवन खोते हो ?

आँसू की भाँति ही निर्झर झरते हैं पर अनार को आश्चर्य होता है कि मानवी नृशंसता का वन में सर्वथा अभाव होता हुआ भी झरना क्यों आँसू बहा रहा है। नगरों से दूर इस जनविहीन वन में भी दुःख आ पहुँचा ? आखिर किस पीड़ा के फलस्वरूप आत्महत्या की लालसा से पर्वत से गिर कर प्रपात अपना 'जीवन' खो रहा है ? उसके दुःख का आवेग बढ़ जाता है—

तुम मत रोवो इस दुखिया के विकल हृदय को रोने दो,
दृग-अम्बुधि में छोटी सी जीवन-तरि मुझे डुबोने दो।
सरि, सागर की विरह-व्यथा में क्या तू तड़पी जाती है ?
रुक जा, क्षण में यहीं वारि-निधि मेरी आँख बनाती है।
दबे पाँव छिप कर आई हूँ तुमसे मिलने, ओ एकान्त,
राह बता दो कहाँ मिलेगा शान्त सरस सुखमय वह प्रान्त ?
प्रतिध्वनि, देख अकेली तूही देती आई मेरा साथ,
संगिनि, इस दुखिया के सँग तू व्यर्थ न रो जोड़ूँ मैं हाथ।

फिर व्यंग और कायरता से अपने भाग्य को ही कोसती है—

मेरे सँग कोई मत रोओ मुझे भाग्य पर रोने दो,
अपने बंजर भाग्य-क्षेत्र में मोती मुझको बोने दो।

प्रतिध्वनि अनार के साथ रोती थी। अनार ने कहा मुझे अब

संगिनी की आवश्यकता नहीं। जिसके संग की कामना की थी—जागरण और स्वप्न का एकमात्र जो आकर्षण था—उसका गला शक्ति और ऐश्वर्य ने घोट दिया! हृदय की क्वाँरी भूमि में अनार ने एक सुन्दर साध का अंकुर लगाया था और प्यार से आँसुओं के जल से सींच सींच कर उसे उसने पनपाया था पर निर्दयी अकबर ने उसको समूल नष्ट कर दिया, उखाड़ फेंका। क्या करे अनार? किसको दोष दे? अपने भाग्य के नाम पर रोती है, हृदय की गीली उपजाऊ भूमि सूख कर प्रस्तरमयी, रेतीली और ऊसर हो गई है। साध के पौधे अब उसमें पनप नहीं सकते। सो वह उस 'बंजर भाग्यक्षेत्र में' केवल मोती बोएगी, भाग्य के नाम पर रोएगी। मिट्टी-पानी के संसर्ग से द्रवित होकर शायद वह कुछ उत्पन्न करे। पर नहीं, बंजर में कुछ भी नहीं होता चाहे कोई उसमें मोती ही क्यों न बोए। फिर भी अनार अब सब कुछ देख चुकी है, नियति ने उसे यहाँ से उखाड़ कर कहाँ फेंक दिया? अब वह क्या करे? अपने 'बंजर भाग्यक्षेत्र में' मोती बोएगी—ज़ार ज़ार रोएगी।

अन्त में, जैसी अनार ने कारागार में कामना की थी, फिर वैसी ही कामना करती है। सलीम को एक बार देखना भर चाहती है—

आते अपने कोमल कर से मेरा अंक मिटा देते,
आते मेरे घट का जीवन हाथों से ढरका देते।
आते छाया-चित्र नयन-परदे पर पुनः खींच लेती,
हो आनंद विभोर सदा को अपने नयन मींच लेती।

वह निशान जो सलीम की छटा ने अनार के हृदय पर बनाया था अभी नहीं मिटा, नहीं मिटेगा। वह प्रेमचिह्न जो नृत्यान्त में सलीम ने अनार के अधर पर अंकित किया था अभी ताज़ा है। उस तेज़ चमकती गहरी छाप को स्पष्ट अंक को—सलीम स्वयं आकर अपने ही हाथों मिटा दे यही अनार की कामना है। उसके घट का जीवन, शरीररूपी घड़े का प्राणरूपी जल स्वयं भी ढरक ही जाएगा और ढरक ही रहा है परन्तु सारी साध पूरी हो जाती यदि स्वयं सलीम आकर अनार के शरीर-घट का जीवन-

जल ढरका देता ! शरीर की घट से उपमा भारतीय सनातन संस्कृति की परम्परा है। वेद, उपनिषद्, सूत्र ग्रन्थ, दर्शन, इतिहास और काव्य, जैन और बौद्ध मतमतान्तर, बाद के होनेवाले सिद्ध और हाल के सन्त-सम्प्रदायी सभी शरीर को क्षणिक घट कहते हैं। सचमुच ही शरीर की स्थिति घट जैसी ही है। ठेस लगते ही उसके प्राणों में कम्पन होने लगता है और उसके टूट जाने का डर सदा बना रहता है। जिस प्रकार मिट्टी के घड़े का टूट जाना सरल है उसी प्रकार इस 'गृहीत इव केशेषु मृत्युना…' वाले शरीर का भी कुछ ठिकाना नहीं। सो अनार मरने को तैयार बैठी है, और बहुत पहले से कारागार में ही तैयार बैठी थी पर उसकी केवल वही कामना जो तब थी अब भी शेष रह गई है—

आते मेरे घट का जीवन हाथों से ढरका देते।

कामना बड़ी बलवती होती है—अनुपस्थित व्यक्ति को भी ला उपस्थित करती है। अनार बारंबार सलीम की याद कर उसका आह्वान करती है और चाहती है कि एक बार जब वह आ जाता वह उसकी मूर्ति अपने हृदय-मन्दिर में प्रतिष्ठित कर लेती और फिर—

हो आनंदविभोर सदा को अपने नयन मींच लेती।

पर अभी नयन मींच लेने की शब्दध्वनि मिटने भी न पाई थी कि

मींच लिए दृग इतने ही में पीछे से कोमल कर ने।

फिर जब पीछे फिर कर अनार ने सलीम को पा लिया तब तो उसके हर्ष का ठिकाना ही न रहा। आनन्दातिरेक से उसके आँसू निकल आए—'दो आँसू—तारक नभ-चख से अकस्मात ही टूट पड़े'। तारों के टूटने पर भी आकाश में उनकी कमी नहीं रहती, वह उनसे भरा रहता है सो अनार की आँसुओं से भरी आँखों से आँसू के दो बड़े बूँद तारों की भाँति टूट पड़े। जीवन का सार और उसका उद्देश अनार के शब्दों में कवि ने कह दिया—

मैंने प्यार तुम्हारा पाया जो जीवन का केवल सार,
उसे छोड़ सब क्षणभंगुर है एक अमर है सच्चा प्यार।

दोनों मिले। मिलन में अनार के लिए स्वर्गीय आनन्द था। उसकी प्रेम-लहर ने सलीम के हृदय को भी स्वच्छ कर धो दिया। अनार के त्याग से सलीम का हृदय कृतज्ञता से भर उठा था। निःस्वार्थ प्रेम के फल स्वरूप अनार का हृदय शान्त हुआ और सलीम की आत्मा अकबर के शासन से ऊब कर बग़ावत के लिए तत्पर हो उठी। पर अनार को इससे क्या? वह अपने प्यारे युवराज को उसके भावी साम्राज्य-सुख से स्वार्थ के लिए वंचित नहीं करना चाहती। अकबर रुष्ट होगा, राज्य सलीम के हाथ से निकल जाएगा और वह बग़ावत के काँटेदार रास्ते ज़िन्दगी भर तै करता रहेगा—यह अनार को मंज़ूर नहीं। और वह उस कृतघ्न, ओछे, क्रूर संसार में भी नहीं लौटना चाहती जिसने उसके प्यार का मज़ाक़ बनाया था और नृशंस शक्ति द्वारा उस सम्राट ने ही, जिससे रक्षा की आशा थी, स्वयं उसकी कामनाओं को, उसकी आशाओं को, स्वार्थ के लिए पैरों तले रौंद डाला। अनार तो केवल सलीम का दर्शन, उसका स्पर्श, चाहती थी, सो उसे मिल गया और उसे कुछ पाना बाक़ी न रहा। उसने विष खाकर अपना शरीरान्त कर दिया। उसका निर्जीव, सुन्दर शरीर अपने प्रिय रोते सलीम की गोद में लुढ़क पड़ा। और आज भी उस मानिनी, मनस्विनी अनार की समाधि लाहौर में स्थित, मानव-जीवन की क्षणभंगुरता, भौतिक बल की अमानुषिकता, संसार की स्वार्थपरता, राजकीय वैभव, ऐश्वर्य और सत्ता तथा अकबर की लोलुप नृशंसता को धिक्कारती हुई धुँधले अतीत पर स्पष्ट स्मृति के अंक लिख रही है।

छठाँ सर्ग

नव बालिका ने धीरे धीरे किशोरावस्था के प्रथम चरण में पदार्पण किया। अभी उसका 'जीवन ज्योतिर्मय है'—उसका भोलापन अछूता है—'यह किरण जाल सी उज्ज्वल है, मानस को विमल मराली है'। मरीचियों का प्रवाह सदा उज्ज्वल और नया होता है जो बालकामिनी के मुख-चन्द्र से प्रस्फुटित हो निकला करता है। आचार और ब्रह्मचर्य के तपोसूर्य की दीप्ति अनुपमेय होती है पर जब उस पर काम-जलद अपनी गहरी श्यामता डाल देता है तब वह दीप्ति धुँधली पड़ जाती है। कवि नीचे की पंक्तियों में यही दर्शाता है—

> आ काम-जलद ने उस आभा का नहीं मार्ग है भ्रष्ट किया,
> है सप्तरंग के काम-शरासन का न हृदय में सृष्टि किया।

यह सतरंगा धनुष जब किशोरी धारण करती है बड़े बड़े रण-धीरों का युद्ध-कौशल चरने चला जाता है। अभी कलिका अछूती है, अभी तक उसकी छाया छली, दुर्वृत्त, अनाचारी मधुपों ने नहीं छुई। अभी वह समय नहीं आया जब कोई कवि समवेदना के साथ पुकार उठता—दुर्वारा मधुपाः कियन्ति सुतनु स्थानानि रक्षिष्यसि। चमकते स्वच्छ, पवित्र कपोलों का इतिहास अभी रहस्यमय था किसी अपवित्र तृष्णा ने उसकी ओर अपनी पापमयी दृष्टि नहीं डाली थी। प्रथम चुम्बन वह स्मारक है जिसकी छाप कपोलों पर पड़ कर हृदय में उतर जाती है, जो आनन्द के बदले एक प्रकार के भय का संचार करता है और जिसका स्मरण आमृत्यु बना रहता है। प्रथम चुम्बन बड़ा प्यारा, बड़ी निधि होकर भी पाप की प्रथम छाया है, सुकोमल रञ्जित अधर पर काम का लौह शिकञ्जा है। इसकी छाया जहाँ एक बार पड़ी आचार

का निधन हुआ। इसका अनोखापन वह अनुभव है जहाँ सब नए हैं। इसका आनन्द बड़ा चिरस्थायी है। यह मृगी-सभीता की भीति को बहिर्गति करनेवाला प्रथम द्वार है, प्रौढ़ावस्था तक पहुँचते लज्जा को सात द्वारों से निकलना पड़ता है—कोई गिन देखे। चुम्बन का आनन्द, विशेष कर प्रथम चुम्बन का, वह है जिसे जिसने खाया वह भी पछ्ताया जिसने नहीं खाया वह भी पछताया। आचार की पावनता के लिए तो सचमुच यह कोमल कमल पर पड़ कर उसे सड़ा डालने वाले हिम की तरह ही है। जब तक हिम नहीं पड़ता कमल-बन की सुन्दरता अकथनीय होती है पर इसके पड़ते ही बन का बन जल कर ख़ाक हो जाता है। अतः कवि कहता है:—

उस क्वाँरी प्यारी कलिका पर मद-मधुप नहीं मँडराए हैं,
उसके कपोल के फूल नहीं चुम्बन-हिम से कुम्हलाए हैं।

अभी ज्ञान नहीं हुआ था पर भावों का ताँता आरम्भ हो गया था—

थीं भाव बीचियाँ मधुर मधुर उठ उठ कर अंचल लहरातीं,
कटि-तट छू, क्षीण बना, अलकें बलि बार बार जा बल खातीं।

भाव-बीचियाँ अब कटि भाग से उठ उठ ऊपर हृद्देश में पैठती जाती हैं। वहाँ उनकी ऊँचाई चढ़ती जाती है। कमर भी इसी कारण क्षीण होती जा रही है जिस पर बेगम के ललाट की डीठ नागिन बहुत सी सखियाँ लेकर उतर आई है। आँखों में रस अब छलकने लगा है पर उसकी मादकता अभी अपने को ही सराबोर कर रही है—

आँखों से आँखें मिलीं नहीं, मद-सुरा न अब तक ढाली है,
तलवारें अभी म्यान में हैं, धनु की प्रत्यंचा ख़ाली है।

चोट की सारी सामग्री उपस्थित है पर सैनिक उनसे अभी काम नहीं लेता। तलवारें हैं पर म्यान में धरी हैं, धनुष की प्रत्यंचा ख़ाली है। अभी इस किशोरी ने कटाक्ष करना नहीं सीखा। पर लोगों की नज़र पड़ गई, जाल ले लेकर लोग दाना डालने लगे पर कोई फल नहीं हुआ। पुरुषों का हृदय इतना कमज़ोर इतना पापी होता है कि

जहाँ किसी प्यारी वस्तु पर नज़र पड़ी, फिर न लौटी। हृदय की कोई वक़त ही नहीं। उसका फेंकना तो कोई चीज़ ही नहीं। अगर माशूक़ में वफ़ादारी नहीं होती तो इन हृदयों में ही कौन सी बड़ी गुरुता होती है—जहाँ चाहा वहीं दे डाला, फेंक दिया। सो जब इस नवेली नायिका के समक्ष मतिराम की पंक्तियाँ—

कुन्दन को रँग फीको लगै झलकै ऐसो अंगनि चारु गुराई,
आँखिन में अलसान चितौन में मंजु विलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं मतिराम लसै मुसुकानि मिठाई,
ज्यों ज्यों निहारिए नीरे ह्वै नैननि ज्यों त्यों खरी निकरै सुनिकाई॥

सार्थक होने लगीं तब इस अज्ञातयौवना पर यारों की दृष्टि स्थिर होने लगी, काम का जलद इस चन्द्रमा की उज्ज्वल कान्ति को अपने तिमिर से आच्छन्न करने लगा, प्राथमिक चुम्बन का मधुप मँड़रा मँड़रा कर अपना सुअवसर ढूँढ़ने लगा—

कितनी आँखों के जाल बिछे, कितनों ही ने डोरा डाला,
संसार-जाल में पानी सी छन जाती थी वह सुरबाला।

पर कार्य वश का नहीं था—जाल डालकर जब उसे फाँसना चाहते वह जल बनकर साफ़ छनकर नीचे आ रहती।

उस अमूल्य कान्तिवाले मोती के मन में कोई तार अब तक नहीं पोया था, उसके बीच से होकर प्रेम-सूत्र अभी नहीं गुज़रा था—

इस आबदार मोती के मन में था तार न पोया,
था प्रणय-सूत्र को इसके मन-मुक्ता में न पिरोया।
यह मुकुल अभी ही खिल कर मुख खोल अवाक हुआ है,
है अभी अछूता दामन मधुपों ने नहीं छुआ है।
है हृदय-पुष्प अनबेधा है नहीं किसी ने तोड़ा,
शृङ्गार हार का करके है नहीं गले में छोड़ा।

कली अब खिल रही थी, इङ्गीत से ज्ञात होता है अभी पूरी खिली भी नहीं थी, खिल खिलकर अवाक् हो रही थी। सचमुच कली खिल कर अवाक ही हो जाया करती है। मुख खुला हुआ है पर आवाज़ नहीं

निकलती। अज्ञातयौवना में जब यौवन का प्रस्फुटन होता है उसमें मुग्धापन आ जाता है। मुग्धा, खिली कली, प्रथम अवस्था में—अवाक् रहती है। उसके खिले मुख पर अब मधुप मँड़रा ही रहे थे, पर अभी किसी ने उसे छुआ नहीं था। लोगों का घूरना, उनकी अतृप्त दर्शन-लालसा देख देख कर वह आश्चर्य से अवाक् रह जाती होगी। लोगों का लक्ष्य मैं क्यों हूँ, कारण क्या है—मुझमें कौन सी ऐसी बात है जिसके कारण लोग आकर्षित होकर लट्टू हो रहे हैं—वह इन बातों को सोच सोचकर अवाक् रह जाती थी। उसका हृदय—उस मुकुल का हृदय—अभी बिलकुल अछूता था, अभी तक किसी मानव प्रेम से वह बिंधा न था, अभी कली अपने ही डंठल पर थी, किसी ने उसे तोड़कर, उसके स्थान से अलग कर, शृंगार का हार बना कर अपने गले में अब तक नहीं डाला था, उसकी बाँहों ने अभी किसी प्रणयी को कृतकृत्य नहीं किया था, किसी के गले में अब तक अँगड़ा कर नहीं पड़ी थीं।

है प्यास नहीं हिमकण सी इसको नभ पर चढ़ने की,
है टीस न हृदय समाई जो कभी नहीं कढ़ने की।

अभी प्रेम का मीठा दर्द इसके हृदय में नहीं पैठा था, एक बार घुस कर फिर कभी बाहर न निकलने वाले दर्द का अभी आरम्भ नहीं हुआ था, प्रेम-कीट ने अभी इस सद्यः विकसित कली के हृदय में डँस कर उसे पीड़ा से बेसुध नहीं बनाया था। शिल्पी ने सुन्दर मन्दिर का निर्माण कर दिया था पर उसमें अभी उसने प्रतिमा की स्थापना नहीं की थी, घटा की भाँति यौवन घना होकर उठ आया था, उमड़ आया था, पर उसे देख अभी मयूर ने अपना नृत्य नहीं छेड़ा था। कवि ने बड़ी मधुर पंक्तियाँ लिखी है :—

मन-मन्दिर सुरचि बना है, है प्रतिमा अभी न छापी,
यौवन है उठा घटा सा, नाचा है नहीं कलापी।
दृग-अतिथि किसी के अब तक नयनों में नहीं रमे हैं,
उस बने खेत में अब तक प्रेमांकुर नहीं जमे हैं।

उसका भोला हृदय किसी को अपने फेर में नहीं डालना चाहता

था। प्रेमपथिक को उसने अपने नेत्रों में अतिथि बना कर अभी नहीं ठहराया था। क्षेत्र बन चुका था, जुत चुका था पर उसमें अभी बीज नहीं पड़े थे—'प्रेमांकुर नहीं जमे' थे। शबाब की मस्ती औरों के लिए अभी नहीं अँगड़ाती थी। प्याला भर चुका था, लबालब प्याला जिसको देखकर बड़े बड़ों के ज़बान से पानी टपक पड़े। जिसके मुँह पर यौवन के बुलबुले उछल-कूद मचा रहे थे ऐसा छलकता प्याला लिए वह खिलती कली बिना किसी लालसा के चतुर्दिक देख रही थी। अधर का उभार रञ्जित सा बोध होता था, कोरे प्याले की भाँति अछूता। इसको देख किसका मन चलायमान न हो जाता पर उसकी पावनता के तेज से, तपन की ललाई से किसी पीनेवाले की हिम्मत न होती थी कि इस चमकते चन्द्र पर एक नज़र डाल दे, इस पावन प्रेम-सारिता में एक डुबकी लगा ले, इस पवित्र, निजूठे प्याले को अपने होठों से लगाकर जूठा करे? कवि उसकी पवित्रता की ओर इशारा करता है—

> होठों से नहीं लगे हैं, कोरे हैं अधर-सकोरे,
> है मन्द अभी मलयानिल, उठते हैं नहीं झकोरे।

जब कुछ विचित्र साधें उठ उठकर हृदय में भरती जाती हैं, नई नई लालसाएँ अंग अंग में उल्लास की तरंगें भरती हैं—

> जब शैशव-शिशिर सिधारा, यौवन-वसंत तब फूला,
> कुछ नई साध अंचल में छिप छिप के झूली झूला।

यह वह रहस्य है जिसका प्रादुर्भाव कलियों और सद्यः विकसित फूलों के मध्य एकान्त उपत्यका में हुआ, जिसकी नीरवता उसके शरीर-गठन का कार्य चुपके चुपके करती रही, फिर समय पाकर जिसकी शृंगार-वाटिका में ऋतुराज नामक सर्वोच्च कलाकार ने प्रवेश किया। यह निस्पृह उपवन रखानेवाला विचित्र व्यक्ति है। किसी से कुछ नहीं लेता, अथक परिश्रम तक निःशुल्क दान करता है। एक एक पौधे को बरा कर, क्यारियों को नेत्रप्रिय प्रसूनों से सजाकर ऊर्ध्वमुखी लताओं

को उनके इष्ट तरुतनों से लिपटा कर ही धन्य हो जाता है, स्वयं किसी पुरस्कार की अपेक्षा नहीं करता—

फिर वर वसन्त ने उसका सोलह शृंगार सजाया,
बालापन थक कर सोया, यौवन ने शीश उठाया।

बालापन बड़ा चञ्चल होता है। उसकी एक एक चाल में एक एक पल में वह कार्यातुरता रहती है जिसकी कल्पना घने कर्मशील का जी भी उकता देती है। अथक, निरालस शिशु की ज़िद में वह जीवन बसता है जिसका ह्रास शैशवान्त में ही होता है। तब तक उसके जीवन में रात नहीं सदा दिन ही होता है क्योंकि वह तो स्वप्न में भी कार्य सम्पादन की ही उधेड़बुन में कभी हँसता, कभी रोता प्रयत्नशील रहता है। इस कार्य की उष्णता में बड़ी मादकता होती है जो अन्त में अभूतपूर्व निद्रा लाती है। हम थोड़ा परिश्रम करके ही आराम की इच्छा करते हैं फिर जो युगान्त तक वेगवान बना रहे उस पर निद्रा की मादकता अपने पङ्ख क्यों न फैलाए? अब एक अभिनय समाप्त हुआ—'बालापन थक कर सोया'—

फिर?

फिर—'यौवन ने शीश उठाया', देखिए आगे क्या होता है। आगे वह आनन्द में विभोर बना देनेवाला समय आता है जिसकी प्रतीक्षा में रसिक मधुप दम साधे खड़े थे। यह नई अवस्था बदन को प्रफुल्ल करके अंग अंग में विद्युत् भरती है। यह वह समय है जब नायिकाएँ एक बार अपनी ओर देखकर संसार की ओर देखती हैं और विजय पूर्वक सिर उठा कर बिहँस देती हैं।

बालों में श्याम घटाएँ कानों में बिजली चमकी,
थी शोभा अजब निराली शैशव-यौवन संगम की।
गालों पर ऊषा आ आ, लज्जा से छिप छिप जाती,
बालापन रूठ चला है, नहिं फिरता बहुत मनाती।

बालों में काली घटाओं का आभास होता है, कानों की बिजली केश-घटा में से कभी कभी चमक जाया करती है। यौवन की पूर्णता

अभी अधूरी है, शैशव-यौवन का संगम है। लज्जा की लाल लहर गालों पर झलक जाया करती है, रूठा बालापन अब नहीं मानने का, यौवन किसी का होकर रहता है, पर रहता है अकेला ही।

× × × ×

यौवन जब निखर आता है तब उसकी छटा और ही हो जाया करती है। पूर्ण यौवन के आगमन का रङ्ग बड़ा ही निराला होता है, बड़ा घना। बिलकुल संग्राम का सामान लिए आता है—

दो शिविर-शृङ्ग हैं खड़े हुए, मैदान आज है भरा हुआ,
है 'मार' 'मार' की धूम, उठा जीवित हो जो था मरा हुआ।
दो मीनकेतु हैं फहराते, दोनों दल मिलते जाते हैं,
सैनिक आँखों में अंजन दे आयुध पर सान चढ़ाते हैं।

शैशव का सपाट, बराबर मैदान आज भर गया है। यौवन ने युद्ध-सामग्री लाकर समर-स्थली में डाल दी। देखते ही देखते दो सुन्दर शिविर खड़े हो गए उनके शृङ्ग उठकर नीचे मैदान को देखने लगे। रण-स्थल मार मार के शब्द-कोलाहल से गूँज उठा। वीरों के पाँव हुंकार के साथ युद्ध में विजय की आशा से आगे बढ़ने लगे। आज इस रणचण्डी ने बस एक शब्द का एलान कर दिया है—'मार' 'मार'। उसके भयङ्कर गर्जन के सम्मुख भला कौन ठहर सकता है—

देखत ही तेज ना रहैगो तेजधारिन में,
मङ्गल मयङ्क मन्द पीले पड़ जाएँगे,
मीन बिन मारे मर जाएँगे तड़ागन में,
'शङ्कर' सरोज डूब डूब सड़ जाएँगे।
खायगो कराल काल केहरी कुरङ्गन को,
सारे खञ्जरीटन के पंख झड़ जाएँगे,
इन अँखियान सों लड़ैगा अब और कौन,
केवल अड़ीले दृग मेरे अड़ जाएँगे।

भर्तृहरि जैसा विराग के आरम्भ-कीट रखनेवाला उज्जयिन्याधिपति जब इस मार्ग में ठोकर खाकर चीत्कार कर उठा—

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः ,
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेपि दक्षाः ।
किंतु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य ,
कंदर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥

—उन्मत्त हाथी के मस्तक विदारने वाले शूर इस धरा पर अनेक हैं और प्रचण्ड सिंह को मारने में दक्ष योद्धा भी कितने ही हैं परन्तु बलवानों के आगे हम हठ कर यह कहते हैं कि कामदेव के मद को दलने वाले कोई विरले ही पुरुष होंगे—तब साधारण जनों की क्या बिसात ? इस युवती की ललकार के सम्मुख ठहरने में कौन वीर समर्थ है ? इसने मार मार की ललकार के साथ चतुर्दिक क़त्लेआम बोल दिया है। जब 'मार'—कामदेव—को ही बगल में लिए वह उसी के नाम से संसार को चुनौती देती है तो विरला ही कोई खड़ा हो। हिन्दू लड़ाका 'बजरङ्गबली महावीर' का नाम लेकर रण में कूदता है, मुस्लिम रुस्तम 'अली' का नारा लगाकर वार करता है वैसे ही यौवन मद में माती यह 'मार' 'मार' के भयङ्कर शब्द से युद्धक्षेत्र में भगदड़ मचा देती है। रावण ने जिस समय सीता का हरण कर अपने सर्वनाश का सूत्रपात किया उस समय उसके भाग्य के पन्ने एक नारी द्वारा ही लिखे जा रहे थे। भस्मासुर ने जिस समय पहले पहल शिवा का विश्वमोहक लास्य देखा इसी 'मार' की चोट से वह अनर्थ कर बैठा जिसके संताप से उसके शरीर का भस्म वायु में विलीन हो गया। कीचक से महाबली के शरीर का जिस समय भीम की भयङ्करता द्वारा नाश हुआ वह उस समय नारी के पार्श्ववर्ती 'मार' की ही उपासना कर रहा था। फिर मनुष्य क्या करे ? ऐसे समर्थ देवता की आराधना करके तो सब कुछ खो ही देना पड़ता है फिर उसकी अर्चना ही क्यों करे ? फिर रहे भी क्योंकर ?—इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः—कुछ आसान काम थोड़े ही है। कितनी भयङ्कर बात है, यदि पूजा करें तो मारे जायँ न करें तो खिंच के वही जायँ। राजा हर्ष इस मानवी निर्बलता को बड़ी अच्छी तरह जानते थे इसीलिए इस 'मार' की असह्य मार को

दूरस्थ करने के लिए 'नागानन्द' के आरम्भ में उन्होंने मार-दलन जिन बुद्ध की ही प्रार्थना की—

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं,
पश्यानङ्गशरातुरं जनमिमं त्रातापि नो रक्षसि।
मिथ्या कारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमान्,
सेर्ष्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बोधौ जिनः पातु वः।

—उपेत्य (गम्भीर समाधि) के व्याज से किस नारी का चिन्तन कर रहे हो? क्षण भर भी आँखें खोलकर हम कामपीड़ितों की ओर देखो। भला त्राता होकर भी तुम हमारी रक्षा नहीं करते। तुम मिथ्या कारुणिक हो, तुमसे क्रूर और अन्य जन कौन है?—सम्बोधि के अवसर पर मारबधुओं द्वारा इस प्रकार कहे गए जिन भगवान तुम्हारी रक्षा करें। और—

कामेनाकृष्य चापं हतपटुपटहावल्गिभिर्मारवीरै—
र्भ्रूभङ्गोत्कम्पजृम्भास्मितललितवता दिव्यनारीजनेन।
सिद्धैः प्रह्वोत्तमाङ्गैः पुलकितवपुषा विस्मयाद्वासवेन,
ध्यायन्बोधेरवाप्तावचलित इति वः पातु दृष्टो मुनीन्द्रः॥

—वह मुनीन्द्र तुम्हारी रक्षा करें जिनको सम्बोधि के लिए अविचलित समाधि में अधिष्ठित धनुष चढ़ाए हुए मार ने, सर्वतः सवाद्य नृत्य करते हुए मार-सैन्य ने, भृकुटियाँ चढ़ाए, कम्पित जृम्भमाना, स्मितवदना, ललिताचारवती दिव्य नारियों ने, नत-मस्तक सिद्धों ने और पुलकित शरीरवाले इन्द्र ने विस्मयपूर्वक देखा।

ऐसे बुद्ध का ही हम ऐसे अवसर पर अह्वान कर सकते हैं फिर भी हमें सफलता प्राप्त होगी अथवा नहीं इसमें भारी सन्देह है क्योंकि यदि कोई मनुष्य कामदेव द्वारा घायल नहीं हुआ तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसने उसकी विजय कर ली वरन् यह कि उसे उसकी जोड़ का कामदेवाश्रय नहीं मिला। हृदय सबका ही दुर्बल होता है। अनुकूल शक्ति रूपी वायु के हल्के झोंके से ही इन्द्रियजीत का ऊपरी कठोर आवरण मिट्टी के घड़े की भाँति चकनाचूर हो जाता है और फिर वही

कमजोर मतवाला फिसलनेवाला लाल दिल ! मोम का दिल, जिसके पिघलते ज़रा देर नहीं लगती। एक बार फिसल जाने पर बर्फ़ीले पहाड़ की चोटी से ही पतन होता है जो रुकने का नाम नहीं जानता इसीलिए भर्तृहरि ने कहा है—

तावदेवकृतिनामपिस्फुर -
त्येषनिर्मलविवेकदीपकः।
यावदेवनकुरङ्गचक्षुषां,
ताड्यतेचपललोचनांचलैः ॥

—विवेकियों के भी निर्मल विवेक का दीपक तभी तक प्रकाशित रहता है जबतक मृगनयनी स्त्रियों के चंचल लोचन रूपी आँचल से नहीं बुझाया जाता। सो इस 'मार' 'मार' की धूम मचाए नव यौवन ने रस-रण-क्षेत्र में पदार्पण किया है। भ्रूकमानों के साए में 'मनिकेतु' फहरा रहे हैं। मीनकेतु मार, हाथ में मीन-चित्रित विजय-पताका धारण किए इस युद्ध में सैन्य सञ्चालन कर रहा है। सत्य ही यौवनसम्पन्ना तरुणी के नेत्र 'मीनकेतु' ही हैं। आँखों में अंजन लगाकर मानो शस्त्रों पर 'सान' चढ़ाया है। अञ्जन, सुर्मा, पत्थर का बना तो होता ही है उसे नेत्रायुधों पर चढ़ा दिया है। इस 'सान' (सैन—इशारा, मटकी, कटाक्ष) का मारा हुआ इस विष का मंत्र ढूँढता ढूँढता संसार में भटक कर मर जाता है—

व्यादीर्घेण चलेन वक्रगतिना तेजस्विना भोगिना,
नीलाब्जद्युतिनाहिना वरमहं दृष्टोनतच्चक्षुषा।
दष्टे सन्ति चिकित्सका दिशि दिशि प्रायेण धर्मार्थिनो,
मुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्य नहि मे मंत्रो नवाप्यौषधम् ॥

—बड़ा लम्बा, चंचल, टेढ़ी चालवाला और तेजमान फणधारी नील कमल-सा काला सर्प जो मनुष्य को काट ले तो अच्छा परन्तु स्त्री के कटाक्ष का काटा अच्छा नहीं क्योंकि साँप के डँसे को बचानेवाले सब देशों में बसते हैं प्रायः धर्मार्थी भी होते हैं पर अच्छे नेत्रोंवाली स्त्री की दृष्टि द्वारा काटे का न कोई मन्त्र है न औषध। जो स्त्री को अबला

समझते हैं वे भ्रम में हैं। जो नारी मार-मार की ललकार के साथ भरे यौवन में चुनौती दे सकती है वह अबला क्योंकर होगी ?—

याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः,
शक्रादयोऽपि विजिताः अबलाः कथं ताः ?

सो आज समर-भूमि में पदार्पण कर यौवनधारी इस अजातशत्रु ने अखिल जगत को शत्रु रूप में सम्मुख कर युद्ध की घोषणा कर दी है। उसके विजय में सन्देह नहीं, उसके सम्मुख विजय भी कोई वस्तु नहीं, उसकी पराजय भी विजयी शत्रु को शृङ्खलाबद्ध करती है— सावधान !

इस सर्ग में प्रकृति के अवयवों का सुन्दर निरीक्षण हुआ है। हिन्दी काव्य में प्रमदवन (pleasure-garden) का इतना पूर्ण और मनोहर वर्णन तो कहीं मिलता ही नहीं। सलीम की विलासिता का यह वर्णन कवि की ही पंक्तियों में, लम्बा होता हुआ भी, देना अधिक उचित होगा वरन् वर्णन का सौन्दर्य सूखे गद्यात्मक निरीक्षण से छन जाएगा। अस्तु,

गोल कहीं, षट्कोण कहीं, अंडे सी, कहीं त्रिभुज सी,
चित्र-विचित्र कटी क्यारी में, डमरू सी, अम्बुज सी,
लाल लाल वासों की रविशों पर है गोट लगाई,
समतल कटी दूब की भूपर है हरियाली छाई।
दौड़ रहे हैं मार्ग संगमूसा के हरियाली पर,
बीच बीच में मिल जाती हैं जिनमें नहरें आकर।
इन दोनों ने श्वेत, श्याम शतरंजी वहाँ बिछाई,
जिसपर 'संखों' के प्यादों ने अपनी चाल दिखाई।
जल-विहार के लिए कभी 'कश्ती' को हैं दौड़ाते,
'हाथी' 'घोड़े' बादशाह को अपनी चाल दिखाते।
नीतिकुशल आकर 'वज़ीर' भी अद्भुत चालें चलता,
छुटते फ़व्वारों की छवि पर मन हो मुग्ध उछलता।
कहीं 'मोरपंखी' का पौधा कहीं 'लवंगलता' है,
खोले केश कहीं पर बिरहिन 'समबुल' कामरता है।

'मौलसरी' की कहीं कतारें, पारिजात की अवली,
परियों सी उड़ती फिरती है तितली पुष्पासव पी।
बौराये 'रसाल' 'रम्भा' सँग 'नारिकेल' में रत हैं,
विविध 'ताल' ऊँचे 'सुशाल' रोके सिर पर नभछत हैं।
पत्ते झालर से अशोक हिल हिल हैं व्यजन डुलाते,
रंग विरंगे फूल झूल डाली पर मधुप बुलाते।
फूलों ही में डूब रही हैं 'कचनारों' की काया,
विटप 'संकरेश्वर' फूलों से लाल लाल हो आया।
'इमतलास' वर बना हुआ है पहिने जोड़ा पीला,
'नारंगी' है भरी रंग में यौवन लिए रसीला।
नई 'अनारी कलियों' ने कैसी है आग लगाई,
जो 'पय कहाँ ?' 'कहाँ पय ?' की चातक ने टेर उठाई।
रात समय 'माधुरी' लता सित फूलों से मुस्काती,
दिनकर से आलिंगित होकर प्रेमराग रँग जाती।
'रूप-मंजरी' छटा दिखाती कहीं मालती छाई,
नव अंकुरित यौवना सी 'कामिनी' दृगों को भाई।
हरिताञ्चल में लाल छिपाए 'मेंहदी' झूम रही है,
रविशों पर मोरों की माला मद में घूम रही है।
कर में करवालें पुष्पों की ले 'अगस्त' इतराता,
वृक्ष छरेरा 'पुंगीफल' का छवि सा है बरसाता।
'अंगूरों' की लतिकाओं में लटक रहे हैं मोती,
कहीं 'कुंद'-कुञ्जों में जोड़ी है 'महोख' की सोती।
फुदक रहे हैं द्रुम-शाखों पर 'लाल', 'थिरथिरा', 'बामा',
कू कू कर 'फ़ाख़्ता' बुलाता निज 'पंडुकी' सुबामा।
मेहराबों पर चढ़ी हुई हैं सुघड़ 'चमेली' बेलें,
'शशक' 'करौंदे' की झाड़ी के झुरमुट में छिप खेलें।
'ग्रीष्म-भवन' पर चढ़ी 'मालती' है वितान सा ताने,
जिसने बहुत प्रेम - लीला देखी है, सुने फ़साने।

जिसमें खेले गए अनेकों काम-कला के अभिनय,
जिसमें हँस हँस होता रहता है आनन्द सुमन-च्चय।
पद्मराग के प्यालों ही में सुरभि सुरा को ढाले,
चुसकी ले लेकर सरूर में हैं 'गुलाब' मतवाले।
'बैजन्ती' उड़ रहा पवन में, खिला 'मोतिया' का मन,
'जटाधारियों' का फूलों ने हँस हँस किया सुदर्शन।
'बेले' की अलबेली छवि है, 'गेंदे' का रँग चोखा,
'गुलमेंहदी' है बड़ी रँगीली, है शृंगार अनोखा।
'रजनीगंधा' निशि की रानी, जूही है मस्तानी,
'गुलसब्बो' सुगंध मतवाली, हैं 'केतकी' सुहानी।
'सदा-सुहागिन' सदा सुहागिन, 'केवड़े' छटा दिखाते,
'आलबाल' में सुन्दर पौधे पर्वत के छवि पाते।
रंग रंग की मणिनिर्मित हौजों में मीन भरे हैं,
सोने के पानी में डूबे, पीले, लाल, हरे हैं।
इस विशाल शाही उपवन में रहती षट्ऋतु छाई,
था वसंत भी हुआ विमोहित लख लख नव सुघराई।

यह निराला शाही उपवन भाँति भाँति की—वृत्त, षट्कोण, अण्डे, त्रिभुज, डमरू और कमल के आकारवाली—क्यारियों से सुशोभित है। समतल वाटिका की कटी हरियाली पर संगमूसा की काली और प्रणालिकाओं की श्वेत बीथियाँ दौड़ रही हैं जिनके जहाँ तहाँ मिल मिलकर एक दूसरे को काटकर बढ़ने से शतरंजी सी बिछ गई है। इस शतरंजी पर जहाँ तहाँ चतुर्भुज क्यारियों में 'किश्ती', 'हाथी', 'घोड़े', 'बादशाह' और 'वज़ीर' के आकार शतरंज के बिछे मुहरों से प्रतीत होते हैं। कहीं 'मोरपंखी' के पौधे और कहीं लतावत पतले 'लौंग' के द्रुम खड़े हैं। 'खोले केश कहीं पर विरहिन सम्बुल कामरता है'—वाटिका का चित्र सम्बुल की कामुकता से सजीव हो उठता है। 'मौलसरी' और 'पारिजात' की क़तारों पर तितलियाँ उनका पुष्पासव पी पी मदमस्त परियों की भाँति उड़ रही हैं। वसंत में रसीले 'रसाल'

अपने रस और अपनी ही मंजरी की मदकारिणी सुगन्ध से बौरा बौरा कर सुतन्वी, नन्दनकानन की सुन्दरी 'रम्भा' के साथ केलि कर रहे हैं। आमों की झुरमुट में ही खड़े कदली-खम्भ और जहाँ तहाँ छिटके पास के 'नारिकेल' एकसाथ ऐसे गुँफे खड़े हैं कि कवि की अभूतपूर्व कल्पना सार्थक हो जाती है—बौराये 'रसाल' 'रम्भा' सँग 'नारिकेल' में रत हैं—'नारिकेल' से नारि-केलि का ध्वन्यात्मक आभास होता है। ताड़, शाल और अशोक के सुघड़, ऊँचे वृक्षों की कमी नहीं। 'कचनारों की काया' तो फूलों में ही डूब गई है। 'संकरेश्वर' और 'इमलतास' लाल पीले फूलों से आच्छादित हैं। 'नारंगी' में कवि भरे यौवन का आलोक देखता है। इस नारंगी रूपी यौवन पर, अनार की कलियों के अधर की अरुणाई सच ही रसिकों के हृदय में आग लगा देगी। इस विकट अग्नि से जलता पथिक जीवन—जल—के लिए तड़प तड़पकर 'पय कहाँ ?' 'कहाँ पय ?' की पुकार क्यों न मचा दे ? फ़ारस के चमन का बुलबुल गुलाब से भरी क्यारियों में चहकता है, भारत का चातक वर्ष भर प्यासा रहकर ग्रीष्म की उष्णता जल कर बर्दाश्त करता है पर जब उसे यौवन का यह भीषण सामान घूरता है उसका धैर्य छूट जाता है और वह पानी की पुकार मचा देता है—

जो 'पय कहाँ ?' 'कहाँ पय ?' की चातक ने टेर उठाई।

'माधुरी' लता की छटा निराली है। रात में खिले उसके श्वेत पुष्प प्रातः अरुण की लाल किरणों का स्पर्श—आलिंगन—कर 'प्रेमराग' में रँग जाते हैं। प्रेम का रंग लाल माना गया है। 'माधुरी' के फूल भी सफ़ेद और लाल होते हैं। कहीं 'रूपमंजरी' की छटा बहार दिखा रही है, कहीं 'मालती' की छबि छाई हुई है। उधर 'कामिनी' 'नवअंकुरित यौवना'—सद्यः ज्ञात लक्षणा नायिका—सी दीख रही है। लम्बे फूलों के गुच्छे 'अगस्त' वृक्ष पर करवालों से दीखते हैं और

हरिताञ्चल में लाल छिपाए 'मेंहदी' झूम रही है,
रविशों पर मोरों की माला मद में घूम रही है।

'अंगूरों' की लतिकाओं में लटक रहे हैं मोती,
कहीं 'कुंद-कुञ्जों' में जोड़ी है 'महोख' की सोती।

अंगूरी बेलों में लगे अंगूर मोती से रह रहकर चमक उठते हैं। कुंद-कुंजों में कवि ने अनोखे प्यार के रूप में महोखों का जोड़ा सुला दिया है।

'ग्रीष्म-भवन' पर चढ़ी 'मालती' है वितान सा ताने,
जिसने बहुत प्रेम - लीला देखी है, सुने फ़साने।
जिसमें खेले गए अनेकों काम-कला के अभिनय,
जिसमें हँस हँस होता रहता है आनन्द-सुमन-चय।

मालती की घनी बेल ने 'ग्रीष्म-भवन', राजकीय Summer House को पूर्णतया आच्छादित कर निकुंज बना रखा है। यह वही स्थल है जहाँ कितनी ही शकुन्तला, इरावती, मालविका, और अन्य नायिकाएँ नित अपने प्रियवर के अंक में मान छोड़कर आत्मसमर्पण कर देती थीं। कालिदास के शाकुन्तल और मालविकाग्निमित्र और हर्ष के नागानन्द की कितनी ही प्रेम-कथाएँ इन्हीं मालती अथवा माधवी-मण्डित मण्डपों में रची गई थीं। नागानन्द के नायक से कितने ही धर्मनिष्ठ और मालविकाग्निमित्र के अग्निमित्र से कितने ही 'शठ' इन्हीं निकुंजों में रो रो कर अपने तड़पाते प्रेम का वर्णन करते थे जिसे धूर्त दूतियों द्वारा चातुरी से लाई गईं पास ही ओट में खड़ी नायिकाएँ सुन सुन कर उल्लसित होती थीं; जहाँ रघुवंश के अग्निवर्ण सरीखे 'लम्पट' अन्तःपुर की रानियों द्वारा पकड़े जाने के भय से भाग कर 'रमण वसतीं'-प्राप्त अभिसारिकाओं के संग रमण करते थे—

क्लृप्तपुष्पशयनाँल्लतागृहानेत्य दूतिकृतमार्गदर्शनः,
अन्वभूत्परिजनाङ्गनारतं सोऽवरोधभयवेपथूत्तरम्।

जहाँ 'कण्ठासक्तमृदुबाहुबन्धनं' और 'निशात्ययविसर्गचुम्बनं' की कथा सम्पन्न होती थी, जहाँ प्रियसखा नायक 'प्राणकान्तमधुगन्ध-कर्षिणी' 'पानभूमि' की रचना किया करते थे, जहाँ विश्व के पोषक स्वयं कृष्ण जयदेव द्वारा प्रस्तुत—

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे,
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुंजकुटीरे।—

लता-गृह में राधा का विरहान्त करते थे, जहाँ कंदर्प-दलन शिव स्वयं अनंग के शिकार होते थे और जहाँ कालिदास के शब्दों में—

नवपरिणयलज्जाभूषणां तत्र गौरीं
वदनमपहरन्तीं तत्कृताक्षेपमीशः।
अपि शयनसखीभ्यो दत्तवाचं कथंचि -
त्प्रथममुखविकारैर्हासयामास गूढम्।

यह वही केलिकुंज है जिसने सच्ची झूठी कितनी ही प्रेम-कहानियाँ सुनीं, कितने ही मुहब्बत के अफ़साने सुने। अकबर की विलासमयी कितनी ही कृतियों का वह साक्षी है। उसका एक एक फूल, एक एक पत्ता सम्राट के गुप्त-प्रेम का भेद झाँक-झाँककर देख चुका है। इसके चारों ओर पद्मराग के प्यालों में अपनी ही सुरभि-सुरा ढाल ढाल कर 'चुसकी ले ले' गुलाब सरूर में झूम रहे हैं।

इस सौन्दर्यधनी राज-उपवन में वैजन्ती, मोतिया, जटाधारी, सुदर्शन, बेला, गेंदा, गुलमेंहदी, रात की रानी रजनी-गन्धा, मस्तानी जूही, गुलसब्बो, केतकी, सदासुहागिन और केवड़े ने अपनी भीनी भीनी सुगन्ध से पवन को सुरभित कर रखा है। पतली दीर्घिकाओं में तरह तरह की मछलियाँ उछल रही हैं—

इस विशाल शाही उपवन में रहती षट्ऋतु छाई,
था वसंत भी हुआ विमोहित लख लख नव सुघराई।

यहीं फूलों के सौन्दर्य के बीच पक्षियों के कलरव सुनता हुआ सलीम कबूतर उड़ा रहा था और इसी उपवन में संसार की वह रोमाञ्चक (romantic) घटना घटी जिसने Great Moghal—भारत के सम्राट—का हृदय सदा के लिए हर लिया और जिस से दीवाना होकर शाहंशाह जहाँगीर ने भविष्य में अपने ताज को नूरजहाँ की एक मुस्कान पर निछावर कर दिया।

कवि का ज्ञान सर्वतोमुखी है। कबूतरबाज़ी का व्यसन या तो कवि

ने स्वयं कभी रखा है या उसे बराबर देखा है। कबूतरों की क़िस्में, उनकी एक एक चाल, व्यवहार वह सब जानता है और उसने उन सबका इस प्रसंग में वर्णन किया है। सलीम कबूतरों के खेल देख रहा है, मेहरुन्निसा गुलाब के काँटों से छिद जाने से अँगुली से लहू टपकाती आती है। सलीम अपना दामन फाड़ उसकी अँगुली बाँध देता है जिससे मेहर के हृदय में प्रेम का काँटा लग जाता है। उसका जी बहलाने के लिए वह गुलाब की कलियाँ लाने उसके हाथों में हाल के पकड़े हुए कबूतरों का एक जोड़ा देकर चला जाता है। उनमें से एक कबूतर पर फड़का फड़का कर उसके हाथ से उड़ जाता है। सलीम फूलों से झोली भरे आता है और गुलाबों से कहीं सुन्दर मेहर का मुख निरखने लगता है—

एक कबूतर देख हाथ में पूछा—'कहाँ अपर है' ?
उसने कहा—'अपर कैसा ? वह तो उड़ गया सपर है ।'

मुग्धा के स्वाभाविक कथन से कुछ अनभिज्ञ कवि का भाषा सम्बन्धी श्लेष है। सलीम पूछता है 'अपर'—दूसरा—कबूतर कहाँ है ? मेहर समझती है सलीम उड़े कबूतर को 'अपर'—बिना पर वाला—समझता है और वह झट कह उठती है—

···अपर कैसा ? वह तो उड़ गया सपर है ।

वह बिना परोंवाला कबूतर तो नहीं था—होता कौन है ?—वह तो सपर—परोंवाला—था और परों के साथ ही उड़ गया ! सलीम कुछ झल्लाकर पूछता है—अरे, वह उड़ कैसे गया ? मेहर अपनी स्वाभाविकता से दूसरे कबूतर को भी उड़ाकर कहती है— देखिए इस तरह उड़ा—

'फड़' से उड़ा दूसरा बोली, 'उड़ा, देखिए, ऐसे' ।

कौन ऐसा है जो इस सीधेपन पर लट्टू होकर अपना सर्वस्व न वार दे ? इस स्वाभाविकता की चोट कौन सम्हाल सकता है ? इसके सामने उन व्यंगों और चालों की क्या क्षमता है जिनके द्वारा संसार में प्रतिद्वन्द्वी आहत किए गए हैं ? इस भोलेपन के चमत्कार के सामने

तो संसार का राज्य भी तुच्छ है और यदि अपना साम्राज्य उसे सौंपकर उसके पति के खून से ही अपने हाथ रँगकर जहाँगीर इस नूरजहाँ को अपनाना चाहे तो उसे कौन दोष लगा सकता है ?

भोलापन यह देख, चकित हो, मुखछवि अथक निहारी,
उसको रहा निरखता इकटक, तन की दशा बिसारी।
फिर इक ठंडी साँस खींच कर दौड़ अधर-चुम्बन ले,
ऊपर उठा लिया हाथों से, लगा लिया सीने से।

× × ×

फिर— ... ... पुनः खींचकर, चुम्बन की वर्षा कर,
बार बार आलिंगन करके गया हर्ष में वह भर।

रुकी, दबी, भावनाओं के अकस्मात खुलने पर ठीक यही अवस्था होती है। सलीम ने मेहर को प्यार-भरे चुम्बनों से भर दिया। पर उसका अभाग्य उसके साथ सदा लगा रहता था। ठीक ऐसे ही समय जब सलीम प्यारभरी अनार को अंक में भर उसका चुम्बन कर रहा था अकबर ने पहुँच कर उसके सुख का अन्त कर दिया था। उसी अवस्था में अभी सलीम मेहर पर अपने प्रेम की वर्षा कर ही रहा था कि—

इतने ही में एक कुञ्ज से हँसने की ध्वनि आई,
मेहर तुरत हट गई वहाँ से, दृग न उठे, शरमाई।

कौन है, किसकी हिम्मत है जो युवराज सलीम के उपवन में ही उसके प्रेम-रहस्य का छिपकर भेदन करे और उसकी हँसी उड़ाए? देखें—

सातवाँ सर्ग

'नूरजहाँ' का सातवाँ सर्ग मुग़ल-हरम के षड्यन्त्रों का प्रतिबिम्ब है। जमीला उसका एक ज्वलन्त रूप है। वज़ीर की कन्या के रूप में अवतरित यह सुन्दरी वास्तव में मेहर का भौतिक, शारीरिक दुर्भाग्य है। किस प्रकार मेहर के सौन्दर्य और ऐश्वर्य के साथ-साथ इसका उदय होता है यह कथा-भाग में वर्णित है। कथा-भाग में उसका रूप सुन्दर, कृति अतीव घृणित और चरित्र बिलकुल अवाञ्छनीय है परन्तु महाकाव्य के पात्रों में ऐसों का होना अनिवार्य है। नायिका के दुर्भाग्य की छायारूपिणी पात्राएँ कथा की प्रगति में वेग उत्पन्न करती हैं। मंथरा जानकी के सुख में काँटा होकर, राम के अभिषेक में शूल होकर भी उस धारावाहिनी की प्रगति है जिसकी अनुपस्थिति में संसार के एक सर्वांगसुन्दर महाकाव्य रामायण की कल्पना असम्भव हो जाती। जमीला भी रामायण की मंथरा और अभिज्ञान - शाकुन्तल के दुर्वासा के शाप की ही भाँति सम्राट के अन्तःपुर की अदृष्ट-छाया है। महाकाव्य के टेक्नीक (Technique) के दृष्टिकोण से यह सातवाँ सर्ग बड़े महत्व का है। दुर्भाग्य में जन्मी मेहर सुख से शैशव के दिन बिता चुकी है अब यौवन का उदय हुआ है और साथ ही उसके अभाग्य के चिह्न घटा की भाँति उमड़े आ रहे हैं। जमीला ही उसका उठता हुआ दुर्भाग्य है। सुन्दरी, चालाक, नीच और स्वार्थ-परायण जमीला का चरित्र कवि ने सातवें सर्ग की पहिली दो पंक्तियों में ही खोलकर रख दिया है—

यदि नाम जमीला है मेरा पानी में आग लगा दूँगी,
तू मेहर बड़ी चालाक बनी, तुझको मैं नाच नचा दूँगी।

जमीला की दुरभिसन्धि केवल उसके ओछे हृदय का प्रतिबिम्ब ही नहीं प्रत्युत् उसकी उच्चाकांक्षाओं की बलवती प्रसाधिका भी है। सलीम की अर्धांगिनी बनकर दिल्ली की मलका बनना उसका एकमात्र

ध्येय है और उसके लिए कटिबद्ध हो वह सारे यत्न करेगी। एक एक वाक्य उसकी नीचता का बोधक है, एक एक शब्द उसके बाज़ारूपन का सबूत है। मेहर के प्रति उसकी घृणा का परिचायक उसके एकान्त कथन का एक एक अक्षर है। उसका यह विश्वास है कि मेहर के सौन्दर्य में सलीम को आकर्षित करने के लिए प्रचुर सामग्री नहीं उसने तो युवराज पर जादू-टोना 'कुछ' करके उसे अपने वश में कर रखा है। कवि की कला जमीला के चित्रण में बड़ी सफल हुई है। ओछी स्त्रियों की आदर्श-मूर्ति इस जमीला के एक एक वक्तव्य में एक एक कार्य में अधम स्त्रीत्व का रूप झलकता है। अपने सौन्दर्य और लावण्य को वह मेहर से बढ़कर समझती है पर मेहर ने जो सलीम पर 'कुछ' कर दिया है इसी कारण सलीम उसकी ओर से विरक्त है। वह कहती है—

भोले सलीम पर 'कुछ' करके उसपर वह भूली फिरती है।

भाग्य की भाँति वह मेहर के पीछे-पीछे सदा लगी रहती है। सलीम और मेहर के गुप्त प्रेम का वह पूरा रहस्य जानती है। अभी कल ही उसने दोनों का एकान्त मिलन देखा था और उनकी गतिविधि को लक्ष्य कर हँस दिया था। सलीम बहुत खोज करने पर भी नहीं जान सका था कि किसने छिपकर उसका प्रेम-प्रदर्शन देखा और उसके प्यार पर हँसने की धृष्टता की। यह सब कुछ जमीला ने ही किया—

वह कुंजों में सलीम के सँग छिप छिप कर मज़ा उड़ाती है,
कल मैंने आँखों देख लिया नित बातों में बहलाती है।

अपने लावण्य पर जमीला को बड़ा गर्व है और उसे इस बात का ज्ञान है कि हज़ारों उस पर मरते हैं। उनको वह आँख उठाकर भी नहीं देखती और उनकी आहें उसे सुख देती हैं। कवि ने उसके मुख में उपयुक्त भाषा रखी है—

कितनी बरसातें देखीं हैं, हूँ हीर, नहीं कच्ची लकड़ी,
मैं गाकर सेंध लगाती हूँ फिर भी न गई अबतक पकड़ी।

वह कच्ची लकड़ी नहीं है। कितनी ही बरसातें खाकर जैसे कच्ची लकड़ी 'हीर' हो जाती है जिस पर मौसिम का कोई असर नहीं

होता उसी प्रकार वह अनुभव से पक गई है और मेहर उसके सामने तुच्छ है। बढ़ईगिरी के मुहावरे में वह कहती है—

मैं ऐसी चूल मिलाऊँगी कि भाँप न कोई पाएगा,
ऐसा पचड़ा फैलाऊँगी कि खुद सलीम घबड़ाएगा।

अब उसने वह करने की ठानी है जो घर में कलह उत्पन्न कर उसमें आग लगा देती है। कवि मुहावरेदार भाषा लिखने में हिन्दी साहित्य में अपना सानी नहीं रखता। जमीला की इस Soliloquy—एकान्त कथन—में ५४ लाइनें हैं जिनमें लगभग ५७ मुहावरों का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया गया है जो जीवन के कई व्यवसायों से लिए गए हैं और कवि के सर्वतोमुखी ज्ञान का परिचय दे रहे हैं। कुछ तो इतने सुन्दर हैं कि उनको उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं हो सकता, अतएव वे नीचे दिए जाते हैं—

मैं तुरपा दूँगी सब पत्ते सब रंग तेरे कट जाएँगे,
तेरे हिमायती हैं जितने मुझसे न कोई अट पाएँगे।
मैं गर्दन उसकी नापूँगी जो कतर-ब्योंत दिखलाएगा,
जो मेरा 'काज' बनाएगा वह सीने में घर पाएगा।
मैं चूना तुझे लगाऊँगी, तू करनी का फल पाएगी,
मैं लीप पोत कर रख दूँगी तू जो जो चित्र बनाएगी।
मैं ऐसा नारा भर दूँगी कि जिसका तार नहीं टूटे,
चरखा कर तुझको छोड़ूँगी तू बाँदी बनी करम कूटे।
ऐसी कुंदी मैं कर दूँगी तू कलप कलप कर मर जाए,
मैं सौंद सौंद कर फींचूँगी तू घाट घाट फिर मर जाए।

इस प्रकार के मुहावरों का अटूट प्रयोग इस महाकाव्य में स्थल स्थल पर हुआ है और इनका अध्ययन अलग परिशिष्ट में करना उचित होगा। अस्तु, वहीं करेंगे।

जमीला सम्राट् अकबर से जाकर सलीम और मेहर के छिपे प्यार की बात कहती है और अकबर इसमें बाधा डालने की ग़रज़ से मेहर की शादी अलीक़ुली से करके दोनों को बंगाल भेजना स्थिर कर

लेता है। अली क़ुली सीमाप्रान्त का बहादुर, शौर्य में अकेला है। उसे अकबर बंगाल का सूबेदार बनाकर ढाका भेजना तै कर लेता है।

× × ×

कवि प्रकृति का विरद-पण्डित है। प्रकृतिपर्यवेक्षण कर जब वह उसका वर्णन करने लगता है जड़-प्रकृति सजीव होकर जैसे थिरक उठती है। कवि उस पर मुग्ध होकर स्वयं नाच उठता है। उसका हृदय नवीन रक्तस्रोत से स्पन्दित हो मस्त हो जाता है और रागमालिका ठनक उठती है—

नव कुसुमों का मृदुल हास रह रह ले रहा हिलोरें,
भृंगपुंज कर रहा गुंजरित वन उपवन की छोरें।
ओसबिन्दु की मालाओं का भूषणभार सम्हाले,
उतर रही मुग्धा ऊषा रवि के कर में कर डाले।

प्रातःकाल का प्रारम्भ है। कलियाँ खिल रही हैं। नए नए फूलों का खिलना ऐसा मालूम होता है मानो हँस हँस कर वे वाटिका में तरंगें उठा रहे हों। भौंरों की गुंजार से वन-उपवन का कोना कोना गुंजरित हो रहा है। ऊषा सुन्दरी प्रातःसमीरण के साथ ओस-बिन्दुओं के मोतियों की माला धारण कर अपने प्रणयी सूर्य के हाथ में हाथ डाले मानो उतर रही है। राजप्रासाद के गुम्बजों पर लगे स्वर्ण-पत्तरों पर बने कनक-कलशों की सुन्दरता वर्णनातीत है—

कनक-कलश उस व्योम-विचुम्बी राजभवन का अनुपम,
उगते रवि के रश्मिकरों में चमक रहा है चमचम।

प्रातःकालीन सूर्य मानो इन स्वर्ण-कलशों को अपने किरणकरों में उठाए दिवस के आरम्भ में कार्यातुर जनों के कार्यारम्भ के समय पूर्ण-घट द्वारा शुभकामना का अभिनय कर रहा है। और

दुग्धफेन सी उज्ज्वल चित्रित दीवारों से रविकर
फिसला पड़ता है गिर गिर कर काँप रहा है थर थर।

दूध की भाँति श्वेत दीवारों पर सुन्दर चित्रण किया हुआ है उन चित्रों पर रवि-कर जैसे चढ़ चढ़ कर बारम्बार उन्हें नवीन कर रहे हैं।

फिर भी उनकी चिकनाहट से, संगमरमर के स्पर्श से, वे फिसले पड़ते हैं। इङ्गित संगमरमर की जालियों की ओर है। इन जालियों से होकर सूर्य की किरणें जब चित्रित दीवारों पर पड़ती हैं ऐसा मालूम होता है वे चित्रों पर फिर नए रंग चढ़ा रही हैं। उन राजप्रासाद के द्वारों को लाँघकर जिन पर सदा बलिष्ठ हथियारबन्द खोजों और खंजर-धारिणी बाँदियों का अहर्निश पहरा रहता है ये रविकर चोर की नाईं कक्ष में जालियों से प्रवेश करते हैं और पकड़े जाने के भय से थर थर काँप रहे हैं।

सुन्दर प्रभात का समय है। कवि मनोहर प्रातःकालीन दृश्य खींच रहा है—

गा गा कर 'चन्डूल' व्योम पर चढ़ कर खो जाता है,
डुबकी लेकर नील उदधि में दिव्य वही हो आता है।
'नीलकंठ' कर प्रणय-प्रदर्शन उड़ता लहरें ले ले,
कभी मानिनी मना मना शिवमन्दिर पर मिल खेले।

प्रातःकाल का शीतल समीर हल्के हल्के चलने लगा। प्रेमप्रमत्त मलयानिल सुरभिसुरा पान करने लगा और उसके स्पर्श से हरियाली भी करवट ले ले कर धीरे धीरे जागी—

कुछ करवट लेते ही लेते हरियाली भी जागी,
परिमल-सुरापान में रत है मलयानिल अनुरागी।

× × ×

एक दूसरे को लख लख कर, करके गुप्त इशारे,
मुस्काईं कलियाँ, चुटकी ले, छिपते देख सितारे।
निशा-सुन्दरी ने तारों सँग रति में रात गँवाई,
इन अलियों की अठखेली पर लज्जा-लाली छाई।
इतने ही में दुनियाँ जग सब लगी देखने लीला,
शरमाती घूँघट देती छिप भागी लज्जाशीला।

कलियाँ खिल रही हैं। उनका चिटक चिटक कर खिलना क्या है रात और सितारों की चुटकी लेना है। 'निशा-सुन्दरी' ने तारों के

साथ रात भर आनन्द किया है जिसे कलियों ने देखा है। अब दोनों प्रातःकाल के प्रकाश में पकड़े जाने के भय से भाग रहे हैं। सितारों को छिपते देखकर कलियाँ एक दूसरे की ओर घूर घूर कर गुप्त इशारे कर—रात की रतिकेलि के प्रति संकेत कर—चुटकी ले ले चुहलबाज़ी करने पर—निशा पर लज्जारूपी लाली छा जाती है—प्रातःकालीन सूर्य की अरुण रश्मियाँ उतर कर व्रीडाराग से उसके कपोल रंजित कर देती हैं। इतने ही में सारा संसार जाग कर भागती रात और छिपते तारों की सारी लीला देखने लगता है, फलस्वरूप निशा अपने रहस्य के भेदन के भय से लज्जाशीला होकर शरमाती और घूँघट निकालती भाग जाती है। प्रातः की गोधूलि में गोपनीय काम की कालिमा से श्यामवर्णा निशा धुँधली दीख पड़ती है और उसे देखकर शरमाती, घूँघट निकालती हुई किसी भागती अभिसारिका का आभास होता है। सो प्रातःकालीन सूर्य ने संसार को अपने अरुण राग में रँग दिया। फिर—

भैरव का परदा करके जब किरण नाचती आई,
लतिका ने करतारों पर कलिका-मिजराब लगाई।

इस गोधूलि के परदे में जब किरण-नर्तकी नृत्य करती हुई उतरी तब लतिकाओं की कलियाँ चमक उठीं। लतिका सितार की भाँति और उनकी कलिकाएँ मिज़राब की नाईं दीखने लगीं। इसी वाद्य और नृत्य के समागम में अपना योग देकर संगीत के तीनों अंग पूर्ण करने के हेतु गायनाचार्य 'दहियल' ने भी नर्तन और वाद्यस्वर में सुर मिलाकर ऐसा राग अलापा कि—

विश्वहृदय संगीत-सुरा में छक कर डूब गया सा।

फिर तो—

देने लगीं ताल लहरें भी तट से टकरा करके,
अरुणोदक पी पवन बिहरता कमल अंक में भरके।

इस प्रभात के वातावरण में

प्रकृति - राग में रँगे सभी थे रस में जग तन्मय था,
उस समाज की अनुपम लय में जिसे देखिये लय था।

'भुजंग' प्रातःकाल गाता है और उसका स्वर ऐसा मालूम होता है जैसे उसने 'ठाकुर जी' 'ठाकुर जी' की पुकार मचा दी हो। कितने ही लड़के उसके इस स्वर का अनुकरण कर 'ठाकुर जी' 'ठाकुर जी' पुकार उठते हैं। सो प्रकृति की इन सारी विभूतियों को देखकर वह मानो इनके आश्रय और स्रष्टा 'ठाकुर जी' के नाम का जाप आरम्भ कर देता है। प्रातःकाल सोकर उठते ही जो कितने हिन्दू दिन का आरम्भ करने के पूर्व 'ठाकुर जी' ठाकुर जी' कह लेते हैं उस पाठ का प्रारंभ भुजंग ही तो करता है। इसी से कवि कह उठता है—

था भुजंग पहिले से उठकर मस्त हुआ छवि पी पी,
था सराहना में कह उठता—'ठाकुर जी' 'ठाकुर जी'।

\+ + + +

इस सौरभमय समीरण के मध्य—

पत्ते पत्ते थिरक रहे थे फूल फूल मुस्काते,
खोल रहे थे अँगड़ाई ले सभी नयन अलसाते।
हृदय-ताल पर उठते गिरते थे हारों के मोती,
अल्हड़ एक बालिका अबभी पड़ी हुई थी सोती।

और इस अल्हड़ बालिका मेहरुन्निसा के बिखरे हुए केश प्रभात-समीर से लहरा लहरा कर खेल रहे थे जो उसकी पुष्प-शय्या की सूखी मुर्झाई कलियों पर लोट लोट कर बल खाते थे।

वातायन से झाँक रही थी झुक झुक ज्योति-कुमारी,
रत्नाभूषण किरण-जाल में फँस सी गई बेचारी।

ज्योतिकुमारी—सूर्यकिरण—झुक झुक कर वातायन से झाँक रही थी और यहाँ आकर मेहर के रत्नाभूषण से निकलती किरणों को जाल में फँस सी गई दीखती थी। रत्नाभूषण की किरणें भी उसे अपनी सहोदरा सूर्यकिरणों सी ही प्रतीत हुईं।

फिर—

एक किरण उड़ते अंचल से आँख-मिचौनी खेली,
खुली हुई आँखों से उसके फिर करती अठखेली।
एक ज़रा धीरे ही धीरे छूकर बदन जगाती,
करवट के लेते ही डर कर बालों में छिप जाती।

इस अवर्णनीय शोभा-सरिता में रह-रहकर छोटी तरंगें उठती थीं। ये तरंगें चल-दुकूल—हिलते हुए वस्त्र—से उत्पन्न हो तरंगित होती थीं। विशाल नेत्रों के ऊपर पड़ीं पलकें ऐसी दीखतीं थीं जैसे समुद्र को ढके हुए गगन हो और सागर तथा आकाश की छोरें सुदूर मिल रही हों। बन्द आँखों पर पड़ी पलकावली की यह उपमा वास्तव में अतीव सुन्दर है—

उस शोभा में चल-दुकूल की उठती रहीं हिलोरें,
दृग-अम्बुधि से मिली हुई थीं पलक-गगन की छोरें।

इन नयनों की विशालता अम्बुधि और गगन की विशालता से उपमित स्वयं तो अनन्त है ही पर इनकी विशालता का अंकन करने वाली इन ऊपर की पंक्तियों की विशालता भी कुछ कम व्यापक नहीं। इस सोते सौन्दर्य के—

पी गुलाब से भरे छलकते गालों के वे प्याले,
नयन किसी के निरख रहे थे हो हो कर मतवाले।

मेहर जाग उठी, उसने वस्त्रों को समेट कर सम्हाल लिया, लज्जा से सन्न हो गई थी—वस्त्र अस्त-व्यस्त पड़े होंगे—उठ बैठी, शब्द खो गए। सलीम ने उसका सोना भंग कर उसे जगा दिया है अतएव क्षमा-याचना करता है। फिर कहता है—

सोओ, सोओ, मैं जाता हूँ निद्रा पूरी कर लो,
यों ही इधर निकल आया था, जाता हूँ मैं घर को।

पर क्या सचमुच सलीम जाना चाहता है? प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में यह घटना किसी-न-किसी रूप में घटती है और वह सलीम के ही स्वर में कहता है—सोओ, सोओ, मैं जाता हूँ निद्रा पूरी कर लो—पर क्या वह वास्तव में जाना चाहता है? चाहेगा? यह पुरुष की उन दुर्ब-

लताओं का एक स्पष्ट उदाहरण है जिसका बारम्बार आचरण करके भी, नित प्रेयसी द्वारा भाँपा जाकर भी वह सदा इसी का आश्रय करता है। कवि उन सार्वजनिक अवस्थाओं का—भावनाओं का—ऐसा पृथक वैयक्तिक वर्णन करता है कि सारा जगत उसे व्यक्तिगत रूप से अपना कह उठता है। मानवी भाव-शृङ्खला—मनोविज्ञान—के व्यक्ती-करण का यही आदर्श रूप है जब मेरेडिथ की भाँति उसे सारा संसार पुकार-पुकार कह उठे—It is you, it is me, it is every one of us. क्या मेहर स्वयं सलीम का जाना पसन्द करेगी? नहीं। वह तो जिस स्वप्न को देख रही थी उसे सलीम को सुनाने के लिए उत्सुक है—

> उसी स्वप्न में थी विभोर मैं तब तक निद्रा टूटी,
>
> लूट रही थी, छूट गई सब, सुख सम्पति यह झूठी।

क्या ही सुन्दर स्वप्न का देश होता है! हृदय की सारी अप्राप्त वासनाएँ सहसा हाथों में आ अंक में नाचने लगती हैं और मनुष्य सुख से अघा जाता है पर शीघ्र, निद्रावसान में, वह झूठी सुख-सम्पत्ति लुट जाती है, हाथों से निकल जाती है और तब दरिद्र मानव हाथ मलता, आँखें मोंचता, उठ बैठता है—फिर वही दुःख और विपत्ति का मारा करुण संसार जिसकी सूखी, कड़ी शिला-भित्तियों पर यदि वह चाहे, अपना सिर दे मारे! कवि की इन लाइनों में ऋषियों के माया रूपी मिथ्या संसार के सिद्धान्तों का संस्मरण है। जीवन कितना शुष्क, कितना नीरस, कितना कठिन है और इस कठिन जीवन की नींव भी किस ओछे, दुर्बल आधार पर खड़ी है जो प्रतिकूल वायु के एक हल्के झोंके से हिलकर इधर-उधर हो जाती है फिर आशा और भौतिक समृद्धि की सारी एकीभूत कल्पना और वास्तविकता एक बार काँपकर समुद्र की उठती ऊँची लहरों पर बुदबुदों की नाईं विलीन हो जाती है। यही है इस मानव जीवन की यथार्थता! स्वप्न की भाँति सुखद और आकर्षक पर स्वप्नान्त में कारुणिक और घृणित! सो मेहर को वह स्वप्न सुनाना है और सलीम को सुनना है। सलीम जानता है मेहर का

स्वप्न और नहीं सलीम स्वयं है और वह उस प्रेयसी के मुख से उसके स्वप्न में अपना अभिनय कितना है—कैसा है—अवश्य जानेगा—

मेहर नहीं मानूँगा मैं तो, बिना सुने हूँ विह्वल,
उस रहस्य के सुनने से बढ़ गया और कौतूहल।

पर इस स्वप्न को भुलाने के अर्थ मेहर का—अथवा कथाभाग में नाट्यप्रभाव के लिए सलीम की उत्सुकता और बढ़ाने के अर्थ कवि का—प्रयास नीची लिखी पंक्तियों में कितना स्वाभाविक, कितना सुन्दर है। प्रसादगुण की अधिकता छलक कर बहने लगती है—

देखो कल जो झूला झूले अब तक बाँह भरी है,
उसी दोल में कली लौंग की मेरी कहीं झरी है।

मेहर सलीम को बड़ा प्यार करती है। उसके प्रेम में बड़ी तेज़ी है और सलीम का बड़ा डर। कहीं वह उसे खो न दे। इस राजप्रासाद के हरम रूपी उपवन में कितनी ही कलियाँ उठ उठ कर फूटती हैं क्या पता कौन इनमें से कब अपनी सुबास से इस गन्धदुर्बल मलिन्द को अपनी ओर खींच ले फिर जमीला सी सहचरी उसकी प्रतिद्वन्द्वी है। इस भय का प्रदर्शन कवि ने बड़ी चतुरता से किया है। मेहर कहती है—

रुष्ट न हो, सुन लो, कहती हूँ—परियाँ उड़ती आईं।

इस लाइन में ही कवि का संकेत है। इस पंक्ति में कितनी तेज़ी है। मेहर उत्सुक है सलीम की इच्छा की अवहेलना से कहीं वह शीघ्र विरक्त न हो उठे और वह झट कह उठती है—

रुष्ट न हो, सुन लो, कहती हूँ—

ध्वनि से खयाल होता है यह प्रतिज्ञा है, मेहर कहेगी अवश्य। पर कब कहेगी इसका कुछ ठीक नहीं। पर सुननेवाले से भी अधिक उतावली होकर सलीम के छिन जाने के भय से उसी पंक्ति में वह कह उठती है—

रुष्ट न हो, सुन लो, कहती हूँ—परियाँ उड़ती आईं,

फिर मेहर का स्वप्न—

मुझे देखकर पड़ी यहाँ पर आपस में मुसकाईं।
बोली एक—'चलो सुरपुर में, तुम्हें बनावें रानी',
कहा दूसरी ने—'मत जाना, होवेगी हैरानी'।
कहा तीसरी ने—'इसको मैं दूँगी देश निकाला',
चौथी ताज दिखाकर बोली—'पहिनोगी तुम बाला ?'
मैंने कहा—'नहीं', फिर भी वे मुकुट पिन्हाने आईं।

× × ×

... फिर उन सबने लिपट चूड़ियाँ तोड़ीं,
याद नहीं पटके से किसके छोरें पट की जोड़ीं।

इस स्वप्न में मेहरुन्निसा के आरम्भ से लेकर नूरजहाँ के अन्त तक की सारी घटनाओं का भविष्यकथन है। कहते हैं कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल की सारी कथा का संकेत उस नाटक के प्रारम्भिक श्लोक में ही कर दिया है फिर भी है वह संदेहजनक है पर इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि 'भक्त' ने अपनी नायिका का सारा भविष्य और अतीत इस स्वप्न में रख दिया है—

'मुझे देखकर पड़ी यहाँ पर'—में निर्देश मेहर के जन्म का है। फूलों के बीच वह जन्म के शीघ्र ही बाद डाल दी गई थी। यह संभव था कि उस निर्जन बन में उसका अंत हो जाय—इसीलिए कवि ने कहा है—'बोली एक चलो सुरपुर में तुम्हें बनावें रानी' में मेहर के 'आज' का वर्णन है—वह सलीम की प्यारी है और सलीम युवराज है, अकबर के बाद वह भारत का सम्राट होगा। 'कहा दूसरी ने मत जाना होवेगी हैरानी'। फिर जीवन का दुर्भाग्य से संघर्ष आरम्भ होता है और तीसरी परी कह उठती है—अरे इसे रानी कौन बनाएगा ?—'इसको मैं दूगी देश-निकाला'—यह तीसरी परी जमीला का रूप धारण कर अपने वाक्य को चरितार्थ करती है। चौथी राजमुकुट दिखा कर पूछती है—'पहिनोगी तुम बाला ?' यहीं मेहर की परीक्षा है—सलीम रात्रि में करवाल लिए शेर अफ़ग़ान को मारने और मेहर को अपनाने मेहर के शयन-कक्ष में आता है और उस अँधेरे में इस चौथी परी के

हाथों का राजमुकुट एक बार स्पष्ट झलक उठता है पर प्रशान्त मेहर बलपूर्वक 'नहीं' कह उठती है। फिर इस राजमुकुट की झलक के बाद कवि की इङ्गित मेहर के रँडापे की ओर है—'फिर उन सब ने लिपट चूड़ियाँ तोड़ीं'। और तब—'याद नहीं पटके से किसके छोरें पट की जोड़ीं'। कवि, जो अभी से सुदूर धुँधले भविष्य में झाँककर संकेत मात्र कर रहा है, आगे चल कर बताएगा कि मेहर के 'पट की छोरों' से जहाँगीर का 'पटका' जुड़ रहा है। परियाँ मेहर के भाग्य की रेखाएँ हैं जो चमकती भी हैं, धुँधली भी होती हैं। शेक्सपीयर ने भी Macbeth में अपने नायक के भाग्य का संकेत इन्हीं परियों—Witches—से कराया था। इस स्वप्न की भीषणता कवि ने स्वप्न कहते कहते मेहर को मिथ्या चौंका कर दिखाई है। मेहर कहती है—'वह देखो दिखलाई देती है किसकी परछाईं ?' फिर 'नहीं कोई है' कहला कर कवि ने उसके हृदय की अशांति प्रकटित कर दी। बाद में इस कथा की भयंकरता से मेहर को बचाने के लिए कवि ने मेहर के मुख में—"अब्बा ने आवाज़ लगाई, सुन लूँ, 'आई ! आई !'"—रख कर स्वयं कह दिया—'चली गई वह पिता पास गिरती पड़ती घबराई।' स्वयं सलीम ने भी बहुत अंशों में इस स्वप्न का भाव समझ लिया और इसी कारण बिना कुछ बोले चाले—

चलता हुआ सलीम वहाँ से चुपके से उठ करके,
पैर नहीं आगे बढ़ते थे भारी मन मन भर के।

सलीम के सुख के आकाश में दूर घने बादल उमड़ रहे थे।

आठवाँ सर्ग

आठवाँ सर्ग मेहर के विवाह का सर्ग है। विवाह जो आनन्द और सुख का स्रोत खोल देता है मेहर के लिए दुःख का सोता है। आरम्भ में ही जमीला मेहर को गा-गाकर विवाह की बधाई दे रही है। मेहर भी उसे मजाक समझ कर उसी पद में दुहरा कर उसके ही विवाह की बधाई गाती है। उसे क्या पता कि उसके दाम्पत्य-जीवन की चादर चतुर अकबर अपने ही हाथों बुन रहा है। जमीला गाती है—

आया फिर बसन्त उपवन में गाओ, गाओ, गाओ,
मेरी ही वीणा के स्वर में अपनी तान मिलाओ।

सुमन सुमन तुम मादकता में मधुशाला बन जाओ,
रसिक-मधुप को प्याले भर भर सुरभित सुरा पिलाओ।
हँसी होंठ पर नाच रही है कलिकाओ मुस्काओ,
सुमन-मँजीरे पर, पत्ते, हँस हँस के ताल बजाओ।
सरसों! पहन बसंती, हिलमिल, विलस विलस खिल जाना,
पंचम, हाँ, पंचम के स्वर में कोकिल उठे तराना।
गन्ने के रस को सुगन्ध से मलयानिल है माता,
है रसाल बौरा बौरा कर मटर से आँख लड़ाता।

अलि! हम भी मिल झूमर खेलें आओ, आओ, आओ,
आया फिर बसन्त उपवन में गाओ, गाओ, गाओ।

जिनके प्याले मधुप-अधर ने किए नहीं हैं जूठे,
नहीं पान कर पाए दिनकर रस के स्रोत अनूठे।
घूँघट-पंखड़ियों में लिपटी है सुगंधि सुकुमारी,
नहीं अनिल पर निकल सकी है जिसकी अभी सवारी।
जिसका पीत पराग न उड़कर आँखों में सोया है,
जो न कभी अलि के वियोग से रजनी में रोया है।
बीच बीच में पिरो पिरो कर मुक्तावलि-सुख-सपने,
गूथूँगी इनको मैं आशा के तारों में अपने।

फूल नहीं ऐसी कोरी कलियों की डाली लाओ,
आया फिर बसन्त उपवन में गाओ, गाओ, गाओ।
तितली संग नाचती मैं भी आई, आई, आई,
होवे मेहर निकाह मुबारक तुमको लाख बधाई।
यह अपनी माला प्रियतम के उर में अब मेलोगी,
मुझको छोड़ उन्हीं के सँग में लिपट लिपट खेलोगी।
यह अपना उपहार उन्हीं को हँस हँस करके देना,
हो कर हार गले का उनके अधरों का रस लेना।
लो सुहागरात में मन भर कर लेना रँगरलियाँ,
वहीं खिला लेना अपनी तुम ये आशा की कलियाँ।
पंचम के स्वर में हाँ गावेंगे सब लोग लुगाई,
होवे मेहर निकाह मुबारक तुमको लाख बधाई।
मैं अपने हाथों से तेरी कुंतलराशि सँवारूँ,
मोती से मैं माँग सजा कर तुझपर माणिक वारूँ।
मेंहदी से हाथों पैरों को लाल लाल तू कर ले,
अपनी आँखों के प्यालों से माकदता तू भर ले।
इन अधरों पर चढ़ी हुई हो मधुर पान की लाली,
यौवन उठ उठ देख रहा हो तेरी छटा निराली।
तू दुलहिन बन खिली हुई हो करके प्रेम सगाई,
होवे ब्याह मुबारक तुमको गावें सभी बधाई।
"कैसा ब्याह? ब्याह किसका! तू करने चली ठिठोली,
देख जमीला हमजोली हो बोल रही है बोली।
कितने ही तेरे पैरों पर फूल चढ़ाने आते,
कितने ही तेरे वियोग में घुल घुल मरते जाते।
उनसे ही प्रस्ताव ब्याह का जाकर, सखी, सुनाना,
फिर सोहाग की रात मना कर मिल मिल मज़े उड़ाना।
देखो, सखी, भूल मत जाना करके प्रेम सगाई,
मेरा नहीं, ब्याह तेरा है, तुझको लाख बधाई।"

इस गान के दो भाग हैं। प्रथम भाग में जमीला की व्यंगभरी भावी व्याह की बधाई है जिसके भाव को मेहर बिलकुल ही न समझकर साधारण मज़ाक़ समझती है और हँसी में वह उसी मज़ाक़ को जमीला के ऊपर फेर उसे बधाई देती है। उसे क्या पता कि अदृष्ट जमीला की जिह्वा पर बैठकर मेहर का वह भविष्य कथन कर रहा है जो अकबर पूर्व ही सोचकर स्थिर चुका है और जिसका उपक्रम शीघ्र ही होनेवाला है। जब इतना खुलकर कहने पर भी जमीला अपने शब्दों का यथेच्छ प्रभाव होता न देख क्रोध से लाल हो जाती है और अबतक की बनावटी हँसी उसके मुख-मण्डल से अगोचर हो जाती है तब तमतमा कर वह कह उठती है—

ऐसी भोली बन जाएगी साफ़ दूध की धोई,
तेरी थाह नहीं पा सकता मुझे छोड़ कर कोई।

जमीला के मुख से मेहर का दुर्भाग्य बोल रहा है—

सीखो अभी समझती सब हूँ सबका छक्का-पंजा,
निकल न पाया जिसपर मैंने कस है दिया शिकंजा।

शिकंजा भाग्य का है यह जिसपर भी पड़ा वह मसल गया। जमीला कहती जाती है—

अलीकुली उस सैनिक के सँग तू बाँधी जाएगी,
क्या सलीम, उसकी परछाहीं देख नहीं पाएगी।

सैकड़ों बिच्छुओं के डंक की भाँति चोट करनेवाली बातें सुनाकर जमीला उनका प्रभाव मेहर के ऊपर देखने लगी। मेहर ने सबसे प्रथम आज सविस्तार सुना कि उसका विवाह अलीकुली के साथ होना स्थिर हो चुका है। इसकी चोट और सलीम का अभाव उसके जीवन में बारम्बार खटकेगा परन्तु वह भी हिम्मत न हारेगी और दुश्मन को अपनी कमज़ोरी पर हँसने का मौक़ा न देगी। दृढ़ता पूर्वक कह उठती है—

हटो मिटाए नहीं मिटेगी यह भावी की रेखा,

देखूँगी आगे जो होगा, इधर बहुत है देखा।

परिणाम स्वरूप—

"अच्छा" कह कर पैर पकड़ती 'छू' हो गई जमीला,
मेहर वहीं रह गई सोचती, मुँह हो आया पीला।

अचानक मुँह से निकल पड़ा—

यह क्या हुआ अचानक मुझ पर बिजली टूट गिरी जो
यह क्या हुआ अचानक मेरी क़िस्मत आज फिरी जो।
किसने पर्वत की चोटी से मुझको आज गिराया?
आँखों के सम्मुख मेरे है अंधकार अब छाया।
भाग्यचक्र क्या यही कहाता? भावी नियति यही है?
क्या इन सबकी क्रूर चाल का कोई घटक नहीं है?
क्या वह जो तारों को अपने नियमित पथ पर रखता,
क्या वह जो ग्रह की चालों की गति है सदा निरखता,
वह जो मर्यादा के बाहर उदधि न जाने देता,
वह जो नभसागर में विधिवत रवि-शशि-नौका खेता,
वह जिसके बाँधे विधान पर षट्ऋतु आते जाते,
वह जिसके आकाश-यंत्र पर वीणा-स्वर उपजाते,
वह जिसके तालों में लय हो सरिता कल कल करती,
जिसकी शोभा को पा करके धरा फूलती रहती,
वह जिसकी आँखों के तारों की दीपावलि जलती,
अगणित सूर्य्य और शशि में है जिसकी ज्योति निकलती,
वह जिसकी निर्भय हो माला गिरि है फेरा करता,
वह जिसके दर्शन का भूखा अनिल झूमता फिरता,
वह जिसने रच ठीक किए हैं ब्रह्मांडों के चक्कर,
उसने ही क्या नहीं लिखे हैं इस ललाट के अक्षर?
जो सबको है मार्ग बताता छिप कर बैठे बैठे,
भाग्यचक्र की क्रूर चाल पर क्योंकर कान न ऐंठे?
मेरी ही क़िस्मत टेढ़ी हो वह न सँवारे उसको,

उलटा चला ज़माना मुझसे वह न सुधारे उसको,
न्यायी है वह, फिर ऐसी अनरीति देख क्यों पड़ती ?
कभी कभी उसकी कठोरता है आँखों में गड़ती।
सागर को खारा कर छोड़ा प्यासी दुनियाँ तरसे,
जल में जल की वर्षा होती मरु में मेह न बरसे।
रश्मिजाल सँग छाया है उजियाला में अँधियाला,
आँसू खारा करते रहते मधुर हास्य का प्याला।
नई जवानी फूलों से विकसित यौवन जब लाती,
श्वेत केश जर जर पंजर में झुक तब जरा डराती।
छलक रही है किसी गाल से स्वास्थ्य-सुरा की लाली,
है कराहती कहीं खाट पर रोग पिशाची काली।
दिन के पीछे रात लगी है सुख को शूल दिया है,
काँटों की है बाढ़ लगा दी जिसने फूल दिया है।
तब क्या जीवन के पक्षी के सुख दुख दोनों हैं पर ?
क्या बहती है जीवन-सरि इन दो कूलों से होकर ?
यदि काया का धर्म यही है तो चुपचाप सहूँगी,
जैसे भी रक्खेगा मालिक वैसे पड़ी रहूँगी।

मेहर की आशाएँ उसकी आकांक्षाओं को ऊँचे आकाश पर चढ़ाए हुए थीं पर आज उसकी क़िस्मत पर अकस्मात् बिजली टूट पड़ी। सारी आशायों पर तुषार पड़ गया। यही 'भाग्यचक्र' है, यही 'भावी' है, यही 'नियति' है। पर इन सब की क्रूर चाल का वह 'घटक' है जिसके ये सब केवल साधन मात्र हैं। तारों को नियमित पथ पर रखनेवाला, मर्यादा के भीतर उदधि को बहानेवाला वरुण यदि अपनी आँखें क्षण-भर मीच ले तो ग्रहों और तारों के लड़ने से विश्व चकनाचूर हो जाय और समुद्र उमड़कर पृथ्वी को सराबोर कर दे। वरुण के भी परे उसकी गति की भी संचालन करनेवाले आदि कारण ने ही, जिसके नेत्रस्वरूप अनन्त सूर्य और चन्द्रमा अनन्त सूर्यमण्डल में चमक रहे हैं, क्या मेरे ललाट के भी अक्षर नहीं लिखे ? पर आश्चर्य है सबके पीछे बैठा

वह नियन्ता भाग्यचक्र की क्रूर चाल का संचालन क्यों नहीं करता? सारा ज़माना मुझ अबला के विरुद्ध जा रहा है फिर भी इस अनरीति को न सँवारनेवाला वह नियन्ता कैसा न्यायी है? मेहर, उसी का नाम लेकर चोर चोरी करता है, डाकू डाका डालता है, राजा राज्य करता है, ग़रीब भूखा सो जाता है, अमीर गले से प्याले उतारता है, गुंडा छुरा भोंकता है और भला कराह कर मर जाता है! न्यायी है अथवा अन्यायी? इसका उत्तर शायद कवि की आँखें अमीरज़ादे ग़यास के जुआ और शिराज़भरे प्यालों में ढूँढ़े। पर होनहार, तू ठीक सोचती है, होकर ही रहेगी। तू स्वयं उचित ही सोचती है दुनियाँ धूपछाँह है—कहीं सुख कहीं दुख—

रश्मिजाल सँग छाया है उजियाले में अँधियाला,
आँसू खारा करते रहते मुधुर हास्य का प्याला।

यह संसार का नियम सा हुआ दीखता है। विकसित यौवन के ऊपर जब नई जवानी अँगड़ा अँगड़ा कर बल खाती है, नाज़ और गर्व से फूल फूलकर इठलाती है और जब इसके नशे में उसके 'दिन ऐश के घड़ियों में गुज़र जाते हैं', तब जरा शीघ्र अपने श्वेत केश वाले जरजर पंजर में उसको घेर लेती है। जब स्वस्थ गालों से गुलाबी रंग जैसे टपकने लगता है उसी समय रोग स्वास्थ्य को दबा कर अपना पीला रंग उस पर चढ़ा देता है—

दिन के पीछे रात लगी है सुख को शूल दिया है,
काँटों की है बाढ़ लगा दी जिसने फूल दिया है।

इस प्रसंग में सुख के साथ दुख, धूप के साथ छाया और दिन के साथ रात का निरन्तर आगमन देख मेहर को इस जीवन की प्रगति का सच्चा स्वभाव झलक जाता है और वह पूछ उठती है—

तब क्या जीवन के पक्षी के सुख दुख दोनों हैं पर?
क्या बहती है जीवन-सरि इन दो कूलों से होकर?

यदि शकुन्तला के प्रेम का दण्ड त्याग होता तो सारा जग दुःख से चीत्कार कर उठता और शकुन्तला की वेदना, जगत की सहानुभूति

और ऋषिकुमारों के अमोघ शाप दुष्यन्त के राजत्व और कालिदास की अधूरी कला में आग लगा कर उनको भस्म कर डालते परन्तु कला-धुरीण कालिदास ने कुछ अद्भुत, अपूर्व साधनों से दुष्यन्त और अपनी दोनों की रक्षा कर ली। दुर्वासा के शाप और अंगूठी ने शकुन्तला के दुःखों का प्रजनन मानवी सत्ता के बाहर कर दिया और शकुन्तला के साथ हस्तिनापुर में प्रवेश करते हुए ऋषिकुमारों के मुख में वे शब्द रख दिए जिनसे आगे आनेवाले भारी दुःख की मात्रा कम हो गई। शाङ्गर्रव कहता है—

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरहो
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव॥

शारद्वत जैसे पहले से ही तैयार बैठा है, शाङ्गर्रव का कथन समाप्त होते ही वह कह उठता है—

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि॥

इन साधनों की प्रचुरता से ही आगे आनेवाली विपत्ति का सहन करना सम्भव है। इस कलाकुशलता से ही कालिदास ने कठिन समीक्षकों द्वारा अपनी रक्षा कर ली। कवि 'भक्त' के समक्ष भी वही समस्या थी और उसने भी मेहर के मुख में उचित वक्तव्य रख कर अपनी कला की रक्षा कर ली वरन् शुद्ध प्रेम करनेवाली मेहर को दण्ड दिलाकर कवि ही क्योंकर अछूता रहता? इस जगत की वास्तविकता पर स्वयं मेहर जो प्रकाश डालती है वही प्रकाश उसको अँधेरे में राह दिखाता है। ऊँचनीच, व्यवस्था अव्यवस्था देख, विचार कर वह अन्त में पूछ उठती है—

तब क्या जीवन के पक्षी के सुख दुख दोनों हैं पर?
क्या बहती है जीवन-सरि इन दो कूलों से होकर?

यह वह स्वयं स्वीकार करती है और सारे दुखों को सहन करने

की शक्ति प्रदान करनेवाले 'आत्मसमर्पण' का आश्रय ग्रहण करती है। कवि का हिन्दुत्व सहसा जाग उठता है और वह पूर्ण आत्मसमर्पण के शब्दों में गा उठता है—

> यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
> यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥—

की निष्ठा से—

> यदि काया का धर्म यही है तो चुपचाप सहूँगी,
> जैसे भी रक्खेगा मालिक वैसे पड़ी रहूँगी।

इस अवस्था की कल्पना करके यह वक्तव्य करनेवाली मेहर दुःख के झंझावात में पड़कर भी उसका भले प्रकार सहन कर लेगी। अपने दुःख और सुख की प्रगति को उसने नियति की राह पर—'मालिक' की इच्छा पर—छोड़ दिया। यदि शरीर का यही धर्म है, यदि सारा जगत् इसी भाग्यचक्र की धुरा में पिसता कभी ऊपर कभी नीचे आता है तो वह भी उसमें पिसेगी। स्वयं उसके शरीर का संचालन—अपनी मनोवृत्तियों का नियन्त्रण—जब उसके हाथ में नहीं तो वह किस बल पर भाग्यचक्र को चुनौती दे? साधारण मानव की भाँति वह भी अपनी जीवन-नौका अनन्त स्रोत में डालकर आत्मसमर्पण कर देगी, भाग्यचक्र पर अपने को छोड़कर अलग हो जायगी। यदि सलीम उसके हाथों से जाता है तो जाए, कोई उसे उसके हृदय से नहीं छीन सकता। यदि अलीकुली से ही उसका निकाह होगा तो हो कोई उसको उसके हृदय में नहीं बैठा सकता वह फिर भी साध्वी सती का भरसक आचरण करेगी—फिर आगे क्या होगा कौन जाने? जब माँ-बाप की आशारूपी दीपशिखा भभक भभक कर बुझने का सारा सामान कर चुकी थी उस निराशा में उसका जन्म हुआ, मरुस्थल में जहाँ छोड़ी हुई उसकी मृत्यु निश्चित थी फिर जिस भाग्यचक्र ने आज उसमें आकाश के तारे सलीम तक हाथ बढ़ाने की उच्चाकांक्षा उत्पन्न कर दी, यदि वही अब अलीकुली के साथ बाँध रहा है तो बाँधे। क्या वही

फिर कभी इस नौका को स्वप्न के देश में नहीं पहुँचा देगा ?

× × × ×

मेहरुन्निसा का विवाह अलीकुली के साथ हो गया और वह वीर-रमणी अपने हृदय को दबाए पति के घर चली गई। इस विवाह के उपलक्ष में—

सरिता के अंचल में बालू कण कण पर मणिदीपक बाल,
संध्या सोना लुटा लुटा कर लाई है माणिक का थाल।

पर कोई मेहर से पूछे उसके अन्तर में कितने आदित्यों की दाह है।

नवाँ सर्ग

रात्रि निशाचरों की है। साधारण भौतिक मानव के कार्य सूर्य के प्रकाश में, दिन के उजाले में, सम्पन्न होते हैं। रात्रि का अन्धकार उनकी सहायता करती है जो दिन में अपने कार्यों के कारण भयान्वित और लज्जित रहते हैं। शेक्सपीयर का मैक्बेथ अपने राजा की घृणित हत्या अपनी स्त्री की सहायता से रात्रि में ही करता है। रहस्यमय सारे कार्यों को रात्रि अपनी काली दूषित चादर में ढक लेती है। तस्कर-पाटच्चरों की सहायिका रजनी खूनी दस्युओं के निमित्त पूजार्हा देवी बन जाती है। पर खून और स्याही से रँगी इसकी चादर निश्चय ही भलेमानसों के लिए श्मशान का चीवर है। अस्तु,

जब कवि की लेखनी 'नूरजहाँ' के नवें सर्ग में अपने कथा-प्रसंग का प्रारम्भ रात्रि की नीरवता में करती है सहसा हृदय में भय और आशंका का जन्म हो आता है। नवें सर्ग की कथा आधी रात में सूचि-भेद्य अन्धकार में आरम्भ होती है—

> अर्धनिशा में घोर निबिड़तम घेरे था पृथ्वीतल,
>
> अन्धकार ही अन्धकार दिखलाई देता केवल।

इस घने अन्धकार में किस रहस्य का भेदन करने कवि हमें लिए जाता है? समय भयानक है, रात्रि अँधेरी—वह भी निशीथ! आकाश के दीपक—तारे—बादलों में छिप गए हैं वरन् कदाचित् ये 'अपर लोक-वासियों' के 'दृग-तारे' भावी घटना की भयंकरता कुछ कम करने में सहायक होते। पर यहाँ तो निशीथ का समय और उस पर बदली, फिर समय समय पर बिजली का अचानक कौंध जाना। समय की भयंकरता और रात का अँधेरा बिजली चमक चमक कर और भी स्पष्ट कर रही थी मानो स्वयं अँधेरा चमक कर दृष्टिगोचर हो रहा हो।

> हरियाली उट्ठी ऊपर ही मिलने वारिदमाला,
>
> पुलकित हो वारिद ने उसके कर में निज कर डाला।

नव लतिकाएँ थिरक थिरक कर लगीं नाच दिखलाने,
घन, दामिनि सँग, ताल बजा कर लगा रंग बरसाने।

अभिसार का अनुकूल समय है। अभिसारिका-हरियाली उठ उठ कर वारिद-जारों से मिल रही है। वह घन, जो 'मोर नचाता, नदी बहाता, शोर मचाता, आता' है, आज इस घने अन्धकार को और भी घना करता हुआ 'पृथ्वी को छू छू लेता, पर्वत पर घिर जाता'। शराबी और कामी जनों की एक अलग ही जाति होती है--प्रसन्न, मिलनसार और अत्यन्त भावुक। उनके अंग अंग में समवेदना रहती है, सो कवि की उत्प्रेक्षा में वह घन—

कहता जले न कोई, सबकी होवे शीतल छाती,
दामिनि मुझको, लतिका तरु को, रहे सदा लिपटाती।

इस भयंकर वातावरण में कवि किस कहानी को गाँठ सुलझा रहा है? किस अभागे मानव के अन्तर्जगत का कोलाहल यह बाह्य जगत के आँधी-पानी व्यक्त कर रहे हैं? आशीर्वादात्मक मंगल से सनी कवि की लाइन—

दामिनि मुझको, लतिका तरु को, रहे सदा लिपटाती—

में उस कथा की ओर इशारा है जिसकी छोर किसी अभागे मनुष्य के उत्तप्त हृदय के कोने-कोने में पैठ-पैठकर उसके रिक्त मानस में वह ठेस प्रसव कर रही होगी जिसकी पीड़ा इस लोक का समान रूप से अभिशाप और आनन्द है। अद्भुत नाटकीय श्रृंखला की पहली कड़ी की भाँति कवि की अगली पंक्ति कह उठती है—

पर पतंगिनी नहीं मानती, स्नेह-चिता जब जागी,
जीवनदीप दिया कर ठंडा सह न सकी विरहागी।

कवि ने सहसा इस सार्वभौम नीरव-बाह्य में एक सदन-गह्वर ढूँढ निकाला जहाँ इस प्रकृति के ताण्डव से भटका मनुष्य आश्रय ले सके। पर यहाँ तो अन्तर बाहर सर्वत्र धाँय धाँय जल रहा है—उर अंतर धुँधुआय। यथार्थ ही इस अलक्ष्य-अन्तर का लक्ष्य-बाह्य पूर्ण प्रतिबिम्ब है। एक श्रीमान के प्रासाद में अभी तक दिया जल रहा है और बाहर

की ज़मीन तर होने के कारण अगणित सपक्षकीट उड़-उड़कर कक्ष के भीतर प्रवेश करते हैं और अपने जीवन का जलते चिराग़ पर होम कर देते हैं—

पर पतंगिनी नहीं मानती, स्नेहचिता जब जागी,
जीवनदीप दिया कर ठंडा, सह न सकी विरहागी।

'प्रत्यासन्ने नभसि' जीमूत का दर्शन कर कालिदास का हृदय सुदूर काश्मीर में वास करनेवाले प्रियजनों का स्मरण कर चीत्कार कर उठा था—

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
संदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।

संतप्तों का शरण मेघ अवश्य है, प्रोषितपतिकाओं का यह मित्र उनके जीवनसर्वस्व को लौटा लाता है। और

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेतजायां—

भी ठीक ही है परन्तु 'पराधीन वृत्ति' जनों की क्या दशा होती है और विशेषकर जब घन अपनी प्रेयसी चपला को अंक में चमकाता हुआ आकर मंगलवाद करे तो उन विरहविधुर और विरहविधुराओं पर कैसी बीतेगी जिनका न तो कोई समावर्तन है और न किसी अवधि की समाप्तिप्रतीक्षा? फिर तो विरहविधुरा अवश्य रो उठेगी—

विरह अनल तन तूल समीरा, श्वास जरइ छिन माहिं शरीरा।

और इस पर भी जिसको अपने प्रणयी के पौरुष का गर्व नहीं वह 'नयन स्रवहिं जल निज हित लागी, जरै न पाव लागि विरहागी' का भी पाठ नहीं करतीं वरन् पतंगिनी की भाँति जब स्नेह-चिता पर चढ़ जाती हैं फिर तो—

जीवन-दीप दिया कर ठंडा, सह न सकी विरहागी।

पतंगिनी नहीं मानती। स्नेह-चिता जब जाग उठती है—तेल के सुयोग से जब चिता धधक उठती है, प्रेम की अग्नि से प्रज्वलित शरीर-पंजर जब सचमुच चिता सा तप्त हो जल उठता है—तब जीवन-प्रदीप

क्यों न ठंढा हो जाय ? विरहाग्नि का निवारण करने में कौन समर्थ है ? उस भयकारिका घटना की प्रस्तावना कवि की इन पंक्तियों में है जिसका उद्घाटन शायद इस अँधेरी निशीथ में हो—

पर पतंगिनी नहीं मानती स्नेह-चिता जब जागी।
जीवन-दीप दिया कर ठंढा, सह न सकी विरहागी ॥

'स्नेह-चिता का जाग उठना' और 'जीवन-दीप का ठंढा कर देना' कितने सुन्दर मुहावरे हैं जिनका कवि ने प्रयोग किया है।

यह पतंगिनी—

पंख लगा कर अगम पंथ में मानों नव अभिलाषा।
नवजीवन के सुख-सोहाग की मन में लिए पिपासा ॥
उड़ी अभी दो-चार हाथ थी प्रेम-ज्योति देखी जो।
गई वार मोहित-सो होकर तन-मन की सुध-बुध खो ॥
हँसते हँसते स्नेहानल में हुई एक मिल मिल कर।
बिखरे पड़े अभी तक उसके हैं आशाओं के पर ॥
पवन उन्हीं से खेल रहा है ले जा नीचे ऊपर।
भस्म आँख में डाल रहा है पड़ी हुई जो भू पर ॥

यह कवि किसकी ओर इशारा कर रहा है ? क्या सचमुच ही यह प्रकृति-प्रणयी 'भक्त' पतंगिनी की ही असामयिक मृत्यु पर आँसू गिरा रहा है ? क्या सचमुच हो यह पतंगिनी ही नई अभिलाषाओं के साथ पंख लगा कर नए जीवन की सोहागरात की पिपासा मन में लिए अनजाने पंथ में प्रेम-ज्योति देखकर अभी दो-चार ही हाथ उड़ी थी और तन-मन की सुध-बुध खोकर, मुग्ध हो, हँसते हँसते स्नेहानल में मिलकर उसमें भस्म हो गई ? क्या उसी की आशाओं के पंख अभी तक बिखरे पड़े हैं जिनके कणों को उड़ा उड़ाकर पवन खेल रहा है ?

सही। इन पंक्तियों में श्लेष की सृष्टि कर इनकी ओट में कवि अवश्य ही किसी मानवी हृदय की ओर इंगित कर रहा है। और इन पतंगिनियों का प्रेमानुराग से जलना कोई और भी तन्मय हो, रात आँखों में काट काटकर, देख रहा है—

देख रहे थे नयन किसी के निशि में थे जो जागे।
कैसे हँस हँस कर जलते हैं हृदय प्रेम-अनुरागे॥

इन नयनोंवाले हृदय में भी क्यों इस प्राणोत्सर्ग (Martyrdom) की प्रतिध्वनि उठती है ?

दृग-मृग चंचल रहे चौकड़ी भरते नभ से भू तक।
निद्रा, हरियाली दिखलाकर हारी, सकी न छू तक॥
फँसे न पलकों के फन्दे में जो रजनी ने डाले।
मन से होड़ लगा कर उड़ते रहे नयन मतवाले॥

रात की जागती आँखें चिन्तित हृदय के साथ होड़ कर कर उड़ रही थीं—फड़क रही थीं।

हत्याकांड, प्राण की आहुति, कठिन प्रेम की लीला—क्या रमणी-हृदय देख सकता है ?

सका न अधिक देख रमणी का कोमल हृदय रसीला।

सामने बलिदान ने हृदय में उथल-पुथल मचा दी—त्याग और सहिष्णुता ने भीतर प्रतिध्वनि उठा दी—

किसी सोच में हो विभोर साँसें कुछ ठंढी खींचीं।
फिर झट गुल कर दिया दिया को दोनों आँखें मींचीं॥

रमणी भी किसी सोच के वशीभूत हो ठंढी साँस ले रही है। अर्ध-रात्रि की नीरवता में भी जिसकी आँखें न लग सकी हों उसका हृदय अवश्य किसी अव्यवस्था का शिकार होगा। रमणी की कोमल मुख-कान्ति अकारण ही मलिन नहीं पड़ती। आखिर किस चिन्ता से विभोर यह तरुणी आहें भर रही है ? सामने त्याग और बलिदान का जो उसने अनन्त आदर्श देखा, उसका हृदय आन्दोलित हो उठा। उसकी स्पर्धा-शक्ति ही सम्भव है उसे कुछ कोसने-सी लगी हो। ऐसे समय में अपनी ही उपस्थिति अपने को धिक्कारती प्रतीत होती है। इस दशा में ही पड़ी इस रमणी ने शायद अपनी इयत्ता भी भुला देने के लिए, अपनी प्रति-च्छाया को भी आँखों से ओझल कर देने और सामने के आदर्श को परे कर देने के अर्थ—'झट गुल कर दिया दिया को'। परन्तु दिन के उजेले

में न रहकर रात के प्रकाश मनुष्य को उसकी स्थिति का बोध कराते हैं और रात्रि के दीपकों के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर भी अपना अह-र्निश जागरूक मन ही शरीर की ओर जैसे देखने लगता है। इस अव-स्था का भी भरसक अन्त करने के लिए यह रमणी दीपक को झट गुल करके फिर अपनी दोनों आँखें भी मींच लेती है। मानों वह रात्रि के अँधेरे में भी देख सकती हो। भीषण एकाकीपन बड़ा खलता है। इस एकान्त की सत्ता और चोट का बोध कराने के लिए कोई Robert Louis Stevenson का *Markheim* पढ़े। एकान्त का एक एक प्रसंग जैसे शरीर धारण कर घूरा करता है—फिर यहाँ तो नक़ाब डाले सचमुच ही कोई रात के अँधेरे में अपना मतलब साधनेवाला खड़ा है। यका-यक मेहर चमक उठी और तलवार खींचकर

बढ़ती हुई, तड़पकर बोली, "ठहर! कौन? क्यों आया?
कर दूँगी तलवार पार मैं पग जो एक बढ़ाया॥"

पर मेहर किसपर वार करने को आमादा है? अपने प्यारे सलीम पर!

'खोल नक़ाब कहा सलीम हूँ, मेहर मुझे मत रोको।
'शेर' मारकर बनें अकंटक, करो मदद मत रोको॥

सलीम शेर अफ़ग़ान को अँधेरी रात में मारकर मेहर तक पहुँचने का अपना मार्ग निष्कंटक कर लेगा। वह उसका महज़ रोकना ही नहीं मना करता, वरन् उससे मदद भी माँगता है। मेहर साधारण स्त्री नहीं है। सलीम उसे प्यारा है अवश्य, पर चोर सलीम नहीं, हत्यारा सलीम नहीं। राज्य उसके लिए प्रलोभन नहीं है। सलीम प्यारा अवश्य है, पर मेहर का गर्वीला स्त्रीत्व उससे भी अधिक प्यारा है। इसकी रक्षा यह औरों से उसके लिए ही करती पर इसी की रक्षा अब वह शेर अफ़ग़ान के लिए अँधेरी रात में सलीम से भी करेगी।

"कौन? कौन? क्या तू सलीम है? क्या सलीम शहज़ादा?
पर-घर जाकर तस्कर बनकर? ऐसा नीच इरादा?

मेरा तो विश्वास और था धोखा मैंने खाया।
जाओ अभी निकल जाओ तुम, पग जो एक बढ़ाया।"

उसका विश्वास था कि सलीम गर्वीला राजपूत होगा। आज उसे उसके इस तस्कर-आचरण से घृणा हो रही है। यदि वह बिना ब्याही होती वह सलीम की थी, सलीम उसका था पर अब शादी के बाद और तो और उसका प्यारा स्वयं सलीम पराया है, जिसकी भर्त्सना से वह नहीं चूकती—

पर-नारी के घर में घुसना पति का खून बहाने।
फिर भी अपने को सलीम कह आया मुँह दिखलाने॥
रुको नहीं, उलटे पाँवों तुम फ़ौरन वापस जाओ।
होकर कौन! चले क्या करने? ज़रा शर्म तो खाओ!!

वह आशा करती थी, सलीम अबलाओं का रक्षक होगा। वह युवराज है, उसे शाहंशाह होना है और वह राज्य की ललनाओं का सहायक, उनका रक्षक होगा। आज मेहर अन्य नागरिक की पत्नी और उसके भावी, तथा उसके पिता के वर्तमान, साम्राज्य की प्रजा है। उसके पति को मारकर अगर सलीम उसे छीन ले, सो भी दबे पाँवों आकर, अँधेरी रात में, शेर अफ़ग़न का खून करके, तब तो वह अपनी प्रजा के स्वत्वों की रक्षा कर चुका और मुंसिफ हो चुका। क्या यह वही सलीम है जो भविष्य में जहाँगीर होकर समुद्र पार Great Moghal कहलाया और जिससे इंसाफ़ पाने के लिए उसके बनवाए घंटे को गूँगे पशु, गाय-बैल तक, बजाकर उसके न्यायालय में प्रवेश पाते थे? सम्भव है, इसी चोट ने उसके विचारों में आगे होनेवाले परिवर्तन के बीज बो दिए हों!

सलीम के पाँव-तले से ज़मीन सरक जाती है। वह घबड़ा कर मेहर की चाल से चकित हो जाता है और अनायास नीचे लिखे शब्द उसके मुख से निकल पड़ते हैं—

मेहर! मेहर! तुम क्या कहती हो मैं हो गया पराया?
मेरी भावी सम्राज्ञी ने किसको है अपनाया?

क्या चुम्बन के, इन अधरों पर, नहीं लगे हैं ताले ?
वही अधर हैं हुए आज यों मुझे रोकनेवाले ॥
जो मेरी आँखों में रहती वही आँख दिखलावे।
जो कल संग हवा खाती थी आज हवा बतलावे ॥
अपना ही साम्राज्य, उसी में घुसने तलक न पाऊँ ।
मेरी वस्तु और ले जावे मैं तकता रह जाऊँ ॥
मैं ही खुद यों लूटा जाऊँ, मुझको कहो लुटेरा ।
मुझको ही तुम चोर बनाओ, हृदय चुराकर मेरा ॥
क्यों आवाज़ लगाओगी हाज़िर हूँ बन्दी कर लो ।
जंजीरों का कौन काम है, मंजु अंक में भर लो ॥
पर अफ़ग़न को दिखला दो तुम उसे ख़त्म तो कर लूँ ।
उसके बाद कहोगी जो कुछ करने को हाज़िर हूँ ॥

सलीम चकित है। उसी के बाप के साम्राज्य में कोई उसके हाथ रोके, उसकी समझ में नहीं आता और यह अजब पहेली है, जो अभी कल की उसकी प्रेयसी थी केवल कुछ आयतों के उच्चारण से और की हो जाए, उसी को वह पराया बताए और वह मुँह ताके ! उसका दावा उसे उच्छृंखल नहीं प्रतीत होता, पर मेहर सामान्य स्त्री नहीं है जो अकबर सरीखे सम्राट् के पुत्र और उसके भावी उत्तराधिकारी के अंक की इच्छा करती है, जो राजपूत-रमणी जोधाबाई के तनय की कामना करती है और स्वयं जो गयास की 'बेग़म' सरीखी मनस्विनी की एकमात्र कन्या है उसका यह असाधारण रूप अभी तक सलीम ने नहीं देखा—

बालकपन से पूछो जाकर उच्छृंखलता सारी।
सुमन-विकास, मधुर अलिगुंजन, मुक्ताओं की क्यारी ॥
ऊषा निज अंचल में भरकर चलती हुई बेचारी ।
जबसे उस विवाह-दिनकर की निकली इधर सवारी ॥

मेहर सलीम को ललकार उठती है। दूसरों के घर में जाकर उनकी पत्नियों से ही उनके पतियों को मारने का प्रस्ताव करना क्या साधारण

उच्छृंखलता है ? पर इसका उत्तर वह स्वयं देती है—अपनी उच्छृंखलता अपने बचपन से पूछो। यदि तुम्हारी इस उच्छृंखलता का जनक तुम्हारा बालकपन न होता तो तुम एक अक्षम्य अपराध के अपराधी होते। कहती है—जब से विवाह हुआ है, प्रेम के वे पचड़े धुँधले पड़ गए हैं। मेहर अब एक साध्वी परपत्नी है और जिस प्रकार सूर्य के आगमन से ऊषा चल देती है उसी प्रकार विवाह के फलस्वरूप—

सुमन-विकास, मधुर अलिगुंजन मुक्ताओं की क्यारी।
ऊषा निज अंचल में भरकर चलती हुई बेचारी॥

वास्तव में कितनी विकट ललकार है—

बालकपन से पूछो जाकर उच्छृंखलता सारी—

मेहर किसी राजपूत-ललना—पद्मिनी अथवा तारा—से कम नहीं। उसकी ज़बान नहीं रुकती—

आज सलीम ! बात करते हो जिससे, पर-नारी है।
जो अपने कर्तव्य - धर्म पर तन-मन-धन हारी है॥
इससे तुमको उचित नहीं है, सोचो, अधिक ठहरना।
और किसी की पत्नी से यों बहकी बातें करना॥

यकायक इस विचार पर कि कहीं सलीम उसकी सीख को कमज़ोरी समझ उससे फ़ायदा उठाने का प्रयत्न न करे, मेहर के मुँह से उन पंक्तियों का उद्गार निकल पड़ा जिनकी समता साहित्य में कठिनता से मिलेगी और जिसको पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं—

नहीं यहाँ साम्राज्य तुम्हारा, मेरा पावन घर है।
इसकी दीवारों के भीतर दम्पति-धर्म अमर है॥

इन शब्दों की पावनता नस-नस में व्याप्त हो जाती है और मेहर की आवाज़ प्रतिध्वनि उठाती हुई तड़प उठती है—

नहीं तुम्हारा राज्य चाहती, अपने घर की रानी।

... ...

है वह कौन मेरे जीते जो उन पर हाथ लगावे ?

... ...

दोनों में से एक यहाँ पर पहले सो जावेगा।
तब ही बाल एक भी बाँका उनका हो पावेगा॥

... ...

राह लीजिए घर की अपने, जाने इसे न कोई।
क्षण भर भी जो और रुके तो अपनी इज़्ज़त खोई॥
विनय मानते हो चुपके से या आवाज़ लगाऊँ?
या हो रक्त देखना ही तो अपने हाथ दिखाऊँ?

अपनी साधारण बुद्धि द्वारा न समझा जाने योग्य मेहर का असाधारण तेज और उसकी अजीब चाल देख सलीम स्वभावतः ही कह उठता है—

ओ पाषाण-हृदय! बस-बस, अब जाता हूँ मैं जाता।
क्या सचमुच तू वही मेहर है? समझ नहीं कुछ आता॥

... ...

अन्तिम विदा! चूक सब मेरी करना क्षमा दया कर।
रमणी क्या रहस्य है? भगवन्! सोचूँगा घर जाकर॥

'रमणी क्या रहस्य है' इसे किसने जाना, जो भोले सलीम तू जानेगा?—घर जाकर सोच। *Women in Rigveda* की भूमिका में बी० एन० मेहता लिखते हैं—"...The woman has been described in folk-songs as an 'enigma'. Some sing of her as a labyrinth......to the seers 3500 years ago she was the same 'eternal question' as now and in the words of the Gujerat Moralist Akho 'no philosopher has yet lived who died after understanding the ever changing phenomenon—Woman'." फिर सलीम की क्या बिसात?

सलीम चला जाता है। उसने हाल ही कहा है—

कल जो प्यार मुझे करती थी आज वही दुत्कारे!
आज तलक थे कोमल नाते रौंदे क्षण में सारे!

पर सलीम भूलता है। मेहर ने बड़ी वीरता से उसका सामना किया जिसने उसके पावन दाम्पत्य धर्म को कलुषित करना चाहा, पर क्या सचमुच ही वह अपने हृदय की पावनता सुरक्षित रख सकी? सम्भव है अपने चित्त की दुर्बलता क्षणमात्र के लिए दबाकर मनुष्य अपने भावों को धिक्कार सके, पर क्या जिसकी एकमात्र मूर्ति वर्षों हृदय में स्थापित कर रखी हो, साथ साथ प्रेम की साधना में विभोर घूमते रहे हों, उसको सदा के लिए कोई भूल जाए यह सम्भव है? मानव-मनोवृत्तियों के पारखी सुकवि 'भक्त' ने उन त्रुटियों का पूरा वर्णन किया है जिनमें उलझना ही मनुष्यता है। सलीम के चले जाने पर मेहर का क्या हाल है?—

मेहर जमी रह गई वहीं पर हिली न बोली-चाली।
मौन मूर्ति बन गई लिए कर में करवाल निराली॥
ज्यों ही हुआ, सलीम निकलकर, अन्धकार से बाहर।
छूट गई तलवार हाथ से, गिरी अचेत धरा पर॥

काश! सलीम यहाँ होता! वह अपनी ही उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती देख चकित हो फिर फिर कह उठता—

रमणी क्या रहस्य है? भगवन्! सोचूँगा घर जाकर।

———

दसवाँ सर्ग

दसवाँ सर्ग करुणा (Pathos) और काव्य के विचार से इस महाकाव्य की पराकाष्ठा (Climax) है। यह मेहर के हृदय का दर्पणस्वरूप है और इसका एक-एक अक्षर पाठक के हृदय में अगणित चोटें करता है। मेहर जिस माँ की कोख से प्रादुर्भूत हुई है अपने भावों में भी उस 'बेगम' की बहुत कुछ अनुगामिनी है और उसी की भाँति आगरा छोड़ते दुखी होती है, पर छोड़ेगी। उन सारी व्यथाओं को बर्दाश्त करेगी जो प्रियजनों और विशेषकर इष्ट-प्रिय के वियोग में होती हैं। बेगम के ईरान और मेहर के आगरा छोड़ने में बड़ा अन्तर है। बेगम के जीवन का दिन समाप्त हो रहा है और सन्ध्या का आगमन है, पर मेहर के यौवन का अभी सबेरा है। इसी समय वह अपने सारे सुकोमल नाते, सारी भावनाएँ, सुखद स्मृतियाँ कुचलकर दफ़नाकर चली जा रही है। कोई पास भी नहीं जिससे दिल खोलकर, रो रो कर अपना दुःख कुछ हल्का करे। और यदि कोई होता तब भी क्या वह उससे कहती ? क्या कहती ? यह भी किसी से कहने की चीज है और सो भी विवाहिता पत्नी के हृदय का भेद ?

मेहर के हृदय के टुकड़े टुकड़े हुए जाते हैं। उसके उद्गार का एक-एक शब्द करुण काव्य का आदर्श उपस्थित करता है। इस 'विदा' के कारुणिक गान की समता संसार के साहित्य में कहाँ खोजी जाय ? इसके एक एक कम्पन में हृदय के दबे अछूते भाव, प्यार और प्रणय की कामनाएँ, रूप धारण कर सामने खड़ी हो जाती हैं। हृदय से सैकड़ों करुण धाराएँ निकल निकल कर शरीर को सराबोर कर देती हैं। मेहर के इस रुदन के समक्ष लिथुऐनिया (Lithuania) का सारा

'रौदस' साहित्य करुणा की दृष्टि से देखने पर फीका पड़ जाता है। कल्पना करो, उस कोमल रमणी-बाल-हृदय के तरंगित, करुण, सुकोमल प्यारे उन भावों की, जिनको नवयौवना ने बड़ी साध के साथ जन्माया है और जो ठीक फूलने के समय ही मूर्ख माली की कर्तरिका के तीक्ष्ण आघात से क्षत-विक्षत हो टूक टूक हो जाते हैं। इन साधों को किस प्रकार मेहर ने अपने हृदय में अंकुरित कर धीरे धीरे बढ़ाया था और किस प्रकार उसके यौवन-वसंत के आगमन के भी पूर्व उन पर तुषारपात हो गया। उसकी कामनाओं का एक-एक रहस्य, एक-एक अवयव इन पंक्तियों में निहित है—

ओ स्वप्नों के संसार विदा, ओ बालकपन के प्यार विदा।
ओ शोभा के आगार विदा, मनमोहन की मनुहार विदा॥
यमुना के कलकल नाद विदा, आँखों का वह उन्माद विदा।
आमोदों के प्रासाद विदा, वह जीवन का आह्लाद विदा॥
उस मधुर कल्पना-शिखरी के महलों का मायाजाल विदा।
उस मेरे हृदय-सरोवर के ओ सुन्दर सुखद मराल विदा॥
कौमार्य-कली की कलित कामनाओं के मौन विकास विदा।
वह दिनकर-संगम से प्राची में ऊषा का मृदुहास विदा॥
ओ अनिल-नींव पर बने हुए अभिलाषाओं के कोट विदा।
ओ क्रूर काल के कठिन करों के अंतस्तल की चोट विदा॥
हिमसरिता में बहते विलास-विनिमय-सुख के हिमखंड विदा।
आकांक्षाओं के झंझा के झकझोर झपेट प्रचंड विदा॥
चिरपरिचित हृदय देश अपनाने का वह विजयोल्लास विदा।
उस प्यारे शिशु के गिर गिर पैरों चलने का अभ्यास विदा॥
जिसमें मैं गुड़ियों से खेली मेरी ममता के गेह विदा।
जिन आँखों की मैं पुतली थी उन सुहृदजनों के स्नेह विदा॥
जिसमें मैं हंस पकड़ती थी वह जलक्रीड़ा की नहर विदा।
वह सुन्दर सुन्दर राजभवन वह महामनोरम शहर विदा॥
जिसमें झूला झूला करती उस तरु की सुन्दर डाल विदा।

जो दोलित करते पेंग बढ़ा वे कोमल बाहु विशाल बिदा ।।
आनंद-अश्रु जो फैलाता वह जीवन का वर स्रोत विदा ।
अवलम्ब रहा जो जलप्लावित का वह आशा का पोत विदा ।।
वह इन्द्रधनुष-सा शुभ्र विरहवारिधि का सुन्दर सेतु विदा ।
उस करवट ले ले सोनेवाले मंदभाग्य की याद विदा ।।
वह छिप छिपकर उठनेवाली मन की आनंद - हिंलोर विदा ।
मेरे मानस में बन्दी होनेवाले ओ चितचोर विदा ।।
प्यारे दामन की पट्टी से बाँधी चोटों की टीस विदा ।
उस मरु - प्रदेश में खोई सरिताधारा के वारीश विदा ।
जो नहीं आ सके पुनः बाग में मेरे विहग - वसंत विदा ।
घेरे घेरे जो फिरता था मुझको ओ दिव्य दिगंत विदा ।।
वह क्रीड़ा में कपोत के उड़ने पर कुछ खिंची कमान विदा ।
जिसको पी पीकर मस्त हुई मैं वह मादक मुस्कान विदा ।।
मोहन-मंत्रों से अंकित उन अलभ्य अधरों की छाप विदा ।
उन कुंजों के एकान्तवास के अभिनय प्रेमालाप विदा ।।
उस मेरी स्वप्न-कहानी पर उनके विस्मय के रंग विदा ।
अलि-आलिंगन से मुकुल-अधर पर हल्की हास्य-तरंग विदा ।।
कुंतल में कलियाँ गूँथ गूँथ कर करनेवाले प्यार विदा ।
उपहार हार मेरे उर का वह यौवन का श्रृंगार विदा ।।
छू नहीं सकूँगी तुमको अब मेरे भविष्य के चाँद विदा ।
सब तार नियति ने तोड़े हैं मोदक सरोद के नाद विदा ।।
लंगर खींचे, सब पाल खुले, जाता विदेश जलयान विदा ।
हृदयाम्बुधि के उर्मिल थपेड़ तट ले जाते नहिं मान विदा ।।
विस्मृति - सागर में डुबा रही हूँ हठ कर आती याद विदा ।
वह लहरों-सी उठ आती है इंगित से बुला सनाद विदा ।।
वे हिचकी बनकर आते हैं आँसू बनकर हो गए विदा ।
वे पीड़ा बनकर उठते हैं किस्मत बनकर हो गए विदा ।।
स्वच्छन्द विहग की सदा अपरिमित ऊँची सुखद उड़ान विदा ।

नैराश्य - निशा के कभी न होनेवाले सुखद विहान विदा ।।
नव-तरल-तरंग-तड़ित बहती तरनी के परिचित कूल विदा ।
प्रतिकूल-प्रवाह - प्रगति - नौका के पूर्व पवन अनुकूल विदा ।।
ओ भ्रान्ति विदा ओ शान्ति विदा ओ अपनी भोली भूल विदा ।
ओ मेरी मुरझाई आशाओं की समाधि के फूल विदा ।।

भग्न हृदय आज कराहता है और कोई उसे सान्त्वना देनेवाला भी पास नहीं । मेहर अपने स्वप्नों के संसार से विदा ले रही है । दिन भर वह सलीम के साथ कभी बाग में, कभी राजप्रसाद के अज्ञात कोनों में छिप छिपकर खेलती थी फिर रात्रि में सोने पर स्वप्नों को बाढ़-सी आ जाती थी—सुन्दर, मनोहर, सुखद, प्यारे स्वप्न, जिनके मध्य वह उस अप्राप्य को प्राप्त करती थी, जो सदा औरों के लिए आकाश का चाँद था । वह उस सलीम के संयोग से बने संसार—एक दूर की अपनी बनाई दुनिया—की झाँकी लिया करती थी । अपने स्वप्नों के उस काल्पनिक संसार से, जिसका वस्तुतः निर्माण के पूर्व ही दीप-निर्वाण हो गया, विदा ले रही है । प्रौढ़ प्यार सोचता है, विचारता है, रुकता है और लौट जाता है, बचपन का प्यार अंधा होता है, ठुमकता, चलता और दौड़ पड़ता है । 'बालकपन के प्यार' का रहस्य, उसका मधुर रस, मेहर ने चखा था । हंसों को साथ साथ पकड़ा था, गुड़ियों से खेला था, उनको भी प्यार किया था, पर यह प्यार अनोखा था, गुड़ियों से निराला और हंस से बढ़कर । 'उस बालकपन के प्यार' से, अब विदा ! शोभा की आभा कुछ बाहर की होती है कुछ भीतर की । बाहरी शोभा आकर आँखों में चोट करती है । आँखें बंद हो जाती हैं और भीतर ही भीतर कुछ गुनती हैं, फिर बाहरी शोभा में बहुत-कुछ जोड़कर, त्रुटियों को सँभालकर, सुधारकर, कुछ काट-छाँटकर, एक सुखद मनोहर शोभा का सृष्टि करती हैं जिसका दर्शन कमनीय और स्पर्श स्पृहणीय होता है, जिसकी प्राप्ति और रक्षा मनुष्य तड़प-तड़पकर, दूसरों के प्रति घृणा और भय से करता है । उस शोभा के आगार सलीम से आज विदा ! मान की कल्पना केवल यौवनसम्पन्ना तरुणी और प्रौढ़ा हो

नहीं करतीं बल्कि इसका आरम्भ बहुत पहले बचपन के 'मचलने' में ही होता है। इसीलिए शायर दिल को बच्चा और नादान कहकर बोल उठा—

तिफ्ले दिल नादाँ है मचल जाएगा,
इससे कुछ बात बना लूँ तो चल जाएगा।

सो इस बालकपन के प्यार में भी मचलना होता है, मान होता है और उस मान का भंजन भी होता है जो किसी मनमोहन द्वारा ही सम्पन्न होता है। रूठी मेहर सलीम की सतत मनुहार से मानती है और वारंवार अतीत से की गई 'मनुहारें' आज अंतस्तल पर चोट कर रही हैं सो उनसे भी विदा! जब आगरे के सुन्दर संगमरमर के प्रासाद में सलीम अपने एकान्तवास में मेहर के चिन्तन में मग्न होता था, मेहर भी जब धीरे धीरे आकर अपने सुमधुर कंठ से उसका सम्बोधन करती थी, यमुना की सुखस्पर्श छोटी लहरियाँ उस प्रासाद की बाह्यभित्ति से टकरा टकराकर कलकल शब्दों से मानों किंकिणी का योग दे देकर उसे शब्दसंगीतपूर्ण करती थीं, अब यमुना के उस कल कल नाद से विदा! वह आमोदों का प्रासाद कल ही शेर अफ़ग़ान के योग से और सलीम के वियोग से वीरान हो गया, वह प्रासाद जिसके कक्ष कक्ष में घुसकर, आँखमिचौनी खेल खेलकर, दोनों बड़े हुए थे, जिसकी दीवारें आज भी उनकी एकान्त की सुनी और कही बातों का ब्यौरा रखती हैं, जो उनके एक एक रहस्य का साक्षी है वही प्रासाद आज अदृश्य हो रहा है, और अब शीघ्र उसकी छाया भी अस्पर्श्य हो जाएगी। सम्भव था, सलीम के संयोग से यह सम्राट-सदन अपना होता, पर आज यह ग़ैर का महल अपने को क्यों रोके, फिर भी प्रारम्भिक जीवन की अनोखी अनेक घटनाओं के घटनास्थल के रूप में उसे भी छोड़ना आज असह्य प्रतीत होता है और मेहर उससे भी विदा चाहती है। उठता जीवन साधें लेकर उठता है, गिरता जीवन उन्हें लिए दिए उन्हीं के भार से बैठ जाता है। जीवन साधें ले ले कर जब उठता है, उनका अंकन करता है, भावी कल्पनाओं की प्रासंगिक मधुरिमा का निरंतर

दर्शन करता है, तब हृदय आह्लाद से थिरक उठता है। इस आह्लाद की बड़ी महिमा है सारी आशाओं के पोत इसी के किनारे लगते हैं, फिर जब हृदय के भीतर उठनेवाले आह्लाद का आधारस्वरूप हृदय ही छिन गया तब उसकी क्या स्थिति, सो उससे भी विदा! अज्ञात-यौवना मेहर राजप्रासाद के भीतर जा जाकर सलीम का वैभव, उसका शृंगार, उसका रूप, उसका तेज निरखती, फिर उससे खेल खेल, हँस हँस, रो रो, मचल मचल घर को लौट पड़ती; फिर जाती, फिर लौटती। अब ज्ञातयौवना, मुग्धा मेहर उसी सलीम का वही वैभव, वही शृंगार, वही रूप, वही तेज निरखती, पर खेल खेल कर, हँस हँस, रो रो, मचल मचल कर घर न लौटती, वरन् निरख निरख कर पागल हो जाती, अनन्त सुखी अनिर्दिष्ट मुद्रा में चित्रांकिता-सी हो बेसुध हो जाती और फिर उसके हृदय-नेत्रों में उन स्वप्नों का स्रोत उमड़ पड़ता जो जागते, अर्धविक्षिप्त जनों पर आक्रमण करते हैं और जिनकी सत्ता संदिग्ध मानता हुआ भी मनुष्य उनको सेता और बढ़ाता है। इस कल्पना-संसार का शिल्पी कौन है, कौन जाने? कल्पना-शिल्पी बहुत ही सुन्दर होता है। उसका निर्मित संसार चाहे कितना भी क्षणिक क्यों न हो, पर होता है अत्यन्त मधुर और अतीव सुन्दर। हृदय में भरी साधें उठ उठकर कल्पना के संसार रचती थीं और मेहर तन्मय हो उनका दिन-रात दर्शन करती थी, अघाती नहीं थी, उन्हीं कल्पनाओं की वारंवार, फिर फिर, सृष्टि करती थी। उसे क्या पता था कि कल्पना-शिल्पी चतुर तो बहुत होता है, जभी तो बिना नींव के ही अट्टालिकाएँ खड़ी कर देता है, परन्तु उसका सारा प्रयास मृगतृष्णा है और मनुष्य को तृषित मृग की भाँति मरीचिका की ओर दौड़ा देता है। कल्पित, अस्तित्व न रखनेवाले माया के मिथ्या महलों का निर्माण करता है। सो यौवन की कल्पना द्वारा उठाए महलों को आज मेहर ने देखा, वे आगरे के प्रासाद की भाँति सच्चे ठोस नहीं, वरन् ऐसे हवाई हैं जो छूने के लिए हाथ बढ़ाने पर पीछे हटते जाते हैं। पहले मनुष्य उनकी ओर हँसता हुआ बढ़ता है, फिर चाल सन्दिग्ध हो तेज़ करता है और

अन्त में प्रबल वेग से क्रोधपूर्वक दौड़ पड़ता है, पर वह तब भी उस तक पहुँच नहीं सकता और वह अछूती दीवार अनन्त काल तक व्यापक आकाश में पीछे हटती ही जाती है। सो मेहर के सम्मुख जो चतुर कल्पना-शिल्पी द्वारा उठाया महल खड़ा उसके प्रवेश की राह देखता प्रतीत होता था आज सहसा 'माया-जाल' सिद्ध हुआ और वह चीख पड़ी—

उस मधुर कल्पना-शिल्पी के महलों का मायाजाल विदा।

और उस सत्यशील अपने हृदय-सरोवर में विचरनेवाले हंस सलीम को जो एकमात्र अपना समझती थी वह भी काल्पनिक क्षणिक सुख निकला और आज उस मानस-मराल से भी वह अन्तिम विदा लेती है। आज तक मेहर ने अपने प्यार की बात किसी से—यहाँ तक कि सलीम से भी—नहीं कही थी। क्षेत्र में बीज पड़ा, पौधा अंकुरित हो कर बढ़ा, उसमें कली लगी और उसका भी विकास प्रारम्भ हुआ। वह खिली नहीं—शायद कोई असमय तोड़ ले—धीरे धीरे बिना बोले बढ़ती रही। मेहर जी-जान से सलीम को प्यार करती थी पर कहे किससे? अव्वल तो उसका कहना ही किसी से असम्भव था, फिर जब इतर लोग भी उसी पर लट्टू थे तब उनसे कहकर उनके क्रोध का शिकार क्यों हो? सलीम को कुछ तो हृदय से, कुछ वासना से, कुछ ऐश्वर्य के अर्थ प्यार करती थीं सो किससे वह अपने हृदय की कथा कहे? सलीम से कह सकती थी पर लज्जावश वह उससे भी नहीं कह सकी। कहती भी क्या—यह क्या कहने की चीज़ है? और क्या सलीम स्वयं उसके दर्द को नहीं जानता था? स्वयं उसका शिकार नहीं था? इस कारण मेहर की प्रेमरूपिणी कली अनजानी, धीरे धीरे बढ़ती रही और उसकी कलियायी कामनाओं का, क्वाँरी कली का, 'मौन विकास' ही होता रहा। पर सहसा इस बढ़ती हुई कली पर वज्रपात हो गया और वह जल मरी। मेहर ने अभिलाषाओं का कोट बना रखा था, पर था उसका अवलम्ब केवल 'अनिल-नींव'! भला यह कब तक ठहरता और सो भी क्रूर काल की प्रबल चोटों के सम्मुख?

यह क्रूर काल द्वारा फेंकी गई प्रबल शक्ति की चोट थी जो सदा ठीक समय पर, मनुष्य के कल्पित संसार को हस्तगत करने के समय ही फिर कर उसे लड़खड़ा देती है। कितने ही यज्ञशील राजा, तपशील ब्रह्मर्षि, अपने सौवें यज्ञ और अन्तिम समाधि के समय ही इस क्रूर काल-चक्र में पिसकर हाथों के पास पहुँचे इन्द्रत्व को खो बैठे। अपराजित जगद्विजयी सिकन्दर अपने विजय-मद में चूर लौट रहा था। इस विजय के आनन्द में अभूतपूर्व समारोह से बेबिलन महोत्सव के निमित्त सज रहा था, पर उसके पूर्व ही सूसा और एकबताना के महलों में अग्नि का ताण्डव करानेवाले उस सिकन्दर के प्राण-पखेरू उसके जीवन के भरे वसन्त में ही क्रूर-काल की थपेड़ से उड़ गए। भारतीय ज्ञान का सूर्य आन्वीक्षिकी विद्या में आसमुद्रक्षितीश शंकर असमय में ही—ठीक मध्याह्न में ही—सहसा अस्त हो गया। सेनाओं का वह अद्भुत नायक नेपोलियन सारे यूरोप में अपनी युद्ध-चतुरता और प्रबल-शक्ति की सत्ता जमाकर उसके पार्थिव सुख-भोग के बहुत पूर्व ही काल की चोट से चल बसा और अभी हाल के ही बिस्मार्क और विलहेम का सँवारा संसार के विजय की कामना करनेवाला कैसर आज एक कण का भी स्वामी नहीं है! मेहर की कामनाओं का मौन विकास भी उसी क्रूर काल की मार्मिक चोट से टूक-टूक हो गया और वह रो उठी—

ओ क्रूरकाल के कठिन करों के अंतस्तल की चोट विदा।

हिमसरिता का प्रणयी हिमखंड है और हिम-सरिता के हिम से हिमखंड का प्रादुर्भाव, फिर हिमखंड का पिघलकर हिम-सरिता का अवयव हो उसमें खो जाना ही दोनों का 'विलास-विनिमय' है। मेहर उस 'हिम-खंड' सलीम से विदा लेती है! और विदा लेती है वह उन 'आकांक्षाओं के झंझावात के झकझोर और प्रचंड झपेटों' से जिन्होंने उसके सुषुप्त सर में आँधी उठा दी थी। अब मेहर समझदार हो चुकी थी, वह समझती थी सलीम को पाना क्या है, किस महत्त्व का है और उसके साथ ही प्राप्त होनेवाले इतर ऐश्वर्य क्या हैं। उसे अपने प्रतिद्वन्द्वियों की भी खबर थी और जमीला से तो उसकी तीखी भिड़न्त ही थी।

यदि वह हृदय-देश जो उसके लिए 'चिर-परिचित' था—परन्तु जैसा 'चिर-परिचित' शब्द के प्रयोग से इशारा मिलता है डाँवाँडोल अस्थिर अवश्य था—मेहर अपना सकती तो उसकी विजय-श्री अभूत-पूर्व होती और वह स्वयं अपनी विजय से उल्लसित हो उठती परन्तु अब तो यह केवल एक अन्तरंग अस्पष्ट अलभ्य कामना ही होकर रही इस हेतु इस काल्पनिक विजयोल्लास से भी विदा ! अभी मेहर के प्यार का बचपन था। अभी तो उसने उसकी केवल गुदगुदी अनुभव की थी। हाल ही उसका 'बालकपन थककर सोया' था और 'यौवन ने शीश उठाया' था। अब वह बातें समझने लगी थी। प्यार करना, जानबूझ कर, उसने अभी आरम्भ किया था इसीलिए कवि ने उसके प्यार को 'शिशु' कहा है। शैशव में बालक अपने बल पर खड़ा होना आरम्भ करता है—अपने पैरों चलना सीखता है—और बारंबार गिरकर भी चलने का अभ्यास करता है। सो मेहर भी इस अपने प्रेम के शैशव 'में गिर गिर पैरों चलने का अभ्यास' कर रही थी—अभी तो इब्तदा है—'आगे आगे देखिए होता है क्या' ? अभी मेहर किसी बुजुर्ग के स्वर में स्वर मिलाकर नहीं यह सकती—

जो जाकर न आए वो जवानी देखी,
जो आकर न जाए वो बुढ़ापा देखा।

इस बालकपन के प्यार में ही उसे ऐसा जान पड़ता है वारा-न्यारा हो गया। इसी उमर में उसने सब सह लिया। अरे, अवसान तो स्वाभाविक है और मृत्यु प्राकृतिक धर्म है—मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः—फिर भी अवसान और मृत्यु का उचित स्थान सदा शैशव, यौवन, प्रौढ़त्व और जरा के पश्चात् ही है। सच पूछिए तो—हसरत उन गुंचों पै है जो बिन खिले मुरझा गए ! इसीलिए तो मेहर दर्द से बिलबिला कर रो उठती है—

उस प्यारे शिशु के गिर गिर पैरों चलने का अभ्यास विदा।

फिर—

जिसमें मैं गुड़ियों से खेली मेरी ममता के गेह विदा।
जिन आँखों की मैं पुतली थी उन सुहृदजनों के स्नेह विदः ।।

वह ममता का गेह जिसमें मेहर गुड़ियों से खेल चुकी है उसे विदा दे ! गुड़ियों से खेलना साधारण-सा प्रतीत होता है—और सच ही इसके कौतुक ग़रीबों के झोंपड़ों और सम्राटों के राज-प्रासाद में सभी जगह समान रूप से देखने में आते हैं—पर यह बहुत कुछ सांकेतिक है। गुड़ियों के खेल में विवाह से लेकर, शिशु-जन्म, पोषण, शरीर-गठन, फिर विवाह आदि खेल, गृहस्थ-जीवन का पूर्ण रूप से उद्घाटन हो जाता है फिर इस प्रकार के गृह-जीवन का अन्त बच्चों के पार्थिव 'ममत्व' में क्यों न हो ! 'ममता का गेह' गुड़ियों के खेल के बाहर भी मेहर और सलीम के वक्ष में एक-दूसरे के लिए बन चुका है। और मेहर फिर उन सुहृदजनों—सलीम—से विदा क्यों न ले जिनकी आँखों की वह पुतली थी, जो बराबर उसी की आँखों देखा करते थे। कभी भूलकर भी जिन्होंने दूसरी दृष्टि से नहीं देखा।

जल-क्रीड़ा करते समय हंसों को पकड़ने जिस नहर में जाते थे वह नहर, जिस प्रासाद में वह नहर स्थित थी वह प्रासाद और परम मनोहर आगरा नगर जिसमें राज-प्रासाद शोभायमान था—सभी इस समय मेहर को विदा करें ! जब जवानी का पानी तन में लहरें मारता है और खुली भूमि अपनी होती है तब उस भूमि का एक एक कण किसी-न-किसी प्रेम-प्रसंग का सहचर, उसका साक्षी होता है और स्वतः स्वभावतः उससे कुछ ममत्व उत्पन्न हो जाता है। राजप्रासाद का विशाल उपवन, जहाँ सलीम और यह ईरान की नशीली युवती संसार को तुच्छ समझ विचरते थे, नन्दन-कानन से कुछ कम न था। उसके भाग्यशाली वृक्ष की डाल में झूला डालकर दोनों झूलते थे। बड़े भाग्य उस डाली के ! कितने ही मनुष्य पुनर्जन्म में इस वृक्ष की डाली होना पसन्द करेंगे। क्यों न हो रसखान भी तो यही मनाया करता था—

मानुस हों तो वही रसखान बसों ब्रजगोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हों तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन ।।

पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरंदर-धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं वही कालिंदी-कूल कदम्ब की डारन ॥

यह सुख क्या कभी मेहर भूल सकती है? इस भूले के सुख पर कितने ही राजमुकुट न्यौछावर हो जाएँ और दोले दोलित करनेवाली उन विशाल बाहुओं की कमनीयता का तो कहना ही क्या? क्या उनकी छाया स्वप्न में भी मेहर स्पर्श कर सकती है? इसलिए उन यशस्वी भुजाओं की स्मृति में वह कह उठती है—

जो दोलित करते पेंग बढ़ा वे कोमल बाहु विशाल विदा ।

दो अलग रह कर भी नित्य मिलनेवाले प्रेमियों के मार्ग में बरसात बड़ी रुकावट होती है और वे उसे कोसा करते हैं। पिता के महलों में रहनेवाली मेहरुन्निसा का सलीम से मिलना भी बरसात में कभी रुक जाता होगा और इससे वह अत्यन्त कष्ट पाती होगी। इस एक दिन के विरह का दुख भी अनन्त सागर-सा लगता होगा फिर पावस के दुर्दिन में जब कभी सूरज चमक कर कोई सुदिन लाता होगा मेहर थिरक उठती होगी और यह सुदिन दुर्दिनों के सुविस्तृत सागर पर सेतु-सा प्रतीत होता होगा। बड़ी ही सुन्दर इन्द्र-धनुष की उपमा का आश्रय लेते हुए कवि ने इस पावस की बदली के दिनों का संकेत किया है। बदली में ही सूर्य की किरणों के मेघ पर पड़ने से उस पर सातों रंगों का प्रतिबिम्ब पड़ता है और इस प्रकार इन्द्र-धनुष की सृष्टि होती है सो कवि ने सूर्य के उपस्थितियुक्त दिन विशेष की इस प्रकार कल्पना की—

वह इन्द्रधनुष सा शुभ्र विरह-वारिधि का सुन्दर सेतु विदा !

फिर इस मिलन की याद से उसका क्षत ताज़ा हो जाता है वह उस मन्दभाग्य को कोस उठती है जो सारी रात उसे करवट ले लेकर सोने को बाध्य करता है—विरह-वारिधि को उत्पन्न करनेवाले मन्द-भाग्य से सचमुच ही क्या सलीम के बिना अकेले घर में, दुर्दिन में, वह करवटें नहीं बदलेगी? मन्द-भाग्य की करवट स्वयं काल का ऊपर-नीचे उठने-गिरनेवाला चक्र है और उसमें आ फँसनेवाला व्यक्ति क्या ग़रीब क्या अमीर, क्या मेहर, क्या सलीम—चाहे जो भी हो पिस ही

जाएगा। सो मन्द-भाग्य की चिरस्थायी स्मृति मेहर के अंग-अंग से मुखरित हो उठती है—

उस करवट ले ले सोनेवाले मंदभाग्य की याद विदा।

समय समय पर औरों की दृष्टि बचा बचा जो आनन्दातिरेक से हँसते थे उस आनन्द की लहर फिर नहीं लौटने की, इसलिए मेहर को वह अब विदा करे और विदा दे उसका वह 'चितचोर' जो स्वयं उसके मानस-कोट में बन्दी है। उसके प्रेम-गठन का एक एक अवयव, इस मार्मिक कथा का एक एक प्रसंग, याद आकर उसके हृदय में चोट कर रहा है। सलीम और मेहर दोनों राजप्रासाद के उपवन में खेल रहे थे। फूल चुनती मेहर की उँगली में गुलाब के काँटे चुभ गए और कुछ बूँद लहू के टपक पड़े। झट अपने अमूल्य दामन का किनारा फाड़कर सलीम ने उसकी उँगली बाँध दी और मेहर के मुख से सहसा निकल पड़ा (छठा सर्ग)—

काँटा लगा दूसरा दिल में दामन के फटते ही।

इसकी याद आते ही वह दर्द से व्याकुल हो गई। इसकी टीस वारंवार रह रह कर उठने लगी—

प्यारे दामन की पट्टी से बाँधी चोटों की टीस विदा।

दर्द कई तरह का होता है, उसमें टीस बड़ी तक़लीफ़ देती है। दाँत का दर्द टीस टीस कर आता है वैसे ही प्रेम का दर्द भी टीस करता है। 'टीस' शब्द का प्रयोग यहाँ बड़ा ही सुन्दर और सार्थक हुआ है। मरुप्रदेश में खोई सरिता का लक्ष्य वारीश उसे कहाँ मिलता है पर मेहर-रूपी सरिता का वारीश सलीम उसे मिल चुका था फिर भी उसने उसे खो दिया। मरुप्रदेश की खोई हुई सरिता-धारा क्या है? मेहर के माता-पिता—बेगम और ग़यास—ईरान से चलकर बीच का सारा मरुप्रदेश पार कर हिन्दुस्तान आए थे। मेहर मरुभूमि में ही प्रसूत होकर दरिद्रता की परेशानी में वहीं छोड़ दी गई थी। माता-पिता के लिए तो वह सच ही मरुभूमि में खोई सरिता-धारा थी। जिस प्रकार पहाड़ों से बहकर आती हुई सरस्वती बालुओं में खोकर फिर कुरुक्षेत्र में आ निकलती है

उसी प्रकार मरुभूमि में खोई मेहर वारीश को ढूँढ़ती हुई आगरे पहुँची और यहाँ सलीम के रूप में उसका वारीश मिला भी पर अभाग्यवश वह फिर खो गया! घेरे घेरे फिरनेवाले सलीम की चिरस्थायी स्मृति क्योंकर भुलाई जाय और वह भी जब उसकी उपस्थिति छाया की भाँति सदा व्यापक ही रहती थी। आकाश की व्यापकता प्रसिद्ध है सो सलीम के उसे घेरे घेरे फिरने की उपमा वह दिव्य दिगन्त से देती है। ठीक ही है संसार में आकाश से व्यापक इतर वस्तु नहीं और सलीम का प्यार सदा उस आकाश की भाँति घेरे रहता था जिससे आज वह विदा चाहती है।

फिर छठे सर्ग में वर्णित उस कथा का स्मरण हो आता है जिसके घटने से सलीम दीवाना होकर मेहर का दास हो गया था। कपोतों का उड़ना और मेहर का फलतः भोलापन से भरा उत्तर सलीम के वक्ष-स्थल में आज भी घाव कर रहे हैं स्वयं मेहर को सलीम का किंचित् भृकुटी-भंग कर उड़े कपोत का पता पूछना याद है—

वह क्रीड़ा में कपोत के उड़ने पर कुछ खिंची कमान विदा।

मेहर को उस प्राथमिक चुम्बन की याद है जिसने दुनिया का एक नवीन ही स्वरूप उसके सम्मुख रख दिया था। सलीम ने मोहन मंत्रों से रिझाकर उसके अधर पर प्रेमांक छाप दिया था। चुम्बन वास्तव में प्रेम-साम्राज्य की मुहर—अंक, शासनांक—है सो अब उस पर पड़ चुकी थी और अब इस सलीम के प्रेमराज्य की प्रजा वह कहीं और क्यों जाए? उस चुम्बन की याद उसे बरबस आती है और याद आती है कुंजों के एकान्तवास की, प्रेमालाप की। अपने स्वप्नों का जब जब वह वर्णन करती थी सलीम की मुखाकृति कई वर्ण धारण करती थी और सातवें सर्ग में वर्णित स्वप्न की याद तो उसे बहुत ही स्पष्ट है, जिसको सुनकर सलीम की मुख-मुद्रा कुछ चकित और गंभीर हो उठी थी। यह वही स्वप्न था जिसकी वास्तविक भावी भीषणता ने उसे आरम्भिक अनुक्रमणी होकर आज की चोट सहन करने में समर्थ बना दिया था। सहसा फिर सलीम की स्मृति सजीव हो उठती है और उस

अपने उर के हार और यौवन के शृंगार से वह विदा माँगने लगती है—

छू नहीं सकूँगी तुमको अब मेरे भविष्य के चाँद विदा।
सब तार नियति ने तोड़े हैं मोदक सरोद के नाद विदा॥

सलीम वास्तव में उसे आकाश का चाँद प्रतीत होता है और उसके सरोद के सारे तार नियति द्वारा तोड़ डाले गए से जान पड़ते हैं। अब तो उसे बंगाल जाना ही होगा, सारे सुखमय प्रसंग, हृदय की घनी स्मृतियाँ स्मृति-पटल से मिटा देनी होंगी पर वह करे क्या, लाचार है—

लंगर खींचे, सब पाल खुले, जाता विदेश जलयान विदा।
हृदयाम्बुधि के उर्मिल थपेड़ तट ले जाते नहिं मान विदा॥

तब पच्छिमी भारत के यात्री बंगाल की यात्रा नौका से ही किया करते थे और कवि ने प्रसंगवश श्लेषात्मिका उक्ति द्वारा उसका भी निर्देश कर दिया है। जीवन-नौका अस्थिर है। उसके प्रस्थान का कुछ ठीक नहीं। लंगर खिच गए और विदेश की यात्रा प्रारम्भ हो गई। सलीम का 'चिर-परिचित हृदय-देश' अब छूट रहा है और अनजाने शेर अफ़ग़ान के हृदय-रूपी विदेश को पयान है। सो अपने हृदय-रूपी जलयान को सब ओर से घुमाकर मेहर वहाँ पहुँचने के लिए सागर के गम्भीर जल की ओर बढ़ाती है। पर हृदय की दुर्बलता समुद्र की उत्ताल तरंगों की भाँति उठ उठकर उसके जलयान को किनारे की ओर ही वारंवार फेंक देती है। देखिए जहाज कहाँ लगता है।

इन्हीं स्मृतियों की याद को लक्ष्य कर मेहर इनसे विदा माँगती है—

विस्मृति - सागर में डुबा रही हूँ, हठ कर आती याद विदा।
वह लहरों-सी उठ आती है इंगित से बुला सनाद विदा॥

वारंवार वह संस्मरणों को भुला रही है पर वे बरबस हठ कर कर उसके ऊपर आक्रमण करते हैं। समुद्र में लहरों की भाँति उठ उठकर वे उसकी हृदय-रूपी नौका को डाँवाँडोल और विपद्-ग्रस्त बना रहे हैं। मेहर इस आपत्तिकाल में चीत्कार-सा कर उठती है—

वे हिचकी बनकर आते हैं आँसू बनकर हो गए विदा।
वे पीड़ा बनकर उठते हैं क़िस्मत बनकर सो गए विदा।

सलीम सशरीर नहीं आता पर हिचकी बनकर हृदय में आता है और आँखों से आँसू बनकर उतर जाता है, पीड़ा बनकर टीस उठता है और 'मन्द-भाग्य', कम्बख्ती की छाया, बनकर सो जाता है। मेहर रो रही है, अतीत के संस्मरण हिचकी, आँसू और पीड़ा के रूप में उठ उठ कर आते हैं पर उसकी वह क़िस्मत जो उनको यहाँ लाती है स्वयं सोई हुई है। मेहर के भाग्य वास्तव में सो रहे हैं। प्रसाद गुण की अलभ्य-रत्नरूपी ये पंक्तियाँ काव्य में अपना बहुत ही ऊँचा स्थान रखेंगी।

अब मेहर बहुत-सा अपना धैर्यबल खो चुकी है और भविष्य को अपने सोए भाग्य पर छोड़ चुकी है। अपने लालायित हृदय और आकांक्षाओं के स्वतंत्र पक्षी की अपरिमित ऊँची उड़ान से विदा लेकर फिर उस बिहान—प्रभात—से विदा लेती है जो उस 'नैराश्य-निशा' के अवसान में आता माना गया है जिसका कभी अन्त ही नहीं होता। अभी उसे उस सुखद अवसर से विदा लेना है जिसने उसे इस क्षणिक पर अत्यधिक आनन्द को भोग करने का अवसर दिया—

> नव-तरल-तरंग-तड़ित बहती तरनी के परिचित कूल विदा।
> प्रतिकूल-प्रवाह - प्रगति - नौका के पूर्व-पवन-अनुकूल विदा॥

उसका प्रेम 'नव-तरल-तरंग-तड़ित बहती तरनी' है जिसका वह स्वयं नया माँझी है और सलीम का हृदय ही जिसकी नदी का 'परिचित कूल' है। यहाँ किसी प्रकार भी, अन्धकार अथवा झंझावात में, नौका के पथभ्रष्ट होने की आशंका नहीं सो उस 'परिचित कूल' से वह सदा के लिए विदा चाहती है। साथ ही वह उस पूर्व अनुकूल पवन से भी विदा माँगती है जो उसे उसके इच्छित पथ पर बढ़ाकर वांछित तीर पर लगा देता था! अब उसकी प्रगति प्रतिकूल प्रवाह और प्रतिकूल पवन को ओर है। साथ ही उसका 'परिचित कूल' अब 'प्रति'—उलटा—'कूल' हो गया है। पता नहीं इस प्रतिकूल प्रगति में पड़कर वह कहाँ जाएगी, कहीं किनारे भी लगेगी अथवा तरंग-मग्न हो जल-समाधि बनाएगी। देखिए!

अन्त में मेहर उन शब्दों से विदा लेती है जिनकी समता करुण-

रस के साहित्य में अनुपम और अपूर्व है। प्रसाद गुण की प्रचुरता से जिसमें से काव्यरस छलका पड़ता है। कैशिकी वृत्ति का आश्रय कर समास-रहित सुन्दर सरल छोटे पदों में होकर मेहर की बची-खुची सारी धीरता बह जाती है। उसके रोम रोम से काँप कर मानों 'विदा' शब्द प्रस्फुटित हो रहा है—

ओ भ्रान्ति विदा ओ शान्ति विदा, ओ अपनी भोली भूल विदा।
ओ मेरी मुरझाई आशाओं की समाधि के फूल विदा॥

अब तक मेहर भ्रम में थी—कल्पना की नींव पर बनी उसकी मनोवांछित अट्टालिका केवल माया-जाल निकली। अब वह इस रहस्य को जान गई है और जान कर ही भ्रान्ति से विदा माँगती है। वह जानती है कि उसका जीवन सलीम के बिना सूना और नीरस हो जाएगा और उसका हृदय अशान्त। अब उसकी शान्ति लुप्त हो चुकी और इस कारण वह शान्ति से भी विदा माँग रही है। वह उस भूल को क्या कहे जिसने उसके सुखमय बाल-जीवन में साधों की आँधी चला दी, प्रेम का संचार करके अमृत के साथ ही विष की घूँट पिला दी। पर फिर भी वह भूल जानी हुई, परची हुई नहीं थी और इस अपनी भूल को इसी से वह स्वयं भूली हुई कहती है। इस 'भोली भूल' से भी वह विदा लेती है जिसने उसकी ज़िन्दगी खाक़ में मिला दी। इस अपने भ्रम और 'भोली भूल' के कारण इस अनजानी दुनिया में शान्ति तक खोकर चोट से जर्जर वह बिलबिला उठती है—

ओ भ्रान्ति विदा ओ शान्ति विदा ओ अपनी भोली भूल विदा।

इस अपनी 'भोली भूल' के फलस्वरूप कितने ही प्राणी आर्त हो कराह रहे हैं। इस 'भोली भूल' पद में कितना व्यापक कितना भोला भाव निहित है। इस पंक्ति में कितनी घनी अमरता है उस दुःख की जो संसार के ऊपर अपने गृद्धपक्ष की छाया सदा फैलाए रखता है। दुःखमयी प्रवृत्ति के वशीभूत हो मेहर अपनी मुरझाई आशाओं की समाधि के फूलों से भी विदा लेती है—

ओ मेरी मुरझाई आशाओं की समाधि के फूल विदा।

'नूरजहाँ' आधुनिक हिन्दी काव्यमाला का निश्चय ही 'नग-तरल' है और यह विदा-प्रसंग उस 'नग' की वह शान्त, सुखद, शीतल ज्योति है जो संसार के प्राणी-प्राणी की भावनाओं में पैठ-पैठ कर अपने प्रकाश से उनका धुँधला पथ आलोकित करती है।

× × × ×

इसके बाद इसी सर्ग में कवि पूर्वबंगाल का वर्णन करता है। उस बंगाल का जिसे उषा की किरणें सर्वप्रथम नहलाती हैं, 'जिसके पग पर अगणित नदियाँ आकर सलिल चढ़ाती हैं', जहाँ रसा के सुन्दर तन पर धान के खेतों की हरी साड़ी लहराती है। जहाँ उँचाई पर साल खड़े हैं और नीचे शालि धानों की क्यारियाँ शोभा पाती हैं। सरोवरों पर नारिकेलों के झुंड खड़े हैं, जहाँ यौवन-कलश के भार से स्वयं दबी ऊपर से कटि पर सजल कलश उठाए बंगालिनें आती जाती हैं—

जहाँ विहरती हैं नितम्बिनी केश-केतु को फहराती।
पान-राग-रंजित होंठों से मंद मंद हैं मुसकाती॥
अथवा जहाँ रसिक बंगाली कोमल स्वर में गाता है।
विह्वल होकर कभी प्रेयसी को वह बीन सुनाता है॥

सुसंस्कृत बंगाली का ललित-कला के प्रति प्रेम कवि को नहीं भूल सका। वास्तव में सामूहिक, व्यक्तिगत अथवा जातीय रूप से सबसे अधिक ललित-कला के सच्चे प्रेमी भारतवर्ष में बंगाली ही हैं। और तब, अकबर के समय में भी, वे ही थे। नीचे कवि ने बंगाल में होनेवाले पक्षियों का वर्णन किया है—

रंग रंग के तोता-मैना जहाँ बिहरते दल के दल।
चातक और चकोर कोकिला, मोर, धनेश, लवा, दहियल॥
सरि के तट पर चाहा, बगुला, मछुआ, सारस, आँजन, ढेंक।
बतें, लालसर, टीका, चकवा विहर रहे हैं विहग अनेक॥

कवि कहता है यह वह बंगाल है—

शंकर-जटा-जाल से गंगा निकली हुई चढ़ी आतीं।
जहाँ ब्रह्मपुत्रा मानस से निकली हुई बढ़ी आतीं॥
जहाँ गले मिल मिल कर फिर दोनों सरिताएँ हुईं निहाल।
बिछ है गया उमड़ कर भू पर अगणित स्नेह-स्रोत का जाल॥

स्नेह-स्रोत से कवि का संकेत गंगा और ब्रह्मपुत्रा दोनों से मिल कर बनाए गए डेल्टा से है। फिर वह आगे गंगा के जल का सुन्दर हृदयग्राही वर्णन करता है—

रज लाई हैं मिला मिला कर जीवन में ब्रजमंडल से।
कृष्णचन्द्र की केलि भूमि से, राधावर के पगतल से॥
रामचन्द्र की अवधपुरी से, ऋषि मुनियों के आश्रम से।
वीरों की बलिदान-भूमि से, ब्रह्मज्ञान के उद्गम से॥
रज—जिसमें विभूतियाँ अगणित मिली हुई हैं सतियों की।
रज—जिसमें समाधियाँ सोईं कितने योगी-यतियों की॥
रज—वह जिसमें रक्त मिला है अमर शहीदों वीरों का।
जो स्वदेश हित हुए निछावर अटल व्रती रणधीरों का॥
रज—जिसको नित किलक किलक कर खाया कुँवर कन्हैया ने।
जिसे निकाला मुख से मोदक खिला यशोदा मैया ने॥
यह पावन रज त्रिभुज अंक में सिंधु-निकट वे भर लेतीं।
उठ उठ कितना जलधि माँगता किन्तु नहीं उसको देतीं॥

यमुना का जल गंगा में आ मिलता है इससे कवि ने गंगा को यमुना के जल का भी धनी कहा है। इस प्रकार गंगा का जल संसार की कितनी ही अप्राप्य अमूल्य विभूतियाँ ला ला कर बंगाल को समर्पण करता है, वह ब्रजमंडल की रज जिसके स्पर्शमात्र से बंगाल को ललित-कलाओं के प्रति नशा-सा हो गया है और जिसे छू छू कर विरक्त वैष्णव चैतन्य आनन्द से सतत नृत्य करता रहा। वह रज जो कृष्ण-चन्द्र की केलि-भूमि—धीर समीरे यमुना तीरे—से, राधा के चरण-कमलों से, पवित्र होती हुई आई है जिसके नशा में परम वैष्णव जयदेव गीतगोविन्द में क्या से क्या लिख जाता है। वह केलि-भूमि-

जिसकी प्रशंसा में भारतीय साहित्य का अधिकांश निर्मित हुआ है। जिस रज को चुरा चुरा कर सूरदास और मीरा के बालकृष्ण मुख में भर लिया करते थे और जिसे यशोदा मीठे मोदक के प्रभोलन से निकाला करती थीं। गंगा अपनी रज सरयू के जल द्वारा—परम पवित्र उस अयोध्या से लाई हैं जहाँ श्रीरामचन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की रक्षा और सामाजिक गृह-धर्म का आदर्श स्वयं दुख झेल झेल कर रखा था। इस रज में काशी-प्रयाग की भी पावन रज सम्मिलित है। गंगा के वक्ष में—उसकी तल-रज में कितनी ही सतियों की विभूतियाँ भस्म के रूप में चितारोहण के पश्चात् आ मिली हैं, कितने ही योगी-यतियों की जीवित समाधि गंगा की पवित्र लहरें हो गई हैं। स्वदेश-हित समर में मरनेवाले कितने ही अमर शहीदों का पावन रक्त गंगा की धारा में मिलकर खो गया है, कितने ही व्रती रणधीरों ने इसमें अन्तिम विश्राम पाया है, कितने ही पंडित जगन्नाथ इसकी पवित्र धारा से धुल-धुलकर पवित्र हो गए हैं, कितने ही घृणित ग्राम-शूकर-पापी डुबकी लगा-लगाकर, दूर से केवल नाम का उच्चारण मात्र करके तर गए हैं और उन्होंने परमगति प्राप्त की है और आज इस घोर भौतिकता के युग में भी प्रतिवर्ष लाखों धर्मशील कुम्भ के अवसर पर इसके जल का स्पर्श कर अक्षय कीर्ति और अनन्त पुण्य का संचय करते हैं। ऐसी पवित्र रज गंगा समुद्र को क्यों दे? वह कितना भी लहरों के बहाने उठ-उठ, गिर-गिर उससे वह रज माँगता है पर वह उसे नहीं देती और उसी से त्रिभुजाकार डेल्टा का निर्माण कर वहीं सारी रज छोड़ समुद्र से जा मिलती है—

> यह पावन रज त्रिभुज-अंक में सिन्धु-निकट वे भर लेतीं।
>
> उठ उठ कितना जलधि माँगता किन्तु नहीं उसको देतीं॥

इस प्यारे, सुन्दर, अनोखे बंग देश में मेहर और उसके नवपति आए हैं—

> प्रकृति नटी का रंगमंच वह, रम्य देश प्यारा बंगाल।
>
> वहाँ पहुँचकर नवदम्पति वह, छटा निरख हो गया निहाल॥

× × × ×

सलीम, प्यार की मार का घायल, आगरे में तड़प-तड़प उठता है। मेहर के आगरा छोड़ने पर उसकी गति शिथिल हो गई है और उसकी मुखकान्ति निस्तेज, निष्प्रभ। दक्षिण पवन मलयानिल का पूर्वाभिमुख प्रवाह देख उसके चित्त में भी कालिदास के यक्ष की भाँति पवन द्वारा मेहर को अपनी तड़पती दशा का विवरण भेजने की प्रबल इच्छा हो आती है और वह उससे संदेश भेजता है। यथार्थ है—

कामार्ता हि-प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।

अर्ध-विक्षिप्त सलीम सन्देह करता है—हे मलय! यदि तू पूर्व दिशा को भी जाता है तो जा, मेरा सन्देश वहन कर पर देख हल्के, दबे पाँव जाना, कहीं—

सुरभि-सुन्दरो-सुमन-सेज पर सोई जग न जाय निर्दय!

तू तो जिलानेवाला है अपने मन्द प्रवाहित प्राणों से तू अन्य निर्जीवों में प्राण फूँकता है फिर—

विरह-सिन्धु के मन्द सलिल में प्रिय अभिलाषा का जलयान।
जीवन में निर्जीव पड़ा है तूने फूँका तनिक न प्रान॥

ऐसा क्यों? उस सिन्धु ने जिसने हमारी नौका तोड़-फोड़ दी। ऊँची तरंगें नहीं उठीं, फिर भी यह नौका कैसे छिन्न-भिन्न हो गई? यह विरह-सिन्धु है जिसमें ऊँची लहरें नहीं उठतीं प्रत्युत जिसका 'मन्द सलिल' ही नाशक होता है। इसकी प्रशान्ति ही खलती है। विरह की मन्दता बड़े हल्के-हल्के मारती है। उसमें लहरें नहीं, तूफ़ान नहीं, पर धीरे धीरे 'किमपि किमपि मन्दं मन्दं' निधन करानेवाली विष की घूँट है। इस मन्द सलिल में अभिलाषा के कितने ही पोत आशाओं के अत्यधिक भार से जलमग्न हो जाते हैं। इस मन्द विरह-सिन्धु की सुविस्तृत जलराशि में एक बूँद भी जीवन को नहीं जिसे कंठ से उतारकर प्राणी जीवन-धारण करे—Water water everywhere, not a drop to drink. इसी कारण तो जीवन में ही—जल में ही—सलीम निर्जीव पड़ा हुआ है और मलय-पवन उसमें प्राण—वायु—नहीं फूँकता! सचमुच ही विरह का जीवन जीकर भी मरा हुआ होता है—Life in death

यही है। 'मंद सलिल' से कवि का इंगित उन दिवसों से है जो मुसीबत और विरह के समय अत्यन्त धीरे-धीरे व्यतीत होते हैं—

अय्याम मुसीबत के तो काटे नहीं कटते।

इन्हीं दिनों को लक्ष्य कर कविसम्राट 'हरिऔध' ने कहा है—

यदि दिन बित जाता बीतती थी न दोषा।

सो सलीम उस मलय-वायु के प्रति कहता है—

जाना ही है रुचिर देश में तो मत मित्र! अकेले जा।
सूखे पालों में भरकर तू मेरी नौका ठेले जा॥

निराशा में अपने दिन बिताता सलीम आशा की फिर धुँधली रेखा पकड़ता है—

आशे! चिरसंगिनि तू होकर छोड़ रही है ऐसा साथ।
तूने भी यों डाँड़ रोककर खींच लिया है अपना हाथ॥
बस दो हाथ और कसकर दे तू ही तो है बस आधार।
तेरे ही दृग की पुतली में झलक रहा है निधि का पार॥

सही, पर आशा के दृग की पुतली में 'निधि का पार'—प्रयास का पुरस्कार, स्वप्न का देश, कामनाओं का केन्द्र—उसी प्रकार झलकता है जैसे मनुष्य की आँख की पुतली में अन्य जन की छाया, जो छाया-मात्र होती है वह अन्य जन नहीं! फिर भी असमर्थ सलीम तू इसी की कोर पकड़ता है जैसे डूबनेवाला व्यक्ति डुबानेवाली लहरों का सहारा ले—

विदा? अरे नैराश्य-निशा! तूने मुझको भरमाया खूब।
उठा उठा तूफ़ान बवंडर प्रलयरूप दिखलाया खूब॥
बाधाओं की मेरे मग में कितनी ही चट्टानें गुप्त,
टकराकर अपने ही संग सलिल में कर देने को सुप्त,
उद्यत हैं, पर ओ भविष्य! कर दे तू ठीक ठीक पतवार।
और राह पर ले जाकर पहुँचा दे मेरी नौका पार॥

फिर निराशा-प्रसवा निशा के अन्त में नव उदित सूर्य की लाली आशा का संचार कर देती है और मनुष्य पिछली रात के व्यर्थ जीवन

का भी कुछ सार्थक तत्त्व समझने लगता है। सलीम भी प्रातः सूर्य की किरणें देख कहता है—

निशा-पलक वह खोल दिवाकर ताक रहा है अलसाया।
सार लाल हो दीप्त हो उठा रवि ने जब उसको ताया॥

इस आशा में फिर सलीम मलय की ओर फिरकर कहता है—

यदि नौका - वाहक बनने में सकुचाता है अरे मलय!
अथवा दूर प्रदेश अकेले जाने में लगता हो भय,
तो मेरा मन संग लिए जा, राह बताता जावेगा।
प्यारी की प्यारी प्यारी बातों से मन बहलावेगा॥

और

पुष्पों के प्यालों में भर भर सुरभिसुरा करवाकर पान।
रक्खेगा सरूर में तुझको कभी न होने देगा म्लान॥

सलीम मलय से अपना रोना रोता है—वास्तव में आर्त की भाँति, यं यं पश्यति तस्य तस्य पुरतः—

आँखों में ही वह बसती है, दिल में है उसकी तस्वीर।
हार गया हूँ पाने की कुछ नहीं सूझती है तदबीर॥

क्या ही अभाग्य है! 'दिल के आईने में तस्वीरे यार' रखता हुआ भी अभागा सलीम नहीं कह सकता—'जब ज़रा गरदन झुकाई देख ली'। कैसे कहे भोज के याचक की ही भाँति उसके सिर पर भी अभाग्य का छत्र लगा है और दिलरूपी भोज चाहे उसके ऊपर कितना भी इष्टद्रव्य की वर्षा करे जल की भाँति वह छत्र के ऊपर ही ऊपर ढुलक जाएगा और सलीम उसका स्पर्श तक नहीं कर सकेगा! फिर भी उसका वक्तव्य एक अस्पष्ट सत्य की घोषणा कर रहा है—

हाथ फेर बेहोश बनाकर, दिल पर साफ़ हाथ फेरा।
फिर भी है विश्वास हृदय में निहित प्रेम होगा मेरा॥

पच्छिमी प्रदेशों में रहनेवाले व्यक्तियों को पूर्वबंगाल सदा एक अनोखा अद्भुत देश सा प्रतीत होता है और सदा उसकी याद किंवदन्तियों में वर्णित जादू की कथाओं के साथ आती है। पच्छिम

में यह साधारणतया जनकथा में प्रचलित है कि पूर्वबंगाल की सुन्दरियाँ पच्छिमी नर को जादू से भेड़ा बनाकर अपने पास रखती हैं। रात में उसको फिर अपनी रतिलालसा पूर्ण करने के लिए वे पुरुषरूप प्रदान कर देती हैं। सलीम को भी येही प्रसंग वारंवार स्मरण आते हैं और वह पूछ उठता है—

क्या बंगाल गई है तू निज जादू और जगाने को?
अथवा मोहन-मंत्र फूँक कर मुझको मेष बनाने को?

सलीम पूछता है, तुमको नवीन जादू वहाँ क्या सीखना था। तुम तो वैसे ही आगरे में ही इसमें पटु थीं। ज्ञात होता है कि उस अपने जादू को धार और तेज़ करने तू बंगाल गई है। फिर मलयानिल का सम्बोधन कर वह कहता है—

मलयानिल! संदेश प्रेम का मेरा उस तक पहुँचा दो।
उसके अति कठोर मानस को रस दे देकर पिघला दो॥
बालापन भी क्रीड़ाओं की उसको याद दिला देना।
कंजाती उस दबी आग को दे दे फूँक जिला देना॥

उस दबी आग को सलीम 'कंजाती' समझता है। यदि कहीं उसने मेहर का विदा-सम्बन्धी वक्तव्य सुना होता!

पवन को दूत बनाकर सलीम उससे बंगाल मेहर के पास अपनी दशा का संदेश भेजता है। वहाँ कवि ने कला का एक चतुर प्रदर्शन किया है। जिन जिन कवियों ने मेघ अथवा पवन-दूत का आश्रय लिया है नायक की संदेशकथा का बड़ा ही तर्कयुक्त वर्णन किया है। यह तर्क-युक्त वर्णन वास्तव में कला की वास्तविकता और स्वाभाविकता से परे है। कलाधुरीण कालिदास ने इस सत्य को समझा है और इसीलिए अपने 'मेघदूत' की सार्थकता—apology—के लिए प्रारम्भ में ही लिख दिया है—

धूमज्योतिःसलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।

इत्यौत्सुक्यादपरगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥

फिर भी महाकवि स्वयं इस प्रतिज्ञा को पूरी नहीं कर सका और उसका संवाद भी पूर्ण, युक्तियुक्त और तर्कप्रौढ़ है। कवि 'भक्त' इस सनातन त्रुटि से बच गया और पवन-दूत से अपना संदेश कहते हुए सलीम की अर्धविक्षिप्तावस्था उसके वक्तव्य से सिद्ध है। जो पूर्ण औचित्य का सहारा ले पूरे होश में होकर अपनी दशा का बखान करेगा वह क्या पवन की चेतनता और संदेशवहन करने की समर्थता पर सन्देह नहीं करेगा? इसी हेतु कलापंडित 'भक्त' ने अपने नायक को कुछ बेहोश-सा कर दिया है जो उसके वक्तव्य की अतार्किकता से प्रगट होता है। मलय का सम्बोधन कर वह आशा से बात करने लगता है, फिर नैराश्य-निशा और भविष्य के प्रति अभिमुख होता है, पश्चात् मलय से कुछ कह झट मेहर को कोसता है और अन्त में फिर मलय के प्रति ही अपना वक्तव्य समाप्त करता है। कवि 'भक्त' कला का पारदर्शी है।

× × × ×

नाट्यप्रभाव (Dramatic effect) अत्यधिक बढ़ गया है, करुणा और विक्षिप्तता के अधिक कर्षण से कहीं कला के तार टूट न जायँ इस डर से सजग होकर high tension चरम तनाव को शिथिल करने के लिए कवि ने जमीला को रंग मंच पर ला खड़ा किया है—

चलो मेहर भी चली गई, अब यह कंटक भी दूर हुआ।
मेरे एक इशारे ही में उसका सब मद चूर हुआ॥

जमीला अपने रास्ते से मेहर-कंटक को दूर करके भी सलीम के पराए हृदय को नहीं अपना सकी। सलीम का यह प्यार अन्तिम है और वह मेहर से इतर किसी व्यक्ति की ओर भी आँख नहीं उठा सकता। जमीला आश्चर्य करती है—

पर सलीम पर ऐसा जादू उसने कुछ कर डाला है।
जब देखो तब उसकी ही वह जपता रहता माला है॥

... ...

ठंढी आहें जब तब भरता, बरसा करते उसके नैन ।।

जमीला स्वयं स्वीकार करती है कि अपना पूर्ण शृंगार कर, दर्पण में अपनी साकार सुन्दरता देख कितनी बार उसने अपने 'भ्रू-कमान से पंचबान मारे हैं'—

पर वह डिगा नहीं पर्वत-सा एक बार बस नख-शिख लख ।
चखकर रस थोड़ा-सा उसने हटा लिए फँसते वे चख ।।

इस कारण जमीला साधारण निम्नकोटि की स्त्रियों की भाँति उस नीति का अवलम्बन करती है जो उसकी तरह की स्त्रियाँ प्रायः करती हैं । वह मशहूर फ़कीर गुदड़ीशाह की शरण में जाएगी । जन-विश्वास का कवि ने बड़ा ही यथार्थ वर्णन जमीला के शब्दों में किया है—

सुनते हैं पहुँचे फ़कीर हैं जो कहलाते गुदड़ीशाह ।
दुनिया से बिलकुल विरक्त हैं नहीं द्रव्य की रखते चाह ।।
कठिन रोग लाखों रोगी के फूँक फूँक कर उड़ा दिए ।
सुँघा फलीता हवा-भूत कितने बहकों के छुड़ा दिए ।।
मलकर राख अकिंचन कितने लखते लखते हुए धनद ।
उनकी कृपा-दृष्टि से कितनों ने पाये हैं उन्नत पद ।।
दुखिया ललनाओं का उनके तकिये में रहता है रेल ।
संतानें बाँझों को देना बाम हाथ का उनके खेल ।
विकल विरहिणी-वृन्दों का मंत्रों से दुःख मिटाते हैं ।
प्रेम-वंचिता वनिताओं को मोहन-मंत्र सिखाते हैं ।।

इस प्रकार जमीला ने गुदड़ीशाह की शरण जाना निश्चय कर लिया, वरन् मेहर ने जो सलीम के ऊपर 'कुछ' कर डाला है उसका शमन क्योंकर होगा और सलीम के हृदय से मेहर को हटाकर वह स्वयं कैसे स्थानापन्न होगी । सम्भव है फ़कीर गुदड़ीशाह के मोहन-मंत्र और उनकी अमोघ युक्तियाँ जमीला की कुछ सहायता कर सकें और जहाँ उसके 'भ्रू-कमान' से छुटे तीर व्यर्थ सिद्ध हुए शायद उनके टोटके घर कर लें । जमीला भी गुदड़ीशाह के 'तकिये' पर जाएगी—

मुझको भी है यही सीखना—सेवा में मैं जाऊँगी।
सम्मोहन मैं सीख भली विधि उनको बस में लाऊँगी॥
फिर तो मेरी चाँदी होगी मन की साध मिटा लूँगी।
उनके आलिंगन से अपने दिल की तपन बुझा लूँगी।

सजग हो जा सलीम यह मेहर का जमीला-रूपी अभाग्य अपनी पक्षच्छाया लिए तेरे ऊपर भी मँड़रा रहा है देखना कहीं तुझे छू न ले!

———

ग्यारहवाँ सर्ग

शेर अफ़ग़ान निर्भीक, गर्वीला, क्रोधी, हृदयहीन और शासन करने में अत्यन्त कट्टर सैनिक था, वह मस्तिष्क से काम नहीं लेता था और अक्सर बे-समझे-बूझे सब कुछ कर जाया करता था। उसका—

सर ज्वालामुखी-सदृश हो था गर्म सदा ही रहता।
उसके मरु-मानस-थल से रस - जीवन कभी न बहता॥
कोमल भावों की सरिता रेते में खो जाती थी।
मानवता भय से उसके बच्चों-सी सो जाती थी॥
सब कला बला थी उसको सौन्दर्य-प्रेम की माया।
बेकारों का पागलपन—यह उसको कभी न भाया॥
संगीत-समाज उसे था दुश्मन-सा सदा खटकता।
साहित्य नाम सुनते ही गुस्से से पैर पटकता॥
था लक्ष्य मारना-मरना केवल उसके जीवन का।
वह इसी नाम का हरदम फेरा करता था मनका॥

ऐसे रूखे-सूखे सैनिक के साथ कला-प्रवीणा मृगीसभीता मेहर बाँध दी गई। मेहर-सी मोहनी मूर्ति का जादू भी, जिसने सलीम के हृदय में तूफ़ान मचा दिया था, उस पर नहीं चल सका। वह यहाँ आकर बिलकुल कैदी का जीवन व्यतीत करने लगी। वह कभी हरम-सरा के बाहर पग नहीं रख सकती थी—

कानों पर, मुँह पर, पग पर, था उस दुलहिन के ताला।

उसका यहाँ न तो कोई साथी था न मिलनेवाला। मीनारों पर चढ़कर वह सदा प्रकृति-सहचरी को देखा करती और उस हरियाली की हाला चढ़ाकर उसकी आँखों में उतर आती। वृक्षों पर चढ़ चढ़कर

लतिकाएँ उसे हाथ हिला-हिलाकर बुलातीं और मृगशावक उससे आँखें मिला-मिला वन में भाग चलने का इशारा करते। जब उस प्रकृति-नटी का नागर वसंत वर बन उसके सम्मुख आ खड़ा होता, जब फूलों में उत्साह-आह्लाद का सागर लहरें मारने लगता, नए वस्त्राभूषणों से सुसज्जित वृक्ष-वृन्द बाराती बनकर आते, जब इन बारातियों के समक्ष वारवधू लतिकाएँ नाच-नाचकर बल खातीं, कोयल दूती बनकर संदेश सुनाने आती और रसाल ऋतुराज वसन्त को पहनाने के लिए सुन्दर सुवासित मौर लिए खड़े रहते, जब फूलों से सजा वसन्त गोधूली के समय हलके पाँव धरते आता और निशामुख—सन्ध्या—गगन की सुनहरी अरुणिमा प्रकृति की सरिता-रूपी माँग में सिन्दूर की भाँति भर देता, तब मेहर उस प्रकृति वधू से मिलने को कितना ललचाती पर अश्रु बहा-बहाकर भीतर ही रह जाती।

जब चारुचन्द्रिका छिटक-छिटककर सुधा बरसाती होती, जब फूलों की पंखड़ियाँ लिपट-लिपटकर सोतीं, तब वह खड़ी, रात आँखों में काटा करती। प्रातःकाल के समय जब उषा सारे जगत की नींद हर लेती—संसार का सारा सोना चुराकर अपने पूर्वकोट की दीवारों पर बिखेर देती, अपना मोती का पानी पृथ्वी पर ढरका देती, जब नीलम की चाँदनी में ढँके तारे प्रातःकालीन प्रभा में ज्योतिहीन हो धुँधले हो जाते और सुमन—खिलने के समय मंत्रमुग्ध हो मुख खोले अवाक् खड़े होते, जब पुष्प-सागर की सुरभि-वीचि से तितली-रूपी कमलाएँ निकला करतीं, जब तरुओं की तरुणाई कलियों से छलकी पड़ती और लतिकाओं का यौवन अलियों से उलझा करता, जब कौड़िल्ले मैदानों में मोती बिछाते, टीले बनगोभी की हल्दी से नहा जाते, मंदार घुँघरू बजा-बजाकर थिरकते, खगों के मस्त जोड़े गा-गाकर विहरते, तब मेहर वन की शोभा में पहले की भाँति ही फिरने को ललचाया करती, परन्तु उसका महल की दीवारों के बाहर निकलना असम्भव था—

वह ललच-ललच कलियों के चुनने को हाथ बढ़ाती।
फिर साँस खींचकर ठंढी वह मन मसोस रह जाती॥

वह ईर्षा करती पक्षी का देख स्वतंत्र विचरना।
वह दृग से नीर बहाकर शीशे में लखती झरना॥

मेहर का यह हाल था। इस प्रकार वह घर में बन्द जैसे-तैसे अपने जीवन के दिन काटा करती। शेर अफ़ग़ान की तेज़ आँख उसपर बराबर लगी रहती। इसी कारण—

जो हृदय शालि-सा अब तक था प्रेमवारि का सींचा।
उस शेर - भानु ने उसका जीवन खर करके खींचा॥

× × × ×

आगे मेहर बंगाल के अत्याचार का दृश्य खींचती है। उसके इस लम्बे एकान्त कथन में कवि ने बड़ी चतुरता से प्राचीन और तत्कालीन बंगाल का चित्र रख दिया है। पढ़ने पर यह वक्तव्य उस प्रारम्भिक मन-सृष्टि (Utopia) सा प्रतीत होता है जिसकी कल्पना भारतीय और पाश्चात्य सभी विश्वास-परम्पराएँ करती हैं। इस वक्तव्य में कवि ने व्यक्त कर दिया है कि स्वतंत्र मनुष्य जिस समय स्वच्छन्द प्रकृति से प्रकट साहचर्य रखता था, जब प्रकृति की भूमि किसी जन विशेष की न थी, सभी सबका था, जब अत्याचारी की करवाल शान्ति और क़ानून के नाम पर स्वार्थ-साधन के निमित्त खून नहीं बहाती थी, जीवन वास्तव में कितना सुखी था। इस प्रकार का सुखी, अछूता बंगाल आज मेहर के शब्दों में शेर अफ़ग़ान के अत्याचारों से त्राहि त्राहि कर उठा है। इस दशा का वर्णन, जिसे कवि ने अपनी मार्मिक और व्यापक भाषा में, सुन्दर मधुर पंक्तियों में किया है, बड़ा ही कारुणिक और मनोहर है—

विश्व-सृष्टि के उषाकाल में जब नव जल-थल था पावन।
प्रकृति-नटी-कौमार्य-कली से छेड़ न करते थे अलिगण॥
जब भवसागर भरा नहीं था अत्याचारी मगरों से।
जब दुकूलिनी का दुकूल था मैला हुआ न नगरों से॥
जब दिनकर बन चारु चितेरा, सरिता-पट पर कूलों का।
था थल-चित्र खींचता जाता, तरु लतिकाओं फूलों का॥
जब तरुगण अक्षत बढ़ते थे, चढ़ती निर्भय लतिकाएँ।

जब अविरोध स्वतंत्र चाल से बहतीं भर भर सरिताएँ ॥
जब सागर के विमल वक्ष पर मूँग न कोई दलता था ।
जब सरिता का हृदय चीर जलयान न कोई चलता था ॥
जब भारी हल के सीता से छाती भू की भरी न थी ।
किसी दुशासन ने श्री इसकी निष्ठुरता से हरी न थी ॥
मूर्तिमान लज्जा-लतिका में छिपती अंगूरी बाला ।
लाल परी बन उड़ी नहीं थी, ढली न थी होकर हाला ॥
हृदय-क्षेत्र में नहीं उगे थे ईर्षा, द्वेष, मोह, ममता ।
था अनुराग, राग बस सबका, समता का केवल सम था ॥
जड़-जंगम को, पिता-पुत्र को, भगिनी, पत्नी, माता को,
बंधु, सपिंडज और ज्ञातिकुल मित्रों को औ' भ्राता को ,
एक सूत्र बाँधे था सबको सब थे नथे प्रेम की डोर ।
हृदय केन्द्र था स्नेह-तड़ित का जो फैली थी चारों ओर ॥
भुवनमंच पर अपनी लीला सब समाप्त कर चल देते ।
कर्णधार के नियमित संकेतों पर नौका थे खेते ॥
हो पथ-भ्रष्ट, सुप्त चट्टानों से न कहीं टकराते थे ।
या आवर्त-चक्र में पड़कर व्यर्थ न चक्कर खाते थे ॥
रसा स्नेह से जो सिंचती थी बहती जहाँ प्रेमधारा ।
वही रक्तरंजित है अब बज रहा स्वार्थ का इकतारा ॥
वृक्ष काट जलयान बनाए शोणित-नदी बहाने को ।
छद्मवेश धारण करते हैं सीता को हर लाने को ॥
मथ डाला समुद्र सारा ही कमला के अपनाने को ।
जाते हैं स्वतंत्रता हरने नहीं शान्ति फैलाने को ॥
कहीं विलपती हैं विधवाएँ कहीं अनाथ विलखते हैं ।
एक दूसरे के शोणित का प्यासा सबको लखते हैं ॥
हरे भरे लहलहे खेत पर किसने डाला है पाला ?
हँसते हरे भरे बागों को किसने हाय जला डाला !
किसने प्रेम-भरे मानस को टूक टूक कर डाला है ?

किसने मधुवर्षी वीणा को हाय मूक कर डाला है ?

फिर मेहर को ऐसा प्रतीत होता है कि यह सारा उत्पात उसकी 'सौत' का है जो सदा उसके पति की कमर से लटकी रहती है—उसी बदज़ात तलवार का—

उसने ही इस शांत धरा पर विष की बेलि लगाई है ॥
उसकी चमक-दमक लचकन पर लट्टू है सारा संसार ।
सर बिछ जाते हैं उस मग में जिधर घूम जाती इक बार ॥
... ...
सर्वसुन्दरी सखी ! करूँ क्या ? अपनाकर उसने छोड़ा ।
उसके बस हो मेरे पति ने नाता मुझसे भी तोड़ा ॥

शेर अफ़ग़ान सूखा सैनिक है, स्त्रियाँ उसे आकर्षित नहीं करतीं। मेहर की बात सुनकर वह तनक उठता है—

झूठ ! सरासर झूठ ! मेहर तू मुझे लगावे यह इल्ज़ाम ।
... ...
कैसी सौत ? कौन परनारी देखी तूने मेरे साथ ?
... ...
ख़ुदा ! ख़ुदा ! दुनिया भी क्या है, सोचा नहीं स्वप्न में जो ।
... ...
दोष वही बीबी ही मेरी मुझे लगावे बदज़न हो ॥
ऐसी तोहमत मुझे लगाती शीघ्र बता नारी का नाम ।
अथवा मैं तमाम कर दूँगा तेरा ही या अपना काम ॥

सूखा शेर चरित्र का धनी है, पर-स्त्री की ओर आँख नहीं उठाता और बदचलनी की तोहमत पर तोहमत लगानेवाले या ख़ुद को ख़तम कर देने तक को तैयार है। बाद में जब मेहर की बातों का तात्पर्य समझता है तब वह साफ़ कह देता है कि सच्चे सैनिक की भाँति दुनिया में सबसे प्यारी उसे उसकी तलवार है—

जीते जी तलवार कभी यह मेरी अलग न होवेगी ।
उसके ही साये में सारी दुनिया, तू भी, सोवेगी ॥
तुझे छोड़ दूँ, तज सकता हूँ सब कुछ प्यारी से प्यारी ।
पर प्यारी तलवार नहीं हो सकती है कदापि न्यारी ॥

इस प्रकार जहाँ मेहर दूसरों के बिछे प्यार के ऊपर आगरे में

चलती थी आज इस शेर की पथरीली चट्टान से टकरा रही है। पति की लगती बातें सुनकर मेहर का दिल आँखों में उमड़ आया—सारा अतीत ताज़ा होकर बिलख पड़ा—

कटकर बस रह गई दुःख से मेहर खड़ी फूली फूली।
पी सी गई आँख के आँसू, अपनी देहदशा भूली॥

इसी समय गृहस्थ-जीवन की एक साधारण घटना मोह और ममता का, मेहर के विरक्त हृदय में, एक संसार रच देती है। मेहर की लैला नाम की एक सुन्दर छोटी बालिका है। पिता को माता पर गुस्सा होते हुए देखकर वह दौड़ी हुई आती है और तुतलाती ज़बान से उसे डाँटती है—

... ... "घल से तुझे निकालूँगी।
माला है अम्मी को तू ने मैं भी तुझको मालूँगी॥"

फिर गुस्सा करके उसको दाँत काट लेती है। जला बाप क्रोधान्ध होकर लैला को पटक देता है और माँ उसे उठाकर हृदय से लगा लेती है। फिर मेहर की अभिन्नहृदया सहेली ज़मींदार नरहर की पुत्रवधू सर्वसुन्दरी लैला को गोद में लेकर लोरी गा-गाकर सुलाती है। बड़े ही सुन्दर भावों की लड़ी और मधुर घरेलू गीत यह लोरी हिन्दी-जगत की एक अद्भुत अभूतपूर्व निधि है—

निंदिया आ जा निंदिया आजा लैला तुझे बुलाती है।
इन्तज़ार में जाग रही है आँखें नहीं लगाती है॥
मिट्टी के पकवान बनाकर लैला तुझे खिलावेगी।
और धूल का महल बनाकर उसमें तुझे सुलावेगी॥
'चम्पाकली' तुझे पहनाकर, 'जौमाला' पहनावेगी।
और 'करौंदे' के 'लटकन' से तेरे कान सजावेगी॥
ऊषा से सुरंग चुँदरी ले 'बिजली' घनमाला से ला।
लहरजाल से छीन 'करधनी' कीरकंठ से ले 'कंठा'॥
तेरा कर शृंगार भली विधि दुलहिन तुझे बनावेगी।
क्षत्रक-मंडप में गुड्डे से अपना ब्याह रचावेगी॥
तेरी मुँहदेखी में मैं भी लूँगी माँग स्वप्न का देश।

जहाँ सदा वसंत रहता है नहीं किसी दुख का लवलेश ॥
आँख बन्द करती परदे में नई नवेली आती है।
आते आते बड़ी दूर से निंदिया भी थक जाती है॥
ध्रुव-प्रदेश के छोटे बच्चे नहीं सुलाये सोते हैं।
पड़े पीठ पर झोले में, खा शीत, काँप कर रोते हैं॥
घात लगाकर जमे सिन्धु पर बैठी हुई अकेले में।
माता मछली मार रही है विद्युत-लहर-उजेले में॥
बर्फ़गेह में जाकर जब भालू की खाल उढ़ाई है।
तब बच्चों को थपकी दे दे नींद सुलाने पाई है॥
मरु-प्रदेश के बच्चे भी प्यासे 'मम' 'मम' चिल्लाते हैं।
हिचकोले पर चलकोले बैठे ऊँटों पर खाते हैं॥
लू उनका मुँह झुलस रही है धूप आग बरसाती है।
सूखी छाती मुँह में दे बच्चे को माँ बहलाती है॥
नख़लिस्तान पहुँचकर पानी ने ठंढक पहुँचाई जब।
निंदिया उन छोटे बच्चों को कहीं सुलाने पाई तब॥
माँ समझाती है कितना ही अब हो गया अँधेरा है।
पर शिशु-खग उड़ता फिरता है होता नहीं बसेरा है॥
स्यारों की बोली सुनवाकर उन्हें डराकर लाई है।
तब निंदिया उस खगकुमार को कहीं सुलाने पाई है॥
इन्हें सुलाकर अभी पहुँचती है, आई, बस, वह आई।
चलो सो गई लैला भी ले-लेकर कितनी जमुहाई॥
पलने की तरंग में शशि-नौका-सी मेरी लैला सो।
मेरे दृगदोलों में सोती रहे चपल पुतली-सी हो॥
निंदिया भी भ्रमरी-सी बनकर कमलदृगों में सोई है।
धीमे स्वर ले मेरी लोरी अब गाता सब कोई है॥

सर्वसुंदरी मेहर की सहेली थी। यह स्त्री एक रमणी-रत्न थी। नरहर ढाका का एक प्रजा-वत्सल ज़मींदार था। उसका एक पुत्र विमलराय सर्वसुंदरी का पति था। किस प्रकार इस कुल का शेर अफ़ग़ान ने सर्व-

नाश किया यह इस महाकाव्य में आगे वर्णित है। सर्वसुंदरी, ज्ञात होता है, अपने अभाग्य से पूर्व मेहर के अनुरोध से उसके पास प्रायः आती थी और दोनों में सौहार्द हो आया था। प्यार से सर्वसुंदरी लैला को सुनाने लगी। लोरी में जहाँ नींद के दुलहिन बनने और उसके ब्याह की बात आती है उसका सार्वजनिक सेवा में लगा अभ्यस्त मन नाच उठता है और वह प्रजा पर शेर अफ़ग़ान के अत्याचारों की याद कर विधवाओं के कष्ट को जानकर, शेर अफ़ग़ान के कभी राहेरास्त पर आने की उम्मीद कर कह उठती है—

तेरी मुँहदेखी में मैं भी लूँगी माँग स्वप्न का देश।

यह स्वप्न का देश क्या है? सर्वसुंदरी ने अनेक नारियों का सर्वनाश होते देखा है। इस लोक के उनके सारे सुख खोते देखे हैं, अब वह केवल कल्पना की आँख से उनका एक नया स्वनिर्मित संसार देखा चाहती है, उसी संसार को जो उसके स्वप्न का—कल्पना और आकांक्षा का—देश है, लैला के ब्याह के बाद उसकी मुँहदेखी में माँग लेगी। कैसा है वह उसके स्वप्न का देश—

जहाँ सदा वसंत रहता है नहीं किसी दुख का लवलेश।

उसकी प्रजा का पतझड़ बीत चुका है, अब यदि आया तो उसकी साधों में वसंत ही आएगा, आकर फूलेगा। इस स्वप्न के देश में सदा वसंत ही रहता है, इसमें शेर अफ़ग़ान नहीं होते, भरे यौवन में तरुणी का पति उससे नहीं छिन जाता और न लैला जैसी प्रसन्न-वदना बालिका ही निष्ठुरता से पृथ्वी पर पटक दी जाती है।

× × × ×

आगरे से दूत संवाद लेकर आता है कि सम्राट अकबर की मृत्यु हो गई और सलीम 'जहाँगीर' होकर गद्दी पर बैठा और उसके ही नाम के सिक्के देश में जारी हुए। सर्वसुंदरी, जो ऐसा मालूम होता है मेहर के हृदय के एक-एक रहस्य से परिचित थी, यह संदेश सुनकर—

दौड़ी गई, मेहर को देखा बैठी हौज-किनारे थी।
नील गगन की परिछाईं में लखती भाग्य-सितारे थी॥

तारे दृग के उन तारों में धूमकेतु हो फिरते थे।
टूटे तारों से आँखों से आँसू टप टप गिरते थे॥

सर्वसुंदरी ने पास पहुँचकर संदेश सुना दिया। मेहर चमक उठी—"सच कहना, कैसे जाना", "रहा न अकबर!" आदि असंबद्ध वाक्य उसके मुँह से निकल पड़े। जो उसने समेटकर हृदय में कुचल रखा था वह सहसा उसे अस्थिर देख सजग हो उठा। वह अकबर, जिसने उसे कहाँ-से-कहाँ ला पटका, जिसने उसके हृदय के सर्वस्व को छीनकर अलग कर दिया, आज नहीं रहा। प्यारा सलीम आज सब कुछ कर सकता है। कितनी ही भावनाएँ हृदय में उठीं पर मेहर ने फिर ज़ोर लगाकर उन्हें दबा दिया—

और शाहज़ादा सलीम ही हुआ तख़्त पा शाहंशाह।

आज मेहर कहाँ होती? उसमें इसका उत्तर देने की क्षमता नहीं है। आज की दशा उसकी बरदाश्त से बाहर की है—

अली! हो गया है क्या मुझको, दिल बैठा-सा जाता है।
तबियत मेरी घबड़ाती है, चक्कर सर में आता है॥
मुझे सँभालो! आह गिरी मैं! कहते ही वह लोटी वाम।
सर्वसुंदरी ने तुरंत ही लिया हाथ से उसको थाम॥

× × × ×

नए समाचार से अधिक और पति के दुर्व्यवहार से अधिकतर मेहर उद्विग्न हो उठी। उसके रोम रोम से स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचारों के विरुद्ध क्रोध उमड़ पड़ा—

स्नेह नहीं क्या रहा जनों में, प्रेमहीन है दुनिया सब?
हृदय नहीं क्या ललनाओं में, पुरुषों की हैं कठपुतली?

... ...

सतत चेतनाहीन बनी वे सेवें गृह का कारागार।
उन्हें स्वतंत्र वायुसेवन का भी है मिला नहीं अधिकार?
पुरुष करें सब कुछ मनमानी! इनकी हो ज़बान भी बंद।

इतना कहते-कहते मेहर का अपना पुराना सुनहरा संसार याद आ गया और वह कहने लगी—

मैंने प्रेम निबाहा पूरा पालन अपना धर्म किया।
प्यारा हृदय कुचल डाला पर पूरा अपना कर्म किया॥
दुर्बलता को दिया न आने प्रेमांकुर को दिया कुचल।
राज्यस्वप्न वैभव विलास भी मन को सका न कर चंचल॥

इतना करने पर भी उसको मानवता तक नहीं मिली और साधारण दाम्पत्य जीवन भी उसको स्वप्न हो गया। उसके वक्तव्य में वेग और ओज आ जाता है और वह मनस्विनी सखी का सम्बोधन कर कह उठती है, उसकी भाषा में उसका स्त्रीत्व खुल पड़ता है—

सर्वसुंदरी चुप क्यों हो ? कुछ कहो तुम्हारी क्या है मति !
क्या कहती हो मैं चुप यों ही सहा करूँ ऐसी दुर्गति ?
नहीं, नहीं, यह कभी न होगा कभी न होने दूँगी मैं।
मानवता-विहीन पति का अन्याय न यों सह लूँगी मैं॥
मेरा मस्तक नहीं झुकेगा अविवेकी मद के डर से।
मान-सहित मैं मर सकती हूँ प्रेम अगर इंगित कर दे॥
मर्यादा खोकर तलवा मैं नहीं किसी का चाटूँगी।
पराधीनता की बेड़ी यह अपने हाथों काटूँगी॥

सर्वसुंदरी की सर्वतः प्रशान्त मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता और इस क्रांतिमूर्ति मेहर के अशान्त चित्त की थाह लेती हुई वह उसको धीरज बँधाती है—

शांत ! शांत ! प्रिय मेहर शांत हो, तुम्हें शांत रहना होगा।
तुम्हें नहीं आवेग रोष में यों कहना, बहना होगा॥

मेहर साधारण स्त्री नहीं है—तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना—महाभूत-समाधियों से निर्मित इस असाधारण स्त्री का तेज सर्वसुंदरी को ज्ञात है और वह उसे इस साधारणजनोचित आचरण को दूर करने के लिए सावधान करती है—

बड़े धैर्य से जीवन की कठिनाई को सहना होगा।
हों खारे समुद्र वे, तुमको सुरसरि हो बहना होगा॥

उधर ज्वार-भाटे उठने दो नाचें प्रलयंकर तूफ़ान।
प्रेम बढ़ाती रहो सदा तुम लिए, वीचियों की मुस्कान।।
खारा पी हैं सभी थूकते किसकी प्यास बुझाई है।
कितनों ही ने उस सागर में सलिल-समाधि बनाई है।।
तेरा सुधा - सलिल जीवन बरसाता हुआ जिधर जावे।
हरी भरी खेती लहरावे कूल फूल से भर जावे।।
अमृत सा मीठे जल से तू उस ऊसर को सींचा कर।
शांत भाव से उसे भेंटकर बेकल की अशांति को हर।।
महाप्रलय के प्रांगण में भी जीवन-सा बहना होगा।
शांत शांत प्रिय मेहर शांत हो, तुम्हें शांत रहना होगा।।

इस वक्तव्य की एक-एक मात्रा स्वयं इस सर्वसुंदरी का अनुभूत सत्य है। उसका उपदेश वह 'पर-उपदेश' नहीं जिसमें सभी 'कुशल' होते हैं। उसने एक-एक उपदेश का स्वयं आचरण किया है। स्वयं वह महाप्रलय के प्रांगण में जीवन-सा बह चुकी है, अपनी प्रजा को रोते-कलपते देख चुकी है और आज फिर भी शांत है। वह मेहर से कहती है कि उसे भी उसी भाँति शांत रहना होगा। पर प्रज्वलित हृदय की आग शब्दों से नहीं ठंढी होती। मेहर की ज्वाला और भी भभक उठती है और वह कह बैठती है—

सरिता नहीं सरोवर बन मैं अपना हंस चुगाऊँगी।

सर्वसुंदरी कुछ व्यंग्य-भरे शब्दों में उसका उत्तर देती है फिर उसके उद्विग्न चित्त को स्थिर करने के लिए औचित्य का उपदेश करती है—

पर मेरा आदर्श और था, देवा तुम्हें बनाने का।
क्षणिक देह-सुख-स्वप्न छोड़कर चिर सुखमार्ग चलाने का।।
पर वह मार्ग महादुर्गम है भारी प्रेम - परीक्षा है।
स्वार्थहीन निष्काम भक्ति की मिलती पूरी शिक्षा है।।
मेरा धर्म ब्याह - बंधन को नाता अमर बनाता है।
जन्म जन्म में भी जो नाता नहीं छूटने पाता है।।
वह दैहिक संसर्ग न केवल, सौदों का है नहीं करार।

इज़ा देकर तज देने का यहाँ नहीं कोई व्यापार ॥
यहाँ धर्म का बंधन है, है दो प्राणों का सम्मेलन।
एक धार में मिल जाते हैं होकर एक, युगल तन-मन ॥
वर - तरु से लतिका-सी तरुणी लिपट एक हो जाती है।
उसके ही सँग अपनी लीला कर समाप्त सो जाती है ॥
सुख-दुख का कुछ ध्यान न उसको वह तो प्रेम दिवानी है।
प्रियतम के सुख-दुख को उसने सारी दुनिया मानी है ॥
अपनापन तो मिटा दिया है प्रेम रंग में राती है।
गला मिलाकर उनके स्वर में एक राग हो गाती है ॥
विलग नहीं तो भले-बुरे होने की करे शिकायत कौन।
सतत सींचते रह उस तरु को पानी-सा उड़ जाती मौन ॥
कोमल हैं, पर रखती हैं, वे प्रेमभक्ति का भारी बल।
इसी प्रेम में हो विभोर ललनाएँ छार हुईं जल-जल ॥
इसी प्रेम के ऊपर तो 'फ़रहाद' हो गया था बलिदान।
इसी प्रेम में पागल हो 'शीरीं' ने दे दी अपनी जान ॥
वही प्रेम पति से करने को मेरा धर्म बताता है।
औ' निष्काम भक्ति से सेवा का करना सिखलाता है ॥
मेरी अभिलाषा थी तू भी मेहर प्रेम में पग जाती।
भूल अपनपौ पति की ही सेवा के रँग में रँग जाती ॥
तब तो तू देवी हो जाती नहीं मानवी निर्बलता।
ईश्वर करें तुझे सुबुद्धि हो, तू आदर्श बने महिला ॥
तेरे प्रेम-प्रसून-राशि में उनके काँटे खो जावें।
तेरे शांत गगन से, पृथ्वी-मण्डल-सा घिर सो जावें ॥
उठती जा ऊची ही ऊँची उन्नतमार्ग कटीला है।
आकर्षण पार्थिव विलास का कहता विश्व रँगीला है ॥
पर पथभ्रष्ट कभी मत होना दिवस चार ही जीना है।
बन किरीटमणि रहे भाल पर तू अनमोल नगीना है ॥

इस उपदेश की नीति किसके हृदय में घर नहीं कर लेती? स्पष्ट

है मेहर के हृदय की एक एक दुर्बलता सर्वसुन्दरी पर विदित है। उसके हृदय में दबी आग की एक एक चिनगारी को उकसाकर सर्वसुन्दरी उस पर जल के छींटे डालती है। मेहर को ठेस लगती है। त्याग का यह सुन्दर रूप सच ही अनजाना पर लुभावना है और फिर इसका उपदेश करनेवाला व्यक्ति नीति-पुस्तकों का आश्रय नहीं लेता। मेहर ने अपनी ही आँखों इस आदर्श महिला की कितनी ही सखियों का सर्वनाश होते देखा है, पर इस शांति की पराकाष्ठा मूर्ति ने न तो अपनी ओजस्विता खोई है और न अपने शत्रु को शाप से भस्म किया है। उसी के पति ने इस अद्भुत नारी-रत्न के श्वशुर की जमींदारी में घर-घर हाहाकार मचवा दिया है और वह आज विपत्ति में मेहर की अंतरंगहृदया सखी है, वही उसके उद्विग्न, विचलित चित्त को शान्त करती है। मेहर अपने चलायमान चित्त की रास खींचती है, अपना अपराध स्वीकार करती है। सचमुच ही क्या उसके अशान्त चित्त का एकमात्र कारण उसके पति का दुर्व्यवहार ही है। क्या उसकी हृदयकली में कभी का घुसा प्रेमकीट डँस-डँसकर टीस नहीं उठाता? हृदय खोल कर मेहर स्वीकार करती है—

करना क्षमा सखी दुर्बलता आख़िर अबला नारी हूँ।
मन पर नहीं विजय पाई है लड़ते लड़ते हारी हूँ॥
मैं बहकी थी मन यह मेरा नहीं अभी था अपने में।
विश्ववासना के झोंकों में डोल रहा था सपने में॥

सोचा होगा जो कभी इशारों पर नाचनेवाला पिता का दास था आज क्षमताशील सम्राट है। उसकी कामनाओं के चरितार्थ होने में कोई रुकावट नहीं हो सकती। और जो उसके हृदय के इंगित पर हँसता रोता रहा है आज अपने सामर्थ्य के समय सिंहासन का अर्धभाग देने से नहीं चूकेगा और मेहर भी सहर्ष उस अलभ्य, वांछनीय स्थान का लाभ कर जहाँगीर के हृदय-साम्राज्य की अधीश्वरी हो ऐश्वर्य भोगेगी। मुग़ल-साम्राज्य की विभूतियाँ उसकी होंगी। उसके ही सुवर्ण-पाद पीठ पर अब बड़े बड़े नृपति अपने किरीटमुकुट-मंडित सिरों

को रखते समय माल-मकरन्द-राशि खड़ी करेंगे। उस राजपूताने के कितने ही मनस्वी राजपुत्र अब उसके भृकुटि-भंग से काँपेंगे और उसकी नेत्रगति का अनुसरण करेंगे। शीघ्र अब 'सामन्त-मौलिमणि-रंजित शासनांक' उसका होगा और पृथ्वी के सारे वैभव उसके चरणों-तले लोटेंगे। पर इस प्रकार दौड़ते हुए हृदय को सर्वसुन्दरी ने फिर एक बार ठोकर लगा दी और उसकी गति रुक गई। मेहर सचेत होकर सर्वसुन्दरी से कह उठी—

तूने मेरी आँख खोल दी, सोई थी अब जागी हूँ।
तूने रोक दिया गिरने से, तुझको पा बड़भागी हूँ॥
फिर इक बार हृदय से लड़कर उसे लगाम लगाऊँगी।
मन! दे ढील! अधिक खींचा तो हत्थे से कट जाऊँगी॥

अभी तक मेहर के हृदय पर उसका पूरा अधिकार नहीं है और उसे पूरा सन्देह है कि पतंग की भाँति ढील दिए हृदय को बहुत खींचने से कुछ आश्चर्य नहीं कि वह टूट जाए, फिर वह हत्थे से ही टूट कर सुदूर अनजाने देश में जा गिरे। फिर भी सर्वसुन्दरी की मति अन्धकार में खोए उसके पोत के लिए प्रकाश-स्तंभ (Light House) का काम करती है और मेहर अपने को उसकी सीख से उपकृत मानती हुई कहती है—

अन्धकार में महाउदधि में मेरी नौका जब खोई।
तट था दूर, प्रदर्शक पथ की ज्योति न थी नभ में कोई॥
लहरों के दोलों में दोलित हो नौका चकराई थी।
डाँड़ छोड़, पतवार तोड़कर, मैं बैठी घबराई थी॥
मन-मारुत चल बड़े वेग से किसी ओर ले जाता था।
सागर उसे रोकने को लहरों का अचल बनाता था॥
उसी समय प्राची-ललाट से तू प्रभात-तारा चमकी।
महाप्रलय में अंधकार से जीवन की लाली दमकी॥
दिशा दिखाकर भूली नौका को तू पथ पर ले आई।
और नहीं तो किसी भँवर में फिरती वह चक्कर खाई॥

भूलूँगी उपकार नहीं मैं, भूलूँ, तो सुधार लेना।
महाकठिन है बाढ़ और पुरवाई में नौका खेना॥
मैं उद्योग करूँगी, वश भर, ईश्वर पार लगावेगा।
आशा है, मेरा भूला मन कभी राह पर आवेगा॥

मेहर प्रयत्न करेगी पर विजय उसकी उसके बहके हृदय पर होगी, इसमें स्वयं उसे सन्देह है। वह डरती है और स्वयं कहती है 'भूलूँ, तो सुधार लेना'। हृदय-सरिता की महाकठिन बाढ़ से वह परिचित है। भरसक वह पार जाने का उद्योग करेगी, पर ईश्वर ही पार लगाएगा। वह आशा करती है कि उसका भूला मन राहे रास्त पर आ जाएगा, पर शरीर के इस अजीब अवयव पर किसका अधिकार है, कितने इसकी उठती पीड़ा को बर्दाश्त करके इसका नियंत्रण करने की क्षमता रखते हैं? मेहर उसकी गति जानती है इसीसे उसकी प्रतिज्ञा दबी ज़बान से निकलती है। क्या सचमुच वह अपने दिल पर क़ाबू कर सकेगी? देखिए, शायद!

बारहवाँ सर्ग

शेर अफ़ग़ान के सूबे में नरहर नामक एक धर्मपरायण कर्तव्यशील निर्भीक ज़मींदार रहता था। उसके एकमात्र धर्मधुरंधर ज्ञानवान पुत्र विमलराय के सदाचार की घर-घर चर्चा थी। देश में सूखा पड़ गया था और लोग दुर्भिक्ष से पीड़ित हो उठे। ऐसे कुसमय में जब सूखी रोटी मिलनी कठिन थी, जान के लाले पड़ गए थे, बेचारी दुखी प्रजा बादशाह की मालगुज़ारी कैसे चुकाती? शेर अफ़ग़ान का खज़ाना खाली था। उसके क्रोध का पारा चढ़ गया और मुल्लाओं ने आग में घी डाल-डालकर उसे और भड़का दिया। कहा, विमलराय रैयत को क्रांति सिखा रहा है। उन्हें बहकाकर उनमें असन्तोष के बीज बो रहा है। इस्लाम की क्षति कर कर वह अपने धर्म का प्रसार करता है और उसी की साजिश से प्रजा ने राजकर देना बन्द कर दिया है। इतना बस था। शेर अफ़ग़ान को सत्य की खोज से क्या मतलब? वह ज़माना था जब शासक की इच्छा-मात्र क़ानून थी और उसका ज़रा भी विरोध खून की नदियाँ बहा दिया करता था। शेर अफ़ग़ान को अपने बल का मद था, सेना की शेख़ी थी। मुल्लाओं का बढ़ावा पाकर, उनकी चुग़ली सुनकर उसके बदन में आग लग गई और झट फ़ौज लेकर उसने नरहर पर धावा बोल दिया। घरों को लूट लिया, उनमें आग लगा दी। बूढ़े नरहर को भी बुरी तरह धूल में पटककर घसीटा। उसके आदर्श बेटे विमलराय को पकड़कर कैद कर लिया और जंज़ीरों से जकड़कर कारागार में डाल दिया। फिर नंगी तलवार लिए उसके पास पहुँचकर बोला—ओ षड्यंत्रकारी ब्राह्मण, लोगों का सरग़ना बना उन्हें उभाड़-उभाड़ कर बागी बनाता है। उन्हें संगठित

कर अपने धर्म का प्रचार करता है और यहाँ भोला बना हुआ है?—

तू नहीं जानता मुझको, तुझको हलाल करता हूँ।
मैं अभी खून से तेरे यह ज़मीं लाल करता हूँ॥
जो तो तू हो जा मुस्लिम, जुन्नार तोड़ दे अपना।
क़लमा पढ़कर अब से तू दे छोड़ राम का जपना॥
तो मुमकिन है मैं तुझको हम मज़हब समझ न मारूँ।
या हो इंकार बता दे ख़ंजर के घाट उतारूँ॥

विमल सुनता रहा और परम शांति-पूर्वक हँसता हुआ श्रीभगवद्गीता के उपदेश का स्मरण करता हुआ बोला—

यह सर मेरा है हाज़िर मुझको मरने का क्या डर॥
तू मारेगा क्या मुझको मैं अमर, अनन्त, अजय हूँ।
तू काटेगा क्या मुझको मैं जल हूँ, अनल, मलय हूँ॥
मैं डिग न सकूँ आँधी में, पावक में नहीं जलूँगा।
शस्त्रों से नहीं कटूँगा, मैं जल में नहीं गलूँगा॥
यह तन विनाश तू कर दे, मैं वस्त्र बदल फिर लूँगा।
इस बंदीगृह को तजकर होकर स्वतंत्र विचरूँगा॥

फिर विमल शेर अफ़ग़ान को समझाता है—

यह नहीं खुदा को भाता है दया उसे भी प्यारी।
हा शोक! तुम्हारे शासन में यों हो प्रजा दुखारी॥
तुम-जैसे वीर प्रतापी का भूषण दया क्षमा है।
है जहाँ स्नेह का शासन बस रमती वहीं रमा है॥

हिंदूधर्म छोड़ इस्लाम ग्रहण करने की बात पर वह कहता है—

हिंदू मुस्लिम दोनों हैं राजा के लिए बराबर।
सद्भाव चाहिए रखना राजा को सब लोगों पर॥
वह न्यायमूर्ति बन बैठे डंडी फिर रहे बराबर।
पसँगा क्यों रहे ज़रा भी, मत झुके कहीं गरु लखकर॥
उस न्याय-तुला पर नृप के क्या धनी ग़रीब स्वजन क्या।
है खुदा सभी दुनिया का फिर उसमें अपनापन क्या॥

वह ज़र्रे ज़र्रे में है हर गुल में उसकी बू है।
यह सारा खेल-तमाशा जादूगर का जादू है॥
तब काबा को क्यों दौड़ो, मस्जिद में कैद करो क्यों।
मंदिर से उसे निकालो, प्रतिमा से व्यर्थ डरो क्यों॥
यह बुत है सारी दुनिया सब नदी पहाड़ लताएँ।
ये सर्वश्रेष्ठ मानवगण, ये माननीय महिलाएँ॥
सबमें है उसका जलवा, घूँघट का पट तुम खोलो।
सबको अपना आओगे, तुम हृदय-बाट से तोलो॥

स्वयं मेहर अपने पति की निठुरता से काँप जाती है और विमल-राय की बात का मर्म समझकर उसके बूढ़े बाप को दिखाकर, उसकी अधमरी बिलखती पत्नी सर्वसुंदरी की ओर उँगली उठाकर, बच्चे को दिखाकर शेर अफ़ग़ान को समझाती है—ज़रा रहम करो, इस बिलखते बूढ़े को देखो, उस मृतप्राया कातरा पत्नी पर रहम करो। उसके सुहाग की रक्षा करो, न सही धर्म के, मनुष्यता के नाते—

अपने को मिला दिया है जिसने उसकी हस्ती में।
अपने को मिटा दिया है जिसने उसकी मस्ती में॥
वह मस्त हुआ मौला में, मत उस ग़रीब को मारो।
है गूढ़ बात वह कहता, उस पर दे ध्यान विचारो॥

पर शेर अफ़ग़ान कट्टर मजहबी है और मेहर की सलाह ठुकरा कर कहता है—

मज़हब में तर्क नहीं है, है धर्म अक्ल से बाहर।
तुम दख़ल न दो कामों में मेरे, चुपके बैठो घर॥

फिर वह मेहर के पास से, हरम से, निकल पड़ा और बन्दीगृह में जा पहुँचा। विमलराय की निर्भीक हँसती मुद्रा अब भी उसको चुनौती दे रही थी और वह क्रोध से अंधा हो गया। काँपकर उसने अपनी तलवार का भरपूर हाथ बन्दी की गरदन पर मारा—

धड़, धड़ से गिरा धरा पर, सिर छटका छट से कटकर।
थी सर्वसुन्दरी मूर्छित, उससे रह गई लिपट कर॥

× × × ×

विमलराय का दीपनिर्वाण हो चुका, नरहर का सर्वनाश हो चुका और सर्वसुन्दरी की भरी जवानी में उसकी दुनिया उजड़ चुकी। प्रजा का प्यारा 'विमल' छिन गया और आततायी की तलवार बिजली की भाँति सबकी आँखों के सामने ही कौंध गई। अकबर-जैसे कुशल शासक के रहते प्रजा दुःख और वेदना से हाहाकार कर उठी। शेर अफ़ग़ान की क्रोधाग्नि ठंढी हुई और मुल्लाओं के मंसूबे कृतार्थ हो गए। जो एक मनुष्य का सर्वनाश है, निधन है, वही दूसरे का लाभ है, उसकी प्राप्ति है! कैसी अजीब दुनिया है यह!

सर्वसुन्दरी आज राह राह की भिखारिणी है। कल का भरा घर आज वीरान हो गया है। ललितकलाओं का प्रेमी यह बंग-परिवार अपनी प्रिय कलाओं को यहीं छोड़ अस्तव्यस्त हो खो गया। सर्वसुन्दरी का प्यार-भरा सुनहरा संसार मिट्टी में मिल गया। अपनी आँखों के सामने अपने प्यारे निर्भीक पति का हँसता मुख, जिसे सदा वह निरखा करती, देख-देखकर न अघाती, नृशंस मनुष्य के आघात से कट कर भुट्टे की तरह दूर जा पड़ा। हृदय की कितनी ही साधें, अधखिलीं, अधपकीं, उठीं और विलीन हो गईं। सदा के लिए प्यार का सोता कठोर चट्टान से रुक गया। उसके दुःख का आवेग कितना होता इसका अन्दाज़ कोई क्या लगाए, पर कवि ने चातुरी से उसका दुःख हमारी आँखों से ओझल कर दिया है। 'रतिविलाप' की भाँति सर्वसुन्दरी का विलाप हमें सुनाई नहीं पड़ता। पति का वध देख वह मूर्छित हो जाती है और आगे आनेवाले दुःख से क्षणभर के लिए उसको शांति मिल जाती है। निश्चय ही मृत्यु अथवा चेतनाहीनता किस प्रकार कष्टों का अन्त अथवा उनका थोड़ी देर के लिए स्तम्भन कर देती है। सर्वसुन्दरी भी मूर्छित हो गिर पड़ी है।

निश्चय सर्वसुन्दरी का रुदन हमें सुनने में नहीं आता, पर नीचे जो विश्वरुदन का चित्र कवि ने खींचा है वह बहुत दबा छिपा होने पर भी मर्म में बड़े घाव करता है। सन्ध्या हो चुकी है। संसार इस घोर पाशविकता और हृदयहीनता पर चुप दुखी है। पश्चिमी गगन का

वह बड़ा अंगारा सूर्य और उसके फेंके अगणित रश्मिरूपी अनन्त अंगारे झँवा गए। इस हत्यारे जगत के अन्याय से उनकी क्रोध से लाल आँखें स्वयं जलकर छार हो गईं। इधर उधर गिरनेवाले झरने, जिनका पानी सूर्य की किरणों से सुनहरा हो गया था, पुनः तारों के धुँधले प्रकाश में पिघलकर चाँदी की धार हो गए। कवि कहता है—

अंगारे पश्चिमी गगन के झँवा-झँवाकर छार हुए।
निर्झर खो सोने का पानी पुनः रजत की धार हुए॥

फिर इस अभागे निर्दय जगत के अत्याचारों को देख छाया भी अपने दिनपति के संग सोने चली गई। उसे अकेला रहना नहीं भाया, पति को अकेले छोड़ते नहीं बना, अद्भुत संसार है यह, कौन जाने क्या से क्या हो जाय—

रश्मिजाल से खेल-खेलकर आँखमिचौनी तरु-छाया।
सोने चली गई दिनपति सँग विलग नहीं रहना भाया॥

सारी प्रकृति शांत है, पर यह शांति श्मशान की, मृत्यु की शांति है, सो चराचर निसर्ग रो रहा है, शांत है—

दिन भर जो चुगती फिरती थी विहगावलि उड़ इधर उधर।
करने लगी बसेरा तरु पर धन्यवाद प्रभु का कर कर॥

जीवन बड़ा ही क्षणभंगुर है—

क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ—

क्षणभर जीनेवाला अपने को भाग्यवान समझे और इस संयोग-वश बचे जीवन के लिए सन्ध्या-समय अपने नीड़ में विश्राम लेने के पूर्व जीव भगवान का यश गाकर अवश्य उसका धन्यवाद कर ले!

इस धुँधले समय में, अमंगल वायु से बचने के लिए—

केवल एक काक का जोड़ा अभी, बहुत घबड़ाया-सा।
उड़ता हुआ चला जाता है धुँधले में काँ काँ करता॥

काक अमंगल, अशिव का रूप है, पर निश्चय इस अकल्याणकारी धुँधली संध्या में वह भी डरा हुआ भागा जाता है। Macbeth का (raven) केवल अशुभ की सूचना देता है पर काक का यह जोड़ा

अपने अमांगलिक रूप से स्वयं भयविह्वल है—उड़ता हुआ चला जाता है धुँधले में काँ काँ करता—क्या उसे बसेरा मिलेगा ?

नहीं बसेरा अभी मिला है पता न चलता काले में।
एक एक तरु देख रहा है ऊपर से अँधियाले में॥

सभी घरों के दरवाजे बंद हैं। सर्वसुंदरी के सर्वनाश ने सबके हृदय को दहला दिया है। यह काक का जोड़ा, अशुभ की मूर्ति, एक-एक घर में झाँक-झाँककर देख रहा है। कवि यहाँ कुछ भेद-भरे अदृष्ट रहस्यों का—अनजाने मिस्टीसीज़्म (Mysticism) का—दबा विश्लेषण कर रहा है। और पक्षी तो इस शेर अफ़ग़ान की हत्यारी कृति की भयंकरता से डरकर अपने घोंसलों में जा घुसे हैं पर ये कौए किस कारण अब-तक इस अँधेरे में अटके हुए थे—

पिछड़ गए थे खाने में कुछ नभ-पथ में आते आते।
इसीलिए वायस बेचारे सन सन हैं उड़ते जाते॥

बड़ा भयावना रहस्य इन पंक्तियों में निहित है। प्रातः अपने नीड़ों को छोड़ सभी पक्षी चारे के फ़िराक़ में दिनभर उड़ा करते हैं और दाना चुगकर फिर संध्या-समय अपने घोंसलों में बसेरा करते हैं। ये कौए भी सुबह दानों के लिए निकले थे। सब तो आ गए पर ये कहाँ पिछड़ गए थे ? खाने में। पर क्या खाने में ? कवि कहता है 'कुछ'। यह 'कुछ' क्या है ? आमिष-लोलुप इन अशिव रूप कौओं का 'कुछ' क्या है ? वह जिसको इशारा करते हृदय काँप उठता है और स्वयं पाशविकता मानवता की बनावटी, मिथ्या कारुणिकता पर बिलख उठती है। यह 'कुछ' नृशंस शेर अफ़ग़ान के करवाल से दो टुकड़े हुए सर्वसुंदरी के सर्वस्व विमलराय का निर्जीव शरीर-पंजर है—

पिछड़ गए थे खाने में कुछ नभ-पथ में आते आते।

नभ-मार्ग में उड़ते बसेरे के लिए आते इन कागों की नज़र उसपर पड़ गई थी और वे उतर पड़े थे। पर इस क्रूरता की कालिमा उनके अंतर में पैठकर तन के ऊपर उतर आई है। चिरायँध की गंध से नाक

दबाकर मुँह फेरकर अपने अपराध से सचेत वे 'सन-सन' उड़ते जाते हैं—कोई देख न ले, कोई कुछ कह न बैठे।

इस नृशंसता को देख, इस हत्या की निरर्थकता को देख सारा निसर्ग जैसे सन्न हो गया है—

दम साधे सब वृक्ष खड़े हैं पत्तों की रसना है बंद।
आती है विभावरी रानी खोले श्यामल केश स्वच्छंद॥

रात्रि भी अशिव है और फिर वह तो अपने काले केश भी खोले आ रही है। वह स्वच्छंद है और रात्रि के वाममार्गी ही उसके सहायक हैं। इस सार्वजनिक नीरवता में—

मधुप कुसुम से बात न करते, तितली पर न हिलाती है।
निद्रा सबकी आँख बंद कर परदा करती जाती है॥

इस नीरवता में जहाँ सभी भयातुर हो रहे थे, इस विभावरी रानी का प्रहरी कौन है? अशौच की प्रतिमा वह 'कमला-वाहन'—उलूक!

कमलावाहन बना संतरी तुरत डाँटता आँख निकाल।
रजनीगंधा की कलिका जो चिटकी कहीं फुलाकर गाल॥

आज की रात तो चिरायँध की महक सूँघेगी रजनीगंधा का क्या काम—

तारे नदी-सेज पर सोए थपकी देने लगी लहर।
रुँधा गला मोथा सिवार से सरिता का धीमा है स्वर॥
कटे करारे से लटकी है गाँठदार कुश तृण की जड़।
मंद पवन में भी जो हिलकर करती हैं खड़खड़ लड़लड़॥
अँधियाले में नाव कभी रेते पर जब जाती है टिक।
जड़ें पकड़कर ज़ोर लगाता गोन लिए बढ़ता नाविक॥

कौन है यह अर्धरात्रि में नाव खींचकर ले जानेवाला माँझी? किसकी पुण्यरूपी गाय उसे इस वैतरणी के पार ले जा रही है? कौन इस भयंकर निशीथ में यात्रा कर रहा है? विमल?

क्या ही विकट समय है!

दूर ग्राम से भों भों की ध्वनि, पास खेत से हुआँ हुआँ।
शांतिभंग करता है रह रह, लगा फैलने धुआँ धुआँ॥

इस श्मशान की विभीषिका में, जहाँ काला धुआँ उठ उठकर फैल रहा है, श्वान और शृंगाल शांति को भंग कर रहे हैं—

एक चिता की क्षीण ज्योति में मूर्च्छित कोई है उस पार।
धूमिल दृश्य हुआ सब तट का, अंधकार उसका संसार॥

कौन है यह अभागा व्यक्ति जो इस चिता की क्षीण अशुभमयी ज्योति में मूर्छित पड़ा है? किसका अंतरंग इस सरिता के अस्पष्ट तट की भाँति ही धूमिल हो उठा है? इस काली रजनी की श्याम चादर फाड़कर क्या फिर उषा चमकेगी? क्या इस घोर निशा का अंत होगा और प्रभात उठकर इस आघात की याद बिसरा देगा?

तेरहवाँ सर्ग

सलीम आज सम्राट् जहाँगीर है। सारी सल्तनत उसके इशारे पर नाचती है। बड़े बड़े सेनानायक, अमीर, उमराव उसके कृपा-कटाक्ष के अभिलाषी हैं। पार्थिव, भौतिक उपकरणों से मनुष्य को जो सुख हो सकते हैं वे सभी उसे प्राप्त हैं। विभूतियाँ उसकी चेरी हैं, पर वह फिर भी सुखी नहीं है। उसका एक कोना अब भी खाली है जिसका सूनापन उसे दिनरात खला करता है। वह स्वयं अपनी विभूतियों का सिंहावलोकन करता है—

सम्राट् आज हूँ भारत का, हैं सब विभूतियाँ भरी हुई।
आनन्द-अर्क का उदय हुआ निःशेष क्लेश-शर्वरी हुई॥

पर मेहर को जो उसने खो दिया है वह क्षति कुछ ऐसी नहीं जिसकी पूर्ति सम्भव हो। जहाँगीर कहता है—

सब सुमन विश्व के चुने हुए महलों में मेरे फूले हैं।
इन रत्नों के रत्नाकर में मन के तरंग के झूले हैं॥
फिर भी रह-रहकर मेरा मन क्यों उचट-उचट-सा जाता है।
बढ़कर कुछ तट की ओर तुरत भाटे में हट-सा आता है॥
इस वैभव में भी कमी किसी की मुझको अभी खटकती है।
जिसके वियोग में सुख-सामग्री सारी फीकी लगती है॥

... ...

यह राजपाट सिंहासन सब धन मिलकर उसका मोल नहीं।
मम हृदय-बाट को छोड़, नयन-काँटों में उसकी तोल नहीं॥

... ...

मनवांछित रस-विलास दुर्लभ सब सहज हो गया मेरा है।
पर उस दीपक के बिना हृदय-अन्तःपुर हुआ अँधेरा है॥

फिर पुराने प्रेम की स्मृतियाँ जाग-जागकर जहाँगीर के वक्ष में उठती हैं—

है बाग वही जिससे हम फूलों की कलियाँ चुन लाते थे।
है नहर वही जिसमें कल हम शिशुपन की नाव चलाते थे॥
है कुंज वही जिसमें छिपकर हम आँख-मिचौनी खेले हैं।
है सब समाज सुन्दरियों का फिर भी क्यों आज अकेले हैं॥
उस झूले की पेंगें अब तक मन को दोलित करती रहतीं।
हर तरु के पत्ते की रसना विस्मृति-रहस्य गा गा कहती॥
वह पारावत क्या पाऊँगा जो मुझे फँसाकर गया निकल।
हा अब तक सब उद्यम मेरे कर दिए भाग्य ने हैं निष्फल॥

इस प्रकार इस सुख-वैभव के समय मेहर की याद जहाँगीर के हृदय में और भी जाग उठी है और वह एक एक कर सभी अतीत स्मृतियों का स्मरण करता है। जहाँगीर के सब साधन व्यर्थ हुए हैं और वह मेहर को नहीं अपना सका, पर अब किसी न किसी युक्ति से उसे अपनाएगा। बिना उसके उसका सारा संसार सूना है। जीवन का उद्देश व्यर्थ प्रतीत होता है। अब तक वह उचित मार्ग का अवलम्बन कर अपने कार्य की सिद्धि के अर्थ प्रयत्न करता रहा है, अब वह उचित-अनुचित सारे साधनों की शरण जाएगा। नाहर सिंह नामक एक विश्वासपात्र और साहसी सैनिक को बुलाकर उसे सेनानायक बनाने का और बहुत धन देने का लालच दिखाता है। इसलिए कि—

मेरे मग का इक काँटा है बस उसको दूर हटाना है।

जहाँगीर प्रेम का दीवाना हो गया और उसमें विवेकाविवेक का कुछ भी विचार नहीं रह गया है।

× × ×

नाहर सिंह अपने घर जाकर अपनी स्त्री से विदा माँगता है और कहता है, सम्भव है इस कार्य में मेरे प्राण भी चले जाएँ। उसकी स्त्री वीर-रमणी और मनस्विनी है। पति के आचरण पर उसे बड़ा क्षोभ होता है और वह उसे बड़ी फटकार बताती है—

अगर युद्ध है तो तुम जाओ विजय प्राप्त कर आओ।
वीर-धर्म का पालन करके जीवन अमर बनाओ॥
फहराते जब विमल पताका लौटोगे हे प्यारे।
गर्व-सहित आरती उतारूँ पूजूँ चरण तुम्हारे॥
मरना हो तो मरो देश पर पराधीनता काटो।
नहीं स्वार्थ के लिए देशद्रोही का तलवा चाटो॥
राना सा दाना-दाना को तरसो चाहे बन में।
पर जीते जी पड़े न पीछे पग स्वतंत्रता-रन में॥
मरना हो तो मरो जाति पर अरियों से लोहा ले।
मातृभूमि की धाक जमा दो अपना बल दिखला के॥

इस प्रकार वह पति को फटकारती है। राणा प्रताप का स्वदेश की सेवा में भूखों बन-बन घूमना अभी ताजा था। अभी हाल ही वह शिशोदिया-वंशावतंस जीवनभर मुग़लसाम्राज्य को ललकारता रहकर शान्त हुआ था और उसकी स्मृति हिन्दुओं के हृदय पर गहरी चोट की भाँति ताज़ी बनी हुई थी। राणा की याद दिलाकर नाहरसिंह की पत्नी पति को धिक्कारती है। नाहर भी लज्जित हो जाता है और अपनी भूल पर पछताता है। फिर भी जहाँगीर के राज्य में रहकर उसी से बैर करना साँप से खेलना है, इसलिए उसने—

पत्नी को ले, पता नहीं किस देश, रास्ता नापा।

चौदहवाँ सर्ग

जहाँगीर के प्रयत्न निरंतर असफल हुए जा रहे हैं और साथ ही उसके प्रेम की ज्वाला और बढ़ती जा रही है। दिन रात वह मेहर की ही चिंता में मग्न खोया रहता है। रात दिन में लय होती है और दिन रात में, पर जहाँगीर के लिए कोई अंतर नहीं होता। जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते हैं उसकी व्यग्रता बढ़ती जाती है और स्त्रीत्व उसके लिए एक अजीब पहेली-सा प्रतीत होता है—

क्या सब ललनाओं का मानस विरचा है पत्थर से ।।
नारी के मन का रहस्य मैं अब तक समझ न पाया।
विद्युत्धारा सी अदृश्य है प्रिया-प्रेम की माया ।।
ध्रुव-सा स्वयं अचल रहकर भी वह प्रवाह फैलाती।
फिर जग-मानस-सुई विवश हो सदा उधर को जाती ।।
तो विद्युत का केंद्र स्वयं चुम्बक ही मुझे बनाकर।
आकर्षित हो गया और से मेरी ओर न आकर ।।
रमणी - हृदय सरस होता है, कैसे प्रेम दिखाकर।
आँख लगाकर आँख बदल दी उसने आँख चुराकर ।।
सम्राज्ञी होने की इच्छा प्रेम विलास विभव भी।
सका न कर उसका मन चंचल क्या है यह संभव भी ।।
जो कुछ भी हो उस कठोर ने ऐसा रंग दिखाया।
उसके हृदयाम्बुधि की अब तक थाह नहीं है पाया ।।
राज अंशुमाली, पृथ्वी - सिंहासन - सुख दोनों क्या?
शशि - मुख पर हैं नहीं डालते चंद्रग्रहण की छाया?
ईश्वर जाने, पर उस शशि ने बीच मार्ग में आकर।

किया अँधेरी दुनिया मेरी ग्रस आनंद-दिवाकर ॥
करने पर कितना प्रयत्न भी नहीं भुला मैं पाया।
उसके बिना मुझे फीकी लगती है जग की माया ॥

इस प्रकार के अद्भुत स्त्री-हृदय ने जहाँगीर का मन चुरा लिया है और उसका स्वभावतः असंयत मानस बेबस बड़ी उम्मीदों के साथ मेहर की ओर लगा सदा उसी की चिंता में पागल हो रहा है। क्या वस्तु है यह रमणी-हृदय ? कितना रहस्यमय है वह ! आखिर उसको वह किस प्रयत्न से अपनी ओर खींच सकता है, जहाँगीर इसी में दत्त-चित्त है। साम्राज्य के वैभव, राज्य के ऐश्वर्य, कोई भी ऐसी मानवी दुर्बलता मेहर को नहीं आकर्षित करती, इस प्रकार की कोई भी भौतिक सत्ता उसका शिकार नहीं करती। एक-से-एक काश्मीर-सुमन उसके हरम में खिले, मुँह खोले उसके कृपा-कटाक्ष के लिए अवाक् हो उसकी ओर एकटक देखते रहते हैं, वह किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। इन सबका हृदय बिलकुल ही साधारण है, समझने में कुछ देर नहीं लगती। फिर मेहर का मन चलायमान क्यों नहीं होता? मेहर की दुश्मन जमीला सदा उसके पास बनी रहती है और निरंतर उसे मेहर के सूखेपन को दिखाकर उसका चित्त उसकी ओर से हटाकर अपनी ओर लगाना चाहती है, पर जहाँगीर का उसकी ओर खिंचना तो दूर रहा, उलटे वह मेहर के प्रेम और उसकी विरह की कथा, उसका दुःख, उसका अभाव जमीला ही से कहता रहता है—

कैसे करूँ उसे पाऊँ मैं, तू ही बता जमीला।
नहीं समझ पाया हूँ अब तक उस रहस्य की लीला ॥

जमीला बराबर जहाँगीर से प्रेम का बखान करती रहती है, आज भी वह कहती है कि यदि मेहर को हृदय होता तो वह आपकी अवस्था पर आपके चरणों में तन-मन सब कुछ न्योछावर कर लोट जाती। प्रेम तो वह है जो अपना सब कुछ अपने प्रणयी के ऊपर निसार कर दे। प्रणयिनी वह है जिसके लिये प्रणयी की अनुपस्थिति में उसका जीवन भी भार हो जाय और जो उसके इशारे पर मर जाने को तैयार

रहे। जहाँगीर जमीला की यह बात रोज उसके मुँह से सुनता है और उसे विश्वास है कि जमीला का एक एक शब्द मिथ्या है। वह केवल सत्ता को प्यार करती है, जहाँगीर को नहीं। मनुष्य को प्यार करना जमीला की ज़ात से बाहर की बात है। और वह एक भारी मज़ाक़ के लिए तैयार हो उठता है। आखिर उसी के मुँह पर उसकी प्रेयसी की नित्य प्रत्यालोचना और अपने प्रेम का बखान उसे खलने लगा होगा। जहाँगीर ने अपनी मुख-मुद्रा गम्भीर बनाकर जमीला से पूछा कि क्या वह सचमुच ही सुख-सम्पत्ति की ममता तजकर उसे प्यार करती है। मेहर क्या सचमुच हृदयहीन है और जमीला क्या वास्तव में अपना हृदय दिखाएगी ? क्या वह सचमुच जहाँगीर के एक इशारे पर मर जाएगी ? पूछता है—

खूब सोच ले प्राण हथेली पर ले प्रणय दिखाना है।
अभी समय है हृदय तौल ले पीछे फिर पछताना है ॥

जमीला का उत्तर तैयार है—

कहा जमीला ने "यदि मुझको अपनावें सप्रेम सरकार।
लाख बार मरने को मैं तो दिलोजान से हूँ तैयार ॥

जहाँगीर ने झट कुछ सशस्त्र सेवक बुला लिए और कहा तलवारें नंगी कर लो और जैसे ही मैं इशारा करूँ जमीला का सिर धड़ से अलग कर दो। नंगी तलवारें भयानक खोजों के हाथ में देखते ही जमीला के देवता कूच कर गए और वह झट जहाँगीर के पैरों पर गिर पड़ी—

कहा, "कीजिए क्षमा मुझे अब, बख्श दीजिए मेरा सर" ॥

फिर जमीला के नीचे के वक्तव्य में कवि हल्के परिहास (humour) की सृष्टि करता है—

प्रेमी और प्रेमिका जैसे जीते-मरते हैं सौ बार।
वैसे ही ज़ुबान ही से मैं भी मरने को थी तैयार ॥
भौंहों की तलवारों ही का अभी तलक सुनती थी नाम।
आज पड़ा लोहे से पाला, तलवारों से भी अब काम ॥

जहाँगीर जमीला की बात सुन मुस्कुरा देता है और कहता है कि मुझको छोड़ने से जिसमें तुम्हारी वासना अधूरी न रह जाय मैं तुम्हें उपहार में किसी को देता हूँ—

कुतबुद्दीन बना मजनूँ वह प्यार तुझे जो करता है !
उदासीनता से तेरी जो आहें अब तक भरता है ।।
जा उसके ही संग अक़्द तेरा पक्का कर देता हूँ ।
बड़ा जौहरी उसे समझकर तुझ सा गौहर देता हूँ ।

फिर उसने कुतबुद्दीन को बुलाकर जमीला का हाथ उसके हाथ में देकर कहा—

कुतुब बधाई ! तुम्हें नियुक्त किया ढाका का हाकिम आज ।
अब तुम दोनों शीघ्र वहाँ जा मिलकर करो चैन से राज ।।

एक नृशंस अभिलाषा ने जहाँगीर के मस्तिष्क में बिजली-सी कौंध कर उसके हृदय पर झट अधिकार कर कुतुब को ढाका का हाकिम बना दिया । ढाका जाने पर क्या होगा ? शेर अफ़ग़ान और कुतुब की मुठ-भेड़ ! शेर अफ़ग़ान के अत्याचारों की कथा आगरे तक पहुँच चुकी है । विमलराय का मारना कुछ आसान नहीं था । जहाँगीर कहने लगा—

अत्याचारों से शेर अफ़गन के सब प्रजा दुखारी है ।
कितनों ही का ख़ून बहा उत्पात मचाया भारी है ।।
असंतोष की आग लगी, सब हाहाकार मचाए हैं ।
विमलराय की हत्या की फ़रियाद यहाँ तक लाए हैं ।।
उस अफ़गन को सुबुकपोश कर ले लेना सूबे का भार ।
और मेहर को समाचार सब समझा देना भले प्रकार ।।

मेहर की ओर उसे इशारा करना ही पड़ा क्योंकि उसे मालूम था कि शेर अफ़ग़ान से सूबा लेना कुछ आसान नहीं । वह जानता था, ख़ून-ख़राबा होगा और अन्त में मेहर अकेली हो जाएगी । शेर अफ़ग़ान के मारे जाने के सभी साधन यहाँ मौजूद हैं फिर भी जहाँगीर उसकी हत्या के लिए दबे—बहुत ही दबे—इशारे करता है—

उस अफ़ग़न को सुबुकदोश कर, ले लेना सूबे का भार,
और मेहर को समाचार सब समझा देना भले प्रकार।

फिर उसने संदेश भी मेहर के लिए कह डाले—

यदि विदेश में स्वजनों से मिलने को वह घबड़ाती हो,
या अफ़ग़न के दुर्व्यवहारों से पछता रह जाती हो।
तो प्रबंध कर उस दुखिया को यहाँ भेज देना फ़ौरन,
हाल चाल भी सब लिख देना लगा रहेगा मेरा मन।

जमीला सब सुनती थी सबका मर्म समझती थी, व्यक्त और अव्यक्त दोनों का। कुतुब भी समझता है पर जो कुछ बाकी रह जाएगा जमीला उसे समझा देगी। अभी तो वह भली, सीधी दुलहिन का नाट्य कर रही है—

रही अचंभित खड़ी जमीला पद-नख से लिखती भू पर,
आज्ञा पा, ले प्रिया संग में, चला कुतुब, अभिवादन कर।

जमीला अचंभित हो गई—जो काम नाहरसिंह नहीं कर सका अब उसके पति को करना होगा। उसने समझा जहाँगीर ने बड़ी चालाकी से एक वार में दो पच्छी मारे। कुतुबुद्दीन उस पर एक ज़माने से लट्टू था पर वह बात नहीं सुनती थी, आँख उठा कर उसकी ओर नहीं देखती थी, उसकी आँखें आसमान में लगी थीं। आज कुतुब कितना सुखी है जमीला को पाकर और उसे देने वाले के प्रति कितनी कृतज्ञता है उसको! बड़ी ख़ुशी से वह जहाँगीर के इशारे किए काम को करेगा। जमीला ख़ूब समझती है कि इसका अन्त मेहर की सिंहासन प्राप्ति में भी हो सकता है पर वह बणिक स्वभाव वाली है। जब उसने देखा उसके जहाँगीर की अंकशायिनी न हो सकने पर भी अपना कुछ स्वार्थ सिद्ध नहीं होता और अब तो वह उसी का सुख मिट्टी में मिलाने, उसे विधवा कर उसका राज्य हड़प लेने जा रही है तब उसे और चाहिए ही क्या था?

× × ×

जमीला अपने नये सम्बन्ध से सुखी है। वह कहती है—

क्या चमका भाग्य-सितारा है जो मन माँगी मुराद पाई,
मिल गये कुतुब शौहर मुझको क्या खूब तमन्ना बर आई।

कुतुब उमर में काफ़ी बड़ा है पर उसकी उमर जमीला को खलती नहीं। वह और प्रसन्न ही है। अगर उसका उल्लू सीधा होता हो, उसकी और मुरादें बर आती हों तो उसे परवाह नहीं कि उसका शौहर नौजवान है या बूढ़ा। बड़ी .खुशी से वह अपने प्यारे शौहर की तस्वीर खींचती है और उसकी एक एक कमी की कैफ़ियत, जवाब, देती है—

है उम्र नहीं ऐसी ज़्यादा, गो खिचड़ी बाल पकाए हैं,
उनकी दाढ़ी के बालों ने बस चालिस जाड़े खाए हैं।
दुनियाँ का उनको अनुभव है वह कभी नहीं गरमाते हैं,
बातें क्या लातें भी खा कर वे गुस्से को पी जाते हैं।
मुझको भी .खूब मज़ा आता है रूठ रूठ तरसाने में,
फिर बात बात में उलझ उलझ कर उन पर रोब जमाने में।

जमीला ने अपना असल रूप, प्रकृत स्वभाव, नीचे के वक्तव्य में झलका दिया—

उनकी आँखों में बस करके गुलछर्रे खूब उड़ाऊँगी,
अपना उल्लू सीधा करने को बुलबुल उन्हें बनाऊँगी।

फिर वह तरुणी स्त्रियों के युवक सम्बन्ध को धिक्कारती है—

दासी बन कर सेवा करने, कैदी बन कर घर में रहने,
है कौन बावली जो जायेगी युवक संग सब दुख सहने?
इससे मेरा अनुभव मानो, युवती बूढ़े से ब्याह करो,
फिर कौन पूछने वाला है चाहे सफ़ेद या स्याह करो।
मेरी तो पाँचों घी में हैं, अच्छी मेरी बन आई है,
मेरी तूती अब बोलेगी किस्मत को लाख बधाई है।

जमीला फिर मेहर के अभाग्य-सी उसके भाग्याकाश में काली घटा बन कर उठ रही है। मेहर का जीवन तो वैसे ही दुखमय है—सारी साधें उसकी निष्फल रहीं और उसकी छाया छूकर जहाँ लोग अपने को धन्य मानते वहाँ वह अहर्निश ठुकराई जा रही है। साधारण

दाम्पत्य जीवन तक, जिसकी उसने अन्त में हार कर कामना की थी, उसका नहीं है और वह अत्यन्त अशान्ति में अपने दुख के दिन काट रही है पर अब भी उसका दुर्दैव उसकी दशा से सन्तुष्ट नहीं, उसकी ओर से निश्चिन्त नहीं। जमीला के रूप में वह स्वयं मेहर के भाग्याकाश में उदय होता है। मेहर का दुख अभी काफ़ी नहीं है उसे अभी बहुत कुछ झेलना है। सूखी रोटी भी सुख से उसे नसीब न होगी। सूखा नीरस पति भी उसके लिए वह ऐश्वर्य भोग है जिसे उसके प्रतिद्वन्द्वी बरदाश्त नहीं कर सकते और चारों ओर से अदृष्ट दुर्दैव की दुरभिसन्धियाँ उठ उठ कर उसकी ओर प्रस्थान कर रही हैं, सम्भव है सारी एक साथ मिल कर बवण्डर बन उसे उस चट्टान से टकरा दें जिसकी उसने कभी इस विपत्ति में भी कल्पना न की थी। सारे योग उसके विरुद्ध पड़ते हैं, कुल ताक़तें उसके विपक्ष में हो उसे खाने दौड़ रही हैं, देखें उसे कहाँ ले जा पटकती हैं।

पन्द्रहवाँ सर्ग

"शेर अफ़ग़न से सूबा लेना काम नहीं कोई आसान,
तुमने क्या सोचा है मैं चुपके सह लूँगा यह अपमान?"

पन्द्रहवाँ सर्ग शेर अफ़ग़ान के शौर्य और कुतुब की कूटनीति का परीक्षास्थल है। शेर अफ़ग़ान को ढाके की सूबेदारी पर स्वयं मुग़ल सम्राट अकबर ने बिठाया है और यह पदरूपी फल उसने राजवृक्ष को अपने रक्त से सींच सींचकर पाया है। आखिर, उसे ताज्जुब है, उसने कौन सा षड्यन्त्र रचा जिससे उसी अकबर के सुपुत्र ने उसको इस पद से हटाने के लिए सेना के साथ हुक्म भेजा है। खैर जब तक उसे जहाँगीर ने अपना जाना वह राजभक्त बना रहा और आज यदि वह उसे विद्रोही समझता है तो वह भी अपने को स्वतन्त्र समझेगा—

विद्रोही मैं? जिसने कठिन परिस्थिति में निज भुजबल से
राजपताका उड़ती रक्खी लोहा ले ले अरि दल से।

दुर्भिक्ष तक में फ़ौलाद का कलेजा कर ज़ुल्म और हत्या का श्रेय अपने मत्थे लेकर प्रजा के सारे आन्दोलनों को कुचलकर उसने राजकोष भरा आज वही राजा उसकी सेवाओं के बदले, उपहार के रूप में, उसे विद्रोही समझ रहा है—

अच्छा तो मैं विद्रोही हूँ राजद्रोह को हूँ तैयार।

फिर वह कुतुब की ओर मुख़ातिब होकर व्यंग भरे शब्दों में कहता है—

कुतुब! समझ कर क्या तुम ढाके का हाकिम होने आए?
अपनी दाढ़ी की इज़्ज़त तुम व्यर्थ यहाँ खोने आए।

झट फिर गुस्से में भरे उसके शब्द निकल पड़ते हैं—

फिर जाओ, जाकर कह देना बाग़ी अफ़ग़ान का संदेश,
मुझे हराकर समर भूमि ही में अब कोई लेगा देश।
यह तलवार, फ़ौज सब मेरी, निर्णय इसका कर देगी,
आए कोई शक्ति, रक्त से पृथ्वी सारी भर देगी।

इस वक्तव्य से उसके सैनिकों में अवश्य अपने वीर सेनापति के प्रति जोश उमड़ पड़ता पर कुतुब कूटनीति में पारंगत है और बड़ी ही चालाकी से उन सैनिकों में शेर अफ़ग़ान के प्रति अविश्वास और सम्राट के प्रति सेवाभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है—

कहा कुतुब ने, "सच है भाई, ये सिपाह हैं बड़े दिलेर,
नहीं समर में पीछे हटनेवाले हैं ये सैनिक शेर।
पर ये क्या अपने ही राजा पर तलवार चलावेंगे?
खाकर नमक राज का संभव नहीं भूल यों जावेंगे।
परवाना हैं जहाँगीर का यह है शाही लगी मुहर,
इसके ही अनुसार यहाँ आया हूँ मैं सूबा होकर।

शेर अफ़ग़ान कुतुब की बातें सुनकर तमक उठता है और मरने मारने को तैयार हो जाता है पर निरीहों पर हाथ चलानेवाले उसके सिपहसालार कावा काटने लगते हैं और आगे का दृश्य दरबारी वीरों Carpet knights का अच्छा मज़ाक उत्पन्न करता है। शेर अफ़ग़ान ललकारता है—

मीर मुअज़्ज़म! सेनानायक! दिखला दो फिर अपने हाथ,
कह दो, सेना तलवारें नंगी कर आवे मेरे साथ।

पर मीर मुअज्ज़म मुकर जाता है—

नमस्कार कर कहा मीर ने, क्षमा कीजिएगा, सरकार,
हुक्म बजा लाने में मुझको कभी नहीं होता इनकार।
पर हूँ विवश, राजसेवक हूँ, जहाँगीर के मैं प्रतिकूल,
नहीं कभी भी चल सकता हूँ चाहे आप करें यह भूल।

शेर अफ़ग़ान ने मीर को एक अदने सिपाही से नायक बनाया है पर उसके ज़बान पर उसे ताज्जुब होता है। फिर वह अपनी सेना की ओर मुड़ता है और उसे भी कुतुब के खिलाफ़ अपने पक्ष में लड़ने को उत्तेजित करता है पर उसकी सेना मूक, किंकर्तव्यविमूढ़, खड़ी है। उसके सूबेदार का हुक्म और है, सेनानायक कुछ और कहता है और कुतुब सम्राट के फ़रमान के बल पर आज ही से सारे बंगाल का अधि-

पति है। फिर वह किसकी सुने। चुप है। फिर शेर अफ़ग़ान अपने दरबारी, मुसाहिबों की ओर मुख़ातिब होता है—

ज़ुलफ़िक़ार, अहमद सईद, हाफ़िज़ मुराद ख़ाँ, नूरुल ऐन,
जाफ़र अली, अमानुल्ला, रमज़ान मुहम्मद, ज़ुलकर नैन।
मियाँ ज़करिया, यूसुफ़ अधमी, सैयद अली क़ुरैशी आदि,
दम भरते थे सदा, आज दिखलाओ हाथ, करें ये याद।

पर ये मुसाहिब लड़नेवाले सूरमा नहीं थे। जंग के नाम से उनकी रूह काँपती थी—

सुनते ही यह, लगा सबों का जी, डर से करने धक धक,
कुछ तो बगलें झाँक झाँक कर चुपके ही से गए सरक।
कुछ थर थर कँपते ही बोले—मैं तो कब से हूँ बीमार,
मुझे हौल दिल होता है इससे लड़ने से हूँ लाचार।
कहा एक ने मैं ख़ादिम हूँ, दोनों हो हाकिम मेरे,
लगे बीच में टाँग अड़ाने किसको है शामत घेरे।
दो शेरों में जंगजदल हो वहाँ गीदड़ों का क्या काम,
उन हज़रत का औ' हुज़ूर का बड़ा दिलेरी में है नाम।
दोनों में हो, खड़ा दूर से मैं भी दुआ मनाऊँगा,
मैं गुलाम हूँ, जो जीतेगा उसका ही गुन गाऊँगा।

यहाँ कवि ने दरबार में बैठे ऐयाश, सुस्त, कायर मुसाहिबों की तस्वीर खींची है जो काफ़ी humour पैदा करती है। एक एक को बारी बारी से वह भूले शेर अफ़ग़ान के सामने लाकर उसकी आँखें खोल देता है—

बोला एक सही है मुझ पर थी हुज़ूर की बड़ी निगाह,
क्या बतलाऊँ अभी हाल ही में मेरा है हुआ विवाह।
मरूँ छोड़ कर किस पर अब मैं नई नवेली दुलहिन को?
वह जी नहीं कभी सकती है मेरे बिना एक क्षण को।
इससे मैं असमंजस में हूँ 'तीन-राह' पर भूला मन,
दोनों हैं सरदार उधर औ' इधर प्रिया का आकर्षण।

'दो राह' के पथिकों की बात तो सुनी गई है पर इस मुसाहिब की 'तीन राह' निराली' है। मौलाना हाशिम नोमानी जो रोज़ शहीद हुआ करते थे, धर्म के नाम पर जो पाप के बीज बोते थे, शेर अफ़ग़ान को उकसा उकसा कर उससे नित्य निरीहों का ख़ून बहवाया करते थे और अपनी स्वामिभक्ति पूर्ण मैत्री की डून हाँका करते थे—

वह भी बोले, क़सम ख़ुदा की हज करने को हूँ तैयार,
राह ख़ुदा में ख़ून ख़राबा अब करने से हूँ लाचार।
हिन्द छोड़ कर जाता हूँ छानूँगा अरब देश की ख़ाक,
दुआ करूँगा सदा सलामत रक्खे सबको अल्ला-पाक।

अपने मुसाहिबों की यह दशा देख शेर अफ़ग़ान को सन्न मार गया। वह अपने भाग कोसने लगा—आज उसका कोई साथी नहीं, अभी कल ही सारी दुनियाँ उसकी थी। समय बदलते ही सारी दुनियाँ बदल गई। अपने मित्रों का उसे बड़ा गर्व था, उसी मद में वह भूला हुआ था। उसके ख़ुशामदी दोस्तों ने ही उसे आज का दिन दिखाया है। आज उसकी आँखें खुल गईं। आज वह इस बात को समझता है कि अगर प्रजा के साथ वह होता तो आज वह भी उसकी हो सकती थी और वह उसके सहारे खड़ा हो सकता था फिर तो वह कुतुब के इन सिपाहियों का रंग फीका कर देता। पर अभाग्यवश, वह आज स्वयं स्वीकार करता है, दुखी रैयत को उसने इस क़दर पीसा है कि उसका दिल भारी रंज से भर गया है। मेहर ने कितना उसे समझाया था पर उसने उसकी एक न सुनी। आज वह अपनी भूल पर आप ही पछताता है और हार कर वह अपनी हुकूमत की मुहर कुतुब के सुपुर्द कर देता है—

मैंने ग़लती मानी अपनी, कुतुबुद्दीन मुहर यह लो,
तुम्हें हुकूमत रहे मुबारक, इन सबसे हुशियार रहो।

शेर अफ़ग़ान अन्तःपुर में जाकर मेहर के पैरों पर अपना सिर रख देता है और उससे अपने सारे अपराधों की क्षमा माँगता है। उसका यह परिवर्तन देख मेहर का चित्त-कमल खिल उठता है और

दोनों इस कृतघ्न संसार से नाता तोड़ बर्दवान में कुटी बनाकर रहने के लिए अपना सारा सुख वैभव छोड़ कर चल देते हैं। राह में इन्हें एक योगिनी मिलती है जो रास्ता रोक कर खड़ी हो जाती है—

आँखें लाल, भाल पर अलकें बिखरीं छिटकीं पड़ीं हुईं।
उस सिंदूर विहीन माँग में रज थी केवल भरी हुईं,
भूषण रहित देह की थीं इच्छाएँ सारी मरी हुईं।
वस्त्र गेरुए में छन छन के फूट रही थी व्याकुलता,
पतझड़ के पीले पत्तों से भूषित थी वह मंजु लता।

शेर अफ़गान उसे पहचान गया पर मेहर ने न पहचाना। भयातुरा हो उसने अपने पति की बाहों का सहारा लिया। इधर—

दाँत पीस कर तड़प उठी वह, दृग से निकले अंगारे—
ओ पापी, ओ महामदो, यों चला कहाँ अब मन मारे?
वह तेरी तलवार कहाँ है? सेना कहाँ, कहाँ वह राज?
एक भिखारी-सा बीबी ले पैदल जो जाता है आज।
तू भूला था कौन स्वप्न में बना हुआ था महा निशंक?
देख अभी आगे की लीला अभी हुआ है पहिला अंक!
मैं जैसी हूँ प्रिय बिछोह में तड़प तड़प कर उन्मादिन,
इन आँखों से तुम दोनों भी शीघ्र वही देखोगे दिन।

फिर मेहर का अदृष्ट सर्वसुन्दरी के रूप में योगिनी बन कर आता है और आगे की होने वाली भयानक घटना का प्राक्कथन कर जाता है—

देकर यह अभिशाप दृष्टि इक तेज तड़ित सी उन पर डाल,
सरक गई झट एक ओर वह अपना लटका चीर सम्हाल।
सन्नाटा था, आँख उठी जब कहने का साहस आया,
निकल गई थी दूर मूर्ति वह देख पड़ी केवल छाया।

सर्वसुन्दरी का सर्वनाश शेर अफ़गान ने किया है, उसी सर्वसुन्दरी का जो मेहर की सखी थी और सदा उसी के घर रहती थी। शेर अफ़गान अपने दोस्त दुश्मन समझने की भी योग्यता न रखता था। आज उसके इस असमय में सर्वसुन्दरी विक्षिप्त सी होकर योगिनी

बन कर आती है और उसे उसकी नृशंसता की याद दिलाती है। आज उसका नारीत्व सजग हो उठता है और उसकी आग की तपन तभी ठंडी होगी जब मेहर भी उसी दशा को पहुँचेगी। स्त्री स्त्री ही है, आज उस सतत शान्त सर्वसुन्दरी का हृदय प्रतिशोध की प्रबल कामना से ललक उठा है। वह आज मेहर को अपनी अवस्था में देख आँखें सफल करेगी।

योगिनी काली की उपासिका होती है। काली रुद्र की वह अर्द्धाङ्गिनी है जो उनमें संसार का संहार करते समय शक्ति रूप हो प्रवेश करती है। विश्व की विपत्ति और अन्त में उसके संहार के समय यह दुर्गा, मुण्डमाल विभूषिता काली, अट्टहास करती और रुद्र के घोर ताण्डव के साथ सम्मिलित लास्य करती है। सर्वसुन्दरी ने उसी आद्याशक्ति, अन्तिम लयकारिणी सत्ता का आश्रय लिया है। उसका सुनहरा संसार मिट्टी हो गया है, उसकी माँग का सिन्दूर धुल गया है और उसका स्थान श्मशान की चिता की उस भस्म-रज ने लिया है जिसका कारण-स्वरूप शेरअफ़ग़ान स्वयं आज राह का भिखारी है। विमलराय की चिता सर्वसुन्दरी ने स्वयं धधकती देखी है और उसको उसने गंगाजल से शीतल किया है पर अपने हृदय में जो उसने चिता धधका ली है वह कब ठंढी होती है यह देखना है। स्वयं उसने कभी ऐश्वर्य के दिन देखे थे और शीघ्र ही अपनी हँसती दुनियाँ भी बिलटती देखी आज उसने वह प्रलयंकर रूप धारण किया है जिसके दर्शन से मनुष्य कांप उठता है। इस अमानवी योगिनी का अभिशाप कितना भयानक है—

> मैं जैसी हूँ प्रिय बिछोह में तड़प तड़प कर उन्मादिन,
> इन आंखों से तुम दोनों भी शीघ्र वही देखोगे दिन।

और तब उसे शांति प्राप्त होगी। यह रूप है उस सर्वथा शान्त सर्वसुन्दरी का जो सदा मेहर को अविचलित होने का, शांतिमय जीवनयापन करने का, उपदेश करती थी! आज वही स्वयं अशांत, विक्षिप्त, अपनी आंखों से अंगार बरसाती मेहर और शेर अफ़ग़ान को

ढूँढ़ निकालती है, उनका रास्ता काटती है, शाप देती है। सारी दुनियाँ उसकी घृणित है और उसे शान्ति तब मिलेगी जब इस हत्यारे जगत का सर्वनाश हो जायगा, जब मेहर के सामने शेर अफ़ग़ान का कटा सिर नाचेगा, उसकी धड़ तड़प तड़प कर शान्त होगी और ख़ून के फ़ौवारे छूटेंगे। कैसा भीषण आनन्द है! मनुष्य हिंसक जन्तुओं से नृशंसता में कहीं बढ़कर है!

सोलहवाँ सर्ग

नूरजहाँ शेर अफ़ग़ान को साथ ले गाँव में जा बसी है। गाँव का जीवन नगर के जीवन से कितना भिन्न है। वहाँ नगरों का मिथ्या आडम्बर नहीं, लोभ-लालच नहीं, वासना-कामुकता नहीं, स्वार्थ की साधना नहीं, झूठी बातें नहीं, शिष्टाचार की रिक्त लच्छेदार वाक्यावली नहीं—सीधा संतुष्ट जीवन है। कवि ने नीचो लिखो पंक्तियों में बड़े स्वाभाविक भाव भरे हैं—

नगरों का कृत्रिम आडम्बर, टीमटाम, दिखलावा,
नागरिकों का तृप्त न होनेवाला लोभ छलावा,
नीच वासना कामुकता का हृदय हृदय में डेरा,
केवल स्वार्थसाधना ही से मानस मानस प्रेरा।
नहीं हृदय से जिनको नाता रसना की रचनाएँ,
ऐसे शिष्टाचार वाक्यपटुता की शुचि प्रतिमाएँ,
मिलीं नहीं ग्रामीण जनों में जो गँवार कहलाते,
जो पूर्वज के पथ पर चल कर जोवन सरल बिताते।

मेहरुन्निसा यह ग्रामीण जीवन देख, शांति और संतोष का लाभ कर शहर का सूखा जीवन भूल गई। बड़ा सुन्दर ग्राम्यजीवन का चित्र कवि ने खींचा है जिसका पूरा उद्धरण न देने से उसका बहुत कुछ सौन्दर्य खो जाएगा—

नहीं किसी भी विद्यालय का वहाँ विशाल भवन था,
शिक्षा-मंदिर प्रकृति-सुन्दरी का हर जड़-चेतन था।

R. L. Stevenson का truant विद्यार्थी यहाँ इस जड़-चेतन के जीवित विद्यालय में संसार को चकित कर देनेवाली विद्या का अभ्यास कर सकता था।

पंचों का व्ययहीन न्याय झगड़ों का निपटारा था,
नहीं कचहरी न्यायालय का आडम्बर सारा था।

नहीं कहीं चौपड़ की सड़कें हाटों में हो जातीं,
पगडंडी औ' लीक गाड़ियों की थीं मार्ग बतातीं।
प्राचीरों में सुमन वाटिकाएँ थीं नहीं लगाईं,
नहीं किसी के उठने को बजती नौबत शहनाई।
इनके लिए बने थे सारे तरु ही नौबतखाने,
जिससे विविध वाद्ययंत्रों के विहग सुनाते गाने।
इनकी कुन्जलताएँ आकर स्वयं बसंत सजाता,
विविध भाँति के वन फूलों से पृथ्वी को भर जाता।
बाग़ बाग़ उनका दिल होता लख निज खेती बारी,
फूले नहीं समाते लख कर हरे खेत की क्यारी।
घड़ी और घंटे बज कर हैं नहीं समय बतलाते,
अरुणशिखा, भुजंग औ' दहियल प्रातः उन्हें जगाते।
वे तारों के चक्रचाल से समय सही कह देते,
रबि लखकर तरु-धूप-घड़ी से समय जान हैं लेते।
उनकी पुष्ट देह रबिकर से सदा नहाया करती,
गोभी-सी आवरण वस्त्र का व्यर्थ न तन पर धरती।
खेती को हरियाली पीता पुष्पों का आसव ले,
स्वस्थ पिलाया करता मलयानिल उनको श्वासों से।
नहीं झाड़ फानूस कहीं भी महलों में हैं बलते,
मिट्टी के घर में मिट्टी के दीपक हैं बस जलते।
जिनकी क्षीण ज्योति में गृहिणी चरखा चला चलाकर,
सूत कात कर वस्त्रादिक है बुनवा लेती घर पर।
नागरिकों के मिलने जुलने का न प्रमोद भवन है,
इनका नैसर्गिक मंडल गृह इक बटवृक्ष सघन है।
उसके नीचे बैठ सभी संध्या औ रात समय में,
जी बहलाते कथा, टिप्पणी या विचार-विनिमय में।
अथवा कृषक समाज काम धंधे से छुट्टी पाकर,
संध्या समय शीत से बचकर बैठ अलाव जला कर,

ऊँच नीच का भाव नहीं रख भ्रातृभाव का नाता,
नीच जाति का भी बूढ़ा बाबा-दादा कहलाता,
बड़े प्रेम से बढ़ा बढ़ा कर कहता कथा पुरानी,
कोई खाँस सुनाने लगता अपनी राम कहानी।
ऐसे सरल शांत जीवन में मन की बहक डुबाती
प्रेम सहित दम्पति जीवन सुख मेहरुन्निसा उठाती।

× × × ×

नये मोर पंखों से होने लगा केकियों का शृंगार,
मौलश्री औ पारिजात पर शोभा की छा गई बहार।
व्योम मार्ग में चारु चन्द्रिका में प्रवास करते द्विजगण,
शोर मचाते हुए निकलने लगे दलों में अब सन-सन।
भरी कपास, कमल मुरझाने लगे, ईख हो गई सरस,
सोने का पानी धानों पर फिरता जाता बरस बरस।
यौवन भार विनम्र बालियों में तोतों का ताँता है,
उनके धानी अंचल में सोना सा भरता जाता है।

× × × ×

ग्राम्य जीवन का यह वर्णन कितना सच्चा, कितना मार्मिक है। एक एक स्थल को सँवार कर, एक एक अवस्था का चित्रण कवि बड़ी भावुकता से करता है। प्रकृति का प्रथम चितेरा यह सुकवि 'भक्त' ग्रामीण जीवन की सादगी का वर्णन करता करता उसके चतुर्दिक फैले निसर्ग का सौन्दर्य बखानने लगता है और उसका वह रूप हमारे सामने लिख देता है जो हमें अब तक उपलब्ध नहीं था। Goldsmith के Deserted Village में इस जीवन का कुछ अंश अवश्य झलक जाता है परन्तु यह प्रकृति सौन्दर्य का दर्शन-सुख वहाँ कहाँ उपलब्ध है? प्रकृति को देख कर तो कवि का हृदय जैसे ललक ललक, उछल उछल नाचने लगता है। लौट लौट कर उसका वर्णन कर कर भी वह नहीं अघाता। इस लहराते निसर्ग में मानव जीवन का संचार कर कर, पुनः पुनः उसकी असारता में हरी सजीवता का सृजन करता हुआ यह प्रकृति 'भक्त' पुजारी की निष्ठा से उसकी अर्चना करता है—

अरहर कल्लों से भरी हुई फलियों से झुकती जाती है,
इस शोभा-सागर में कमला ही कमला बस लहराती है।
सरसों दानों की लड़ियों से दोहरी सी होती जाती है',
भूषण का भार सम्हाल नहीं सकती है कटिबल खाती है।
है चोटी उसकी 'हिरन खुरी' के फूलों से गुथ कर सुन्दर,
अन-आमंत्रित आ 'पोलंगा' है इंगित करता हिल हिल कर।
हैं मसें भीगतीं गेहूँ की तरुणाई फूटी आती है,
यौवन में माती मटर बेलि अलियों से आँख लड़ाती है।
लोने लोने वे घने चने क्या बने ठने इठलाते हैं,
हौले हौले होली गा गा घुँघरू पर ताल बजाते हैं।

चने फाल्गुन में पकते हैं और उनकी पकी फलियाँ घुँघरू की तरह बजा करती हैं। कवि ने उनकी आवाज़ से सामयिक होली गाने की कल्पना की है।

हैं जलाशयों के ढालू भीटों पर शोभित तृण-शालाएँ,
जिनमें तप करतीं कनक वरण हो नागबेलि अहिबालाएँ।

नागवल्ली को अहिबालाएँ कह कर और उनका जल से संबंध बता तप करतीं नाग कुमारियों की कल्पना कितनी सुन्दर और मनोहर है। प्राचीन जन विश्वास और किंवदन्तियों का संकेत कवि बड़ी चातुरी और भाव प्रौढ़तापूर्वक करता है। नीचे कंदों और अलसी आदि का सुन्दर वर्णन है। ध्वनि और संकेत का तो कवि बड़ा ही धनी और पंडित है।

है कंद धरा में दाब कोष ऊपर तक्षक बन झूम रहे,
'अलसी' के नील गगन में मधुकर दृग तारों से घूम रहे।
'मेथी' में थी जो विचर रही तितली, आ 'सोये' में सोई,
उसकी सुगंध-मादकता में सुध बुध खो देते सब कोई।
विष वृक्ष 'पोस्ता' भी कलसा सिर पर दिखला ललचाता है,
उसका बैरी वह प्रबल गंध आगे बढ़ दूर हटाता है।

× × × ×

जलता हुआ बिरह - ज्वाला में सारे दिन देता चक्कर
प्रिया सोध में आ पहुँचा पश्चिम में वह व्याकुल दिनकर।
ठंडी छाती हुई, फूल सा खिल उट्ठा, प्रेयसि को पा,
सांध्यसुन्दरी का मुख भी लज्जा लाली में नहा उठा।
चुम्बन ले ले प्रेम सहित, पुलकित हो स्वर्णकरों में भर,
दीप बुझा कर, अंतरिक्ष के परदे में सोया दिन कर।

× × × ×

उसी छटा के सुख सागर में, बहते, खाते गोते थे,
श्वाँस-सूत्र में आनँद - मुक्ता शेर औ मेहर पिरोते थे।

इसी सुख दुख के साधारण जीवन में शेर अफ़ग़ान और मेहर अपना समय सुख पूर्वक बिताते थे। पति की नीरसता की अब कहानी मात्र रह गई थी और मेहर वास्तविक दाम्पत्य जीवन की साधें प्रसन्नता पूर्वक पूरी कर रही थी। पर 'सब दिन नाहिं बराबर जात'। नियति को उसकी सूखी रोटी पर भी ईर्ष्या होने लगी। साम्राज्य गया, सूबेदारी गई, अब सूखी रोटी थी और पति के सौजन्यमय सहवास का सुखी गृहस्थ जीवन नगरों से दूर गाँव के एक कोने में व्यतीत हो रहा था। संसार से मेहर एक प्रकार से नाता तोड़ चुकी थी। शेर अफ़ग़ान भी दुनिया के कटु अनुभव कर चुका था और अब प्रिया-सुख के लिए ही सतत प्रयत्नशील था। पर पहले तो मनुष्य संसार को ढूँढ़ता है और बाद जब उससे भाग कर अनजाने कोनों में छिपता फिरता है तब संसार ही उसे अपने कोने कोने में ढूँढ़ता फिरता है। मनुष्य संसार को छोड़ देता है परन्तु वह विषैला संसार उसे नहीं छोड़ता। चोटों पर चोटें देने के लिए वह उसे ढूंढ़ निकालता है। शेर अफ़ग़ान और मेहर आज कह सकते थे कि वे अब सुखी थे परन्तु उनका सुख उनके अदृष्ट को खलने लगा। किसी ने शेर अफ़ग़ान को बाहर से आवाज़ लगाई। दोनों चौंक पड़े। उन्हें इस दुनियाँ में पुकारने वाला कौन है? मेहर के मुख पर चिन्ता के बादल झलकने लगे। दूत ने कहा—ढाका के हाकिम कुतुबुद्दीन आये हुए हैं

और उन्होंने शेर अफ़ग़ान को याद किया है। मेहर का माथा ठनका। अपशकुन होने लगे। अकिंचन शेर अफ़ग़ान अब कुतुब का क्या बिगाड़ सकता है? फिर यह बुलावा क्यों? कहीं जमीला ने कोई फिर तो दुरभिसन्धि नहीं की? मेहर को पता नहीं कि सम्राट जहांगीर की इच्छाओं का केवल पूर्वार्ध ही पूर्ण हुआ है। कुतुब ढाके का स्वामी तो हो गया पर मेहर अपने पुराने 'स्वजनों' से मिलने आगरे अभी तक नहीं पहुँची। पर मेहर का शेर अफ़ग़ान के जीते जी आगरे पहुँचना असम्भव है। शेर अफ़ग़ान दूत के कहने पर आख़िर चलने पर राजी हो जाता है। परन्तु मेहर को यह मान्य नहीं। वह उसे बहुत समझाती है—मत जाओ, कुतुब दुश्मन है, उसका क्या विश्वास?—

बुरे बुरे सपने देखे हैं बहुत दुष्ट से डरती हूँ।
कहना मानो, मत जाओ तुम, बिनती मैं फिर करती हूँ।

पर वीर हृदय शेर ललकार उठता है—

जब तक है तलवार हाथ में तू किस भय में भूल है?
नहीं कुतुब की कुछ मजाल, वह कौन खेत की मूली है?

इस प्रकार उसे समझा बुझा कर उसकी बातों को हँसी में उड़ाकर शेर अफ़ग़ान अपनी तलवार ले कर चल दिया। मेहर का हृदय भर आया, आँसू उमड़ पड़े। व्यग्र चित्त वाली घायल मेहर के मुँह से निकल पड़ा—

गये अकेले, संग न कोई, करना कुशल अरे रहमान!

× × ×

शेर अफ़ग़ान के वहाँ पहुँचने पर कुतुब ने उससे वह प्रस्ताव किया जिसकी उसे स्वप्न में भी आशा न थी। कुतुब ने मेहर को जहाँगीर के लिए माँगा। बहादुर शेर का ख़ून खौल उठा, उसकी नस नस में आग लग गई—

ऐसी बात निकाले मुँह से तेरी इतनी हुई मजाल?
क्या सचमुच ही नाच रहा है तेरे सर पर काल कराल?
जहाँगीर है नहीं आज वरना मैं उसे बता देता,
पर नारी पर बुरी नज़र रखने का मज़ा चखा देता।

इतना कह कर उसने हाथ के एक प्रबल आघात से कुतुब का सिर काट लिया, पर वह स्वयं क्या दुश्मन की सेना से उबर सका? उसे भी लड़ता लड़ता जूझ जाना पड़ा। योगिनी का इष्ट सिद्ध हुआ, सर्वसुन्दरी का कथन सत्य हुआ, मेहर का सुहाग लुट गया।

× × ×

यदि काव्य के सौन्दर्य के विचार से दसवें सर्ग का विदा प्रसंग इस महाकाव्य का सबसे सुन्दर अंश है तो अध्यात्म और जीवन के रहस्यवाद के विचार से नीची लिखी पंक्तियाँ अद्भुत और असाधारण हैं। जीवन की असारता इन लाइनों में भर दी गई है। मेहर का सुहाग लुट गया है। सर्वसुंदरी, योगिनी, प्रतिशोध की मूर्ति यह कापालिका शाश्वत् सत्य का गान करती है—

फूला हुवा गर्व में इतना अरे! बुदबुदे! फूट गया!
बिखर गए मोती तत्वों के जीवन धागा टूट गया।
तेरा वैभव, बल, घमंड, धन क्या सारा ही छूट गया?
तू दुनियाँ को लूट चुका था तुझे कौन यों लूट गया?
स्नेहहीन दीपक मिट्टी के! ज्योति कहाँ वह हुई विदा?
ओ मरघट के अनल! जला जग; बुझ कर अब सोया है क्या?
सागर में हिमखंड बना तू डुबा चुका कितने जलयान,
उसी सिंधु की तरल लहर ने तुझको खा डाला, पाषाण।
तेरे मन्दिर का मंडप यह किया तड़ित ने तोड़ विनाश,
शीश विलग होकर लखता है अलख दृगोंसे शव का पाश।
अरे कूल के तरुवर, गगन विचुम्बी सिंहासन से कल
देख रहा था घृणा-दृष्टि से नीचे के जल के तृण-दल।
पर चारा नेरआज धराशायी कर तुझको छोड़ा है,
तेरा प्यारा फूल गर्व का चुन माली ने तोड़ा है।
ओ तरुणी, तेरा आश्रय-तरु गिर कर आज धरा पर सो,
तुझे अकेले छोड़ गया है, प्राण न दे, लतिके, रो रो?
मुझको देख धैर्य मन में रख मैं भी हूँ आश्रय हीना,

मेरा भी वह जीवन-सुख तेरे ही पति ने था छीना।
आज वही तेरा स्वामी भी चोला कोई बदल नया
मेरे इस स्वतंत्र परदेशी पति से करते भेंट गया।
हम दोनों पतवार हीन नौका बनकर चक्कर खावें,
जिधर लहर ले जाये लेकर उसमें ही बढ़ती जावें।
इस अलक्ष की माया देखो सबही उसके सदा अधीन,
ये दोनों लहरें आपस ही में लड़ लड़ हो गईं विलीन।
दिवस-निशा-कूलों में बहती है अनन्त जीवन की धार,
लहरों का सिरजन होता रहता है लहरों का संहार।
यों ही बनता और बिगड़ता ब्रह्म सलिल ही में आसीन,
जीव रूप बन उठ जाता है, हो जाता फिर वही विलीन।
यह है परिधि अलख माया की इसका कोई आदि न अन्त,
इस चक्कर में घूम रहे सब आदि विन्दु तें वह भगवन्त।
उस मंदिर की ही परिक्रमा करते हैं अगणित सब लोग,
महाज्योति को नमस्कार है जिससे पाते सब आलोक।
उसका हो, हे मेहर, ध्यान तू कर प्रपंच में मत अब भूल,
देख रही है अन्त समय में सब कुछ हो जाता है धूल।
उज्ज्वल कर्म जीव-नौका को बन कर डाँड़ चलाते हैं,
पत्थर-पाप बोझ होकर बोझिल कर नाव डुबाते हैं।
अच्छा जीव छोड़ जाता है जग मानस पर हर्ष-तरंग,
जैसे सूर्य डूब जाता है छोड़ गगन में सुन्दर रंग।
पर काली रजनी जाते जाते भी आग लगा जाती,
सुमन, घास को रुला रुला कर आँसू से नहला जाती।
केवल थोड़े दिन जीना है जीवन स्वच्छ बिताना तुम,
मत ग़रीब को कभी सताना सदा भला कर जाना तुम।
इस शव पर अब क्या रोती हो यह तो सबका ही है अन्त,
यह पतझड़ है, जीवन तरु में फिर आवेगा वही बसन्त।
महाकाल की है यह क्रीड़ा! मृत्यु नहीं जीवन की गति,

समय-भाल पर भाग्य-विधाता की ललाट लेखा की यति।
सदा एक रस चलने वाले हृद्गति का थोड़ा विश्राम,
महाकाव्य के एक छन्द की एक पंक्ति का अल्प विराम,
उस विराट के महा नाट्य के दृश्यों की झाँकी यह एक,
उस गायक के गीतों में से एक गीत की केवल टेक,
पटाक्षेप जीवन-नाटक का, जीवन-निशि का शुक्र उदय,
सागर का भाटा, लहरी का गिर कर होना जल में लय,
अपने पथ पर चले गये यात्री के पग की उट्ठी धूल—
उस शव पर—इस मिट्टी पर—रोना है तेरी भारी भूल।
बंशी वाला निज बंशी के एक छिद्र का स्वर कर बन्द,
और स्वरों में प्राण फूँकता रहता है यों ही स्वच्छन्द।
जो होना था हुआ अन्त वह उसने काटा जो बोया,
अहमन्यता स्वार्थ में ही अपना सारा जीवन खोया।
तू अब चेत, बचो खेती की बनचर से रखवाली कर,
स्वर्ण सदृश पावन अनाज से फिर अपना घर ले तू भर।
होना मत तुम सिंधु लहर जो ठहर ठहर कर शीश उठा,
अपने ही हृदयस्थ यान को भुजगी सी जाती है खा।
होना लहरी मंद सरित की जीवन जब हो जावे भाप,
तब भूतल की हृदय-राशि पर जाओ छोड़ लहर की छाप।

मनुष्य अपने क्षणिक जीवन की क्षणभंगुरता देखता हुआ भी अनेकों अनर्थ करता है, अहंकार और गर्व में फूला फूला फिरता है। यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा—आश्चर्य क्या है? उत्तर मिला—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषास्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

सच ही नित्यप्रति अपने अभिन्न हृदयों को, सगे सम्बन्धियों को, मरते देख कर भी यह विश्वास नहीं होता कि हम मरेंगे, ऐसा मालूम होता है हम सदा जीते रहेंगे। इसी बुनियाद पर उस अट्टालिका की नींव खड़ी है जिसकी दीवारें अहंकार की हैं। सदा यहाँ

बने रहने का विश्वास ऐसा जोर पकड़ गया है कि हमने अपना संबंध पार्थिव वस्तुओं से अत्यधिक कर रखा है। ममत्व के कारण ही मनुष्य दूसरों से दुश्मनी मोल लेता है और हिंसक जन्तुओं की भाँति भय-प्रद हो जाता है। उस सांसारिक प्रभुत्व पर जिसकी स्थिरता क्षणिक है मनुष्य गर्व कर फूला फिरता है। पर निश्चय ही उसका फूलना कुछ वैसा ही है जैसे जल में लहरों के कम्पन से उत्पन्न होनेवाले क्षणिक बुदबुदों का और वह अन्त में शीघ्र ही वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे बुदबुदे फूट कर जल में निमग्न हो जाते हैं। शेर अफ़गन से योगिनी सर्वसुन्दरी पूछती है—गर्व में फूला हुआ तू क्योंकर फूट पड़ा? आज कैसे तुम्हारे जीवन का धागा टूट गया और तत्वों के मोती बिखर पड़े? शरीर की बनावट तत्वों से ही हुई है। तत्वों से बने शरीर में जीवन—चेतनता—प्राण फूँक दिया जाता है और शरीर सजीव हो उठता है। प्राण धागे की भाँति तत्वों के मोतियों से होकर गुज़रते हैं, ओत-प्रोत हैं। अलंकार बड़ा सुन्दर है। जैसे धागा एक-एक मोती के हृदय-भाग से होकर जाता है उसी प्रकार प्राण भी इन पञ्चतत्वों के बने शरीर में ओत-प्रोत हैं। वही शरीर आज सर्वसुन्दरी को ऐसा प्रतीत होता है जैसे मोतियों की माला टूट गई हो और मोती धागा टूट जाने से बिखर गये हों।

आज शेर अफ़गन का सारा वैभव—बल, गर्व, धन—क्या हुआ? सारी दुनियाँ को उसने कंगाल बना दिया था, दुर्भिक्ष के समय तक उसने प्रजा को लूटा था आज उसे किसने लूट लिया? पूछती है योगिनी—हे स्नेहहीन मिट्टी के दीपक, तेरी ज्योति कहाँ गई? हे श्मशान की अग्नि, अब संसार को क्यों नहीं जलाती, बुझकर कहाँ सो रही है? शरीर सच ही मिट्टी का दीपक है। जब इसका तेल चुक जाता है बत्ती भभक कर जल जाती है, चिराग़ बुझ जाता है। घर के ही चिराग़ से घर में आग लग जाती है—इस घर में आग लग गई घर के चिराग़ से—बौद्ध अध्यात्म से कवि ने यह भाव लिया है। शरीर दीपक सा है जिसका अन्त में 'निर्वाण' हो जाता है। अफ़गन का शरीर

औरों की ही भाँति मिट्टी का था पर साधारण शरीर से भी बढ़कर उसमें एक बात थी—उसकी स्नेहहीनता—निर्दयता। आज उस निर्दयता का तेज कहाँ है? मरघट की आग जलती है और जलाती है, उसका रूप सदा अशुभ, अपशकुन का है। उससे पोषण (भोजन) नहीं होता, होमाग्नि नहीं प्रज्वलित होती और न उस से शिष्य ही गुरु के समक्ष 'समित्पाणी' होता है। यह अग्नि केवल चिताग्नि है और शरीर को ही जलाती है। पूछता है कवि—हे मरघट की अग्नि, आज तू क्यों बुझी पड़ी है, उठ कर जैसे जीते संसार को जलाया, आज क्यों नहीं जग जलाती? उठ और जला जग। शीतल क्यों है? जगती क्यों नहीं? पर जिसकी चिनगारियाँ स्वयं ही मृतप्राय हैं, जो स्वयं ही नहीं जग सकती वह जग को क्या जलायेगी। हिमखंड बना तू सागर के कितने ही पोत जलमग्न कर चुका है पर आज तू स्वयं क्यों उन्हीं तरंगों पर पाषाण स्वरूप हो, पत्थर की भाँति भारस्वरूप बन, डूबा जा रहा है? देख! तू जिन लहरों के साथ खेल खेल औरों को डुबाता था आज उन्हीं में स्वयं लीन हो रहा है। यह कालचक्र के साधन किसी के अपने नहीं हैं कालचक्र के ही हैं। अत्याचारी अपने को अमर समझ उसका सहारा लेता है औरों को पीसने के लिये, पर जब कालचक्र करवट लेता है तब अत्याचारी स्वयं उन्हीं साधनों का ग्रास हो जाता है! शेर अफ़गन आज देखे उसके मन्दिर का शिखर विद्युत् ने तोड़ कर नष्ट कर दिया है और उसका सिर अलग पड़ा यह दृश्य अपनी खुली आँखों से देख रहा है, अलख दृगों से—खुली पर अलख—अन्धी—आँखों से। अलख स्वयं अदृष्ट है जो अपनी आँखों अपना ही कृत्य देख रहा है। नदी कूल के तरुवर—नदी के किनारे के वृक्ष जिनके जल की धार से टूट कर बह जाने की आशंका सदा बनी रहती है—बट वृक्ष के-से ऊँचे मस्तक से—ऊँचे सिंहासन से-अभी कल तू नदी के जल में नीचे बहने वाले क्षुद्र तृणों को तुच्छ समझ घृणा की दृष्टि से देख रहा था आज उसी धारा ने जिसमें तृण बहा जाता था उसी अप्रयास गति से तुझे स्रोतगत कर लिया है,

और तेरे सुन्दर खिले अधखिले गर्व के फूल काल-माली ने चुन-चुनकर तोड़ लिये हैं ! इस तरुवर के गिरने से लतिका अनाथा हो गई है और वह शोकमग्ना है। योगिनी कहती है—नरपुंगव शेर अफ़गन आज धराशायी हो गया है पर हे मेहर, तू रो रोकर अपने प्राण व्यर्थ न दे। मुझे देख मैं भी तेरी ही तरह आश्रयहीना हूँ जिसका जोवन सुख तेरे ही पति ने बरबस छीन लिया था। आज वही तेरा स्वामी नया चोला बदल—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संजाति नवानि देही॥—
मेरे पति के देश का पथिक हो गया है—जहाँ से 'कोनउ पथिक न बहुरा कस वह देश'—आज तक किसी ने लौट कर नहीं बताया कि वह देश कैसा है। आज हम दोनों ही पतवारहीन नौका की भाँति लहरों के इशारे पर चक्कर खा रही हैं। भला उस अलक्ष—अदृष्ट—की माया तो देखो, सब उसी के आधीन हैं, सभी उसके संकेत पर नाचते हैं—आज ही देखो कुतुब और शेर अफ़गन दोनों की लहरें आपस में ही टकरा कर विलीन हो गईं। जमीला और कुतुब दोनों आज शेर अफ़गन को मार तुम्हारा सुहाग छिनने आये थे, सो तुम्हारा तो छिना ही जमीला का भी साथ ही छिन गया और शेर और कुतुब ने साथ ही उस सुदूर अनजाने देश की यात्रा की जहाँ की राह मेरे पति दिखा रहे होंगे। यह जीवन दिन और रात्रि रूपी दो कूलों से होकर बहता है। इसका अन्त नहीं—एक एक ज़िन्दगी इसमें एक एक लहर की भाँति उठती और विलीन होती रहती है। ब्रह्म रूपी सलिल में ही रहता हुआ जीव लहरों की भाँति उठता और विलीन होता रहता है, रूप धारण कर बनता बिगड़ता रहता है। कवि की कल्पना शंकर के अद्वैत की ओर बढ़ जाती है—ब्रह्म इस सृष्टि का आदिबिन्दु है, केन्द्र है, और स्वयं सृष्टि उस केन्द्र—आदिबिन्दु—की परिधि है जो अज्ञानान्धकार से आवृत ब्रह्म की अलख, अदृष्ट, माया द्वारा आविर्भूत होती है। कवि प्राचीन ऋषियों के साथ अनादि

प्रवाह सृष्टि की प्रगति को देखता है इसीलिये उसके प्रवाह में परिधि के रूप में—Circle—मानता है। सच ही है कौन कह सकता है वृक्ष पहले हुआ या बीज। दोनों की उत्पत्ति दोनों से है—बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से बीज। इस प्रकार परिधि के रूप में सृष्टि का प्रवाह होता है जिसका न आदि है न अन्त। बड़ी ही सुन्दर भाषा में कवि ने इस शाश्वत अनन्त सत्य को व्यक्त किया है—

> यह है परिधि अलख माया की इसका कोई आदि न अन्त,
> इस चक्कर में घूम रहे सब आदि-बिन्दु है वह भगवन्त।

वह 'भगवन्त' ही आदि बिन्दु—Primeval seed—है। चारों ओर 'चक्कर' काट काट कर वहीं पहुँचना है। फिर कवि पारसियों की ज्योति-उपासना—अग्नि और सूर्य के रूप में—की ओर संकेत कर कहता है—

> उस मन्दिर की ही परिक्रमा करते हैं अगणित सब लोग,
> महाज्योति को नमस्कार है जिससे पाते सब आलोक।

योगिनी सर्वसुन्दरी मेहर से कहती है—मेहर, देख! तू उसी महाज्योति का अब ध्यान कर, प्रपञ्चों में न भूल, क्योंकि तू देख रही है कि अन्त समय में सब कुछ धूल हो जाता है। केवल उज्ज्वल कर्म डाँड़ बन कर जीवरूपी नौका को खेते हैं और पाप पत्थर बन कर नाव को अत्यधिक बोझ उसे डुबा देते हैं। अच्छा जीव संसार रूपी मानसरोवर पर हर्ष रूपी तरंग छोड़ जाता है ठीक वैसे ही जैसे सूर्य नील गगन पर अपना सुनहरा प्रकाश—

> पर काली रजनी जाते जाते भी आग लगा जाती,
> सुमन, घास को रुला रुला कर आँसू से नहला जाती।

सो इस निर्जीव शरीर पर, शव पर, क्या रोती हो मेहर? यही सब का अन्त है—

> यह पतझड़ है जीवनतरु में फिर आवेगा वही बसंत।
> महाकाल की है वह क्रीड़ा, मृत्यु नहीं जीवन की गति,
> समय-भाल पर भाग्य-विधाता की ललाट लेखा की यति।

यह चण्डेश्वर महाकाल की क्रीड़ा है, मृत्यु नहीं जीवन है— मरण प्रकृति शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः—काल के भाल पर भाग्य नियन्ता द्वारा खींची हुई ललाटरेखा, लेख, की यति है। यही यति जब भंग हो जाती है जीवन-काव्य नीरस हो जाता है। यह मृत्यु क्या वस्तु है ? सदा चलते रहने वाले हृदय का क्षणभर विश्राम है, इस अनादि-प्रवाह रूपी, जीव प्रगति रूपी, महाकाव्य के एक छन्द की एक पंक्ति का भी केवल एक अल्प विराम—Comma— है, उस विराट पुरुष द्वारा उपस्थित रंगमंच पर जो महानाट्य हो रहा है मृत्यु उसके दृश्यों की एक छोटी झाँकी है, उस महागायन के एक गान की एक टेक है। और क्या है ? जीवनरूपी नाटक का यवनिका-पतन, जीवनरूपी निशा का शुक्रउदय—प्रातः, अन्त—, सागर के ज्वार के अन्त में भाटा और अपनी आगे की मंजिल पर बढ़े पथिक की चाल से उठी हुई धूल है। अभी चलना बहुत है, सदा, अनन्त काल तक –

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना,
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।"

इसलिए कवि बताता है मृत्यु क्या है—

पटाक्षेप जीवन-नाटक का, जीवन-निशि का शुक्र उदय,
सागर का भाटा, लहरी का गिर कर होना जल में लय।
अपने पथ पर चले गये यात्री के पग की उट्ठी धूल,

यह है इस महाप्रस्थान का रहस्य जिसे मृत्यु कहते हैं। इस कारण योगिनी कहती है—

इस शव पर—इस मिट्टी पर रोना है तेरी भारी भूल।

जिस प्रकार वंशी बजाने वाला बारी बारी से एक एक छिद्र बन्द कर अन्य छिद्रों में प्राण फूँका करता है जिससे गान-ध्वनि निकलती है उसी प्रकार जगतरूपी वंशी का बजाने वाला भी अनन्त छिद्रों वाली अपनी वंशी का एक छिद्र बन्दकर कर औरों में प्राण फूँका करता है जिससे सृष्टि चलती है और संसृति होती है। यह कवि का भाव अभी तक अछूता, पूर्ण मौलिक है—

वंशी वाला निज वंशी के एक छिद्र का स्वर कर बन्द,

और स्वरों में प्राण फूँकता रहता है यों ही स्वच्छन्द।

फिर वह मेहर को सीख देती है—देख मेहर! तू जो बीता उसे बिसार और जो बचा उसकी बनचर-काल से रक्षा कर। तू भी सिंधु की लहर होकर भुजगी की भाँति अपने वक्ष पर विचरते हुए यानों को मत खा जा।

ज्ञान बता यों सर्वसुन्दरी ने तत्क्षण प्रस्थान किया,

रही जलाती मेहर हृदय से अंचल में ले बुझा दिया।

मेहर अपने हृदय से शेर अफ़ग़न के शव को लगाए उसे गर्मी दे रही है, अंचल के भीतर उसे ढके हुए है, दिया कहीं बुझ न जाय। पर वह तो कब का बुझ चुका है, अब उसको चाहे कितना भी उसकाओ वह नहीं बलेगा, न तो उसमें स्नेह है न ज्योति है।

× × ×

नक्षत्रों के विग्रह से विकट भूकम्प आता है और पृथ्वी का रूप बदल देता है, द्वीपों का लोप करता है, नए द्वीपों की सृष्टि कर देता है। प्रान्त के सभी चराचर जगत—'मणिमय महल अटारी, पुष्पोद्यान, बाजिगजशाला'—को मिटा देता है, राजा और भिखारी दोनों के साथ समान भाव से व्यवहार करता है। उसके हृदय में भिखारी का गिड़गिड़ाना करुणा नहीं उत्पन्न करता और न राजसत्ता त्रास का संचार करती है। *Tempest* का Boatswain, Counsellor को ललकारता है:—You are a Counsellor; if you can command these elements to silence, and work the peace of the present, we will not hand a rope more. करुणा और भय से रहित भूकम्प भूतल की हरी भरी नाना अन्नों की खेती, 'गगन विचुम्बी शैल शिखर, नग ज्वालामुखी तलेटी,' सनातन से बहती नदियाँ, पशु पक्षी सबका एक ही क्रूर कर से ध्वंस कर देता है। उसके समक्ष आस्तिक और नास्तिक दोनों एक साथ ही रोते हुए पिसते हैं। वह एक को खेद करने का मौका नहीं देता न दूसरे को

आश्चर्य करने का। वह कृष्ण के विराटरूप का वह कराल दंष्ट्राओं वाला भयंकर मुख-गह्वर है जिसमें पक्ष और विपक्ष के, धार्मिक और कुकर्मी, पुण्यात्मा और पापी, महर्षि और महामुनि, भीष्म और युधिष्ठिर, कर्ण और अर्जुन, दुर्योधन और भीम समान रूप से अप्रयास बहते चले जाते हैं। मुंगेर में सन् ३४ के भूकम्प में उसके ताण्डव से अपने प्राण बचा एक परिवार अपने त्राण के उपरान्त भगवान की कृपा से गद्गद् हो बाहर दीवार के पास बैठा उसका धन्यवाद करने लगा, एकाएक ऊँची दीवार गिरी और मकान के गिरने से भाग कर बचा परिवार बाहर दीवार तले दब कर चल बसा! काल का चक्र ठीक उस पर उस समय गिरा जब भगवान की पूरी सत्ता का अनुभव कर वह उसकी पूजा में रत था! सो

प्रभुसत्ता के परम उपासक ईशविमुख पण्डित जन,
... ...
आचारी, भूगर्भशास्त्र के, ज्योतिर्विद विज्ञानी,
हुए लोप नहिं चली किसी की रही न नाम-निशानी।

फिर भी उस कर्ता के अटल नियम से शासित होने वाले इस संसार में कोई स्थान रिक्त नहीं रहने पाता, सबकी पूर्ति हो जाती है। समय बड़ा भारी पूरक है। जिस समय पुराने स्थल जलप्लावित हो जाते हैं उसी समय नवीन द्वीपों की भी सृष्टि हो आती है—

वरुण कम्पवाहन द्वारा ज्योंही आ पहुँचे ऊपर,
नवल-द्वीपशिशु जन्म उदधि से लगा खेलने ऊपर।

फिर उस नए द्वीप पर मूँगे का प्रसार नित बढ़ता जाता है, वायु नाना प्रकार की वनस्पतियों के बीज ले जाकर उस पर बोता है और वह नवीन द्वीप जीवों के कोलाहल से प्रतिध्वनित हो उठता है। इसी भाँति इस संसार-सागर में मेहर और शेर अफ़गन रूपी दम्पति-द्वीप विराजमान था, उसमें सुख-सरिता बहती थी और दुःखों में धैर्य की अटलता गिरि की भाँति खड़ी थी। इस शांत सरोवर में सद्-गुण के मंजुल कमल विकसते थे और प्रेम रूपी पुष्परस से मन का वह 'मधुकोष' भरा था। यह प्रदेश अपना कर मेहरुन्निसा और

शेर अफ़गन दुनिया के कष्टों को तुच्छ समझते हुए प्रेम-राज्य करते थे सहसा उनके प्रेम-द्वीप में एक बड़ा भूकम्प आया और उनका वह प्यारा द्वीप भूगर्भ में समा गया। भूकम्प में एक द्वीप खो जाता है साथ ही दूसरे का प्रादुर्भाव भी होता है सो क्या मेहर के पक्ष में हुआ—

जल ने पानी फेर मेहर का सब संसार छुड़ाया,
एक लहर ने उसे उठाकर अपने शीश चढ़ाया।
नवल द्वीप जो जन्मा जल में उस पर उसे बिठाया,

× × ×

अतः बड़े ही धूम धाम से मेहरुन्निसा बेचारी,
बादशाह के अन्तःपुर में सादर गई उतारी।

मेहर के जीवन का पूर्वार्द्ध समाप्त हो गया। इसमें उसने कई जीवन समाप्त कर डाले। मरुभूमि में जन्म पाया, अनजाने हाथों फिरी, मुग़ल सम्राट के राजभवन में पाली जाकर बढ़ी, शैशव यौवन में परिणत हुआ, कुछ नई नई साधें उठ कर हृदय में लहराईं, प्रचण्ड प्रेम के थपेड़ मिले, ईर्ष्या-द्वेष का शिकार हुई, प्रिय हाथ से निकल गया, आगरा छूटा, स्वजन छूटे, हृदय छोड़ कर दूर देश गई, पति की भर्त्सना सही, रूखे अत्याचार सहे, राजवैभव छूटा, विभूतियाँ धूल में लोटीं, नगर छोड़कर, राजप्रासाद को बिसार, पर्णकुटी में निवास किया, जो दाम्पत्य जीवन का सुख राज-प्रासाद में उसके लिए स्वप्न हो गया था वही यहाँ आनन्द पूर्वक भोग रही थी परन्तु नियति से यह भी न देखा गया और सहसा, अनजाने उसका सुहाग मिट गया! कभी का स्वप्न (सातवाँ सर्ग) स्मरण हो आया—

"मुझे देखकर पड़ी यहाँ पर आपस में मुस्काईं।
बोली एक - चलो सुरपुर में तुम्हें बनावें रानी,
कहा दूसरी ने—मत जाना, होवेगी हैरानी।
कहा तीसरी ने—इसको मैं दूगी देश-निकाला

चौथी ताज दिखाकर बोली-'पहिनोगी तुम बाला'?
मैंने कहा 'नहीं' फिर भी वे मुकुट पिन्हाने आईं।
... ...
...फिर उन सबने लिपट चूड़ियाँ तोड़ीं,
याद नहीं पटके से किसके छोरें पटकी जोड़ीं।"

अब वही लहर जिसने उसके द्वीप को जलमग्न कर दिया था, उसके लिए एक नए संसार का सृजन कर रही है। एक लहर ने उसका सर्वनाश किया दूसरी ने उसे सिर आँखों पर बिठाया, नए सूखे स्थल पर, भय और प्रलय से दूर ले जाकर रख दिया। पर्णकुटी से उठकर मेहर राजमहल में जा बैठी। अदृष्ट ने उसे कहाँ ले जाकर पटका, पटका या पधराया कौन कहे, कौन जाने? बड़ी धूम-धाम से वह राजप्रासाद के अन्तःपुर में उतारी गई। जहाँगीर की वाछें खिल गई होंगी, दबे भाव उमड़ कर ऊपर उठ आए, कल्पना के संसार में ज्वार आ गया। कितना भाग्यशाली है वह, जहाँगीर सोचता होगा। पर उसे स्वयं क्या विश्वास होगा? कैसे उसे ढाढस हो। मेहर वही है जिसने अँधेरी रात में शेर अफ़गन को मार कर उसे अपनाने के लिए गए जहाँगीर को फटकार कर निकाल दिया था। आज क्या वही, शेर अफ़गान के ख़ून के पश्चात, जहाँगीर को हत्यारा जानकर भी उसको स्वीकार करेगी? उसका वरण करेगी? शेर अफ़गन कभी उसके लिए वन्य हिंसक जन्तु था पर इधर हाल में वही उसका प्यारा हो गया था और मेहर ने एक नए संसार की सृष्टि एक प्रेममय जीवन का प्रभात, आरम्भ कर दिया था उसको जहाँगीर की वासना ने नष्टभ्रष्ट कर डाला, उसके सुहाग में ख़ून की नदी बहा दी। मेहर क्या अपने प्रिय पति के इस हत्यारे को अंगीकार करेगी? ग़यास और बेगम ने साधकों की अभिलाषा से उसका रूप निखारा था क्या उनकी अभिलाषा पूरी होगी, साधना सच्ची उतरेगी? 'एक लहर ने उसे उठाकर अपने शीश चढ़ाया'—सचमुच क्या यह लहर उसे सम्हाल कर किनारे लगा देगी या उदरस्थ कर लेगी?

सत्रहवाँ सर्ग

मेहरुन्निसा को आगरे आए चार वर्ष हो गए उसने अभी तक एक बार भी जहाँगीर की ओर आँख उठाकर नहीं देखा। निरन्तर उसके पास ऐसी स्त्रियाँ रहती है जो जहाँगीर की प्रशंसा कर उसको उसके पक्ष में खींचने का प्रयत्न करती हैं पर उस पर कोई प्रभाव नहीं होता। मेहर के लिए यह कुछ कम तारीफ़ की बात नहीं कि राजमहल के सभी ऐश्वर्यों के मध्य रहकर भी वह उन्हें अपनाने की इच्छा न करे, ठुकरा दे। शाहंशाह अपनी सारी विभूतियाँ लेकर युगलांजलि हो उसके कटाक्ष मात्र का भिखारी होए और वह नजर भी उसकी ओर न देखे। जहाँगीर समझता है उसका कार्य आसान नहीं है। दूतियाँ दिनरात मेहर से कहतीं सुनती रहतीं हैं पर उसपर कोई प्रभाव नहीं होता। राजसुख का लोभ दिखातीं हैं, जहाँगीर के गहरे प्रेम और वियोग-व्यथा का बखान करती हैं पर मेहर उनकी ओर आँख नहीं उठती, उनकी कथा बहरे कानों भी नहीं सुनती।

एक प्रख्यात दूती, अन्तःपुर की एक प्राचीन वृद्धा, जिसने बाबर और हुमायूँ के दिन देखे थे, अकबर के कितने ही कार्य साधे थे आज जहाँगीर द्वारा प्रयुक्त सी हुई दीखती है। वह नमक मिर्च जरा भी नहीं लगाती, जहाँगीर के विरह दुःख, राजकीय ऐश्वर्य का वर्णन मात्र करती उसके लिए मेहर को जीतना जाहती है। वह मेहर को समझाती है—बेटी, कुछ समझ नहीं पड़ता तुझे यहाँ क्या दुख है, जो कुछ भी साम्राज्य की शान से सम्भव है यहाँ उपलब्ध है। सामने 'नजरबाग' है जी बहला सकती हो। यह महल जिसमें तुम रहती हो इस पाषाण कोट में जड़ा नग सा प्रतीत होता है। इसकी दीवारों पर अत्यन्त सुन्दर तस्वीरें चित्रित हैं, स्तम्भों पर घूम घूमकर कृत्रिम मणि बेलें चढ़ी हुई हैं। प्रालम्बों के ऊपर स्वर्ण खचित छत की डाटें लगी हुई हैं, बाटें—रास्ते—झिलमिली सी कटी वेदिकाओं, रेलिंगों—से घिरी हुई

हैं, शीतल हौज़ों में गुलाब के फ़ौवारे छूट रहे हैं और सदा उनके छूटते जल बिन्दुओं से ऐसा प्रतीत होता है जैसे नीले आकाश में हीरों के तारे जड़े हुए हैं। चारों ओर ईरान के बने नरम नरम क़ालीन ग़लीचे बिछे हुए हैं और रंग रंग के नग नीचे ऊपर जगमग जगमग कर रहे हैं। स्वाभाविक रंगों में पक्षियों के झुण्ड चित्रित हैं जो ऐसे सच्चे प्रतीत होते हैं कि मालूम होता है उनकी मूर्ति अब बोल उठेगी। झिलमिलियों के भीतर वह स्नानागार है जिसमें से होकर गुलाब की धारा बहती रहती है। मुग़ल हम्मामों की कथा कौन नहीं जानता? स्वर्ण खिचित वे कलश कँगूरे, वे तोरण की झालरें, अलंकार भरे टोडों पर टिका अलिन्द जहाँ से नीचे यमुना की सुन्दर छबि के दर्शन हैं वास्तव में वास्तुकला की पराकाष्ठा हैं। फिर भी आश्चर्य है, मेहरुन्निसा, ऐसा सुन्दर महल भी तुम्हें सूना लगता है। ऐसे स्वर्गलोक-से स्थान में भी दुःख घटाएँ क्यों उठती हैं। देखो, कितनी ही दासियाँ दाएँ बाएँ खड़ी तुम्हारा मुख लखती हैं, सारे विलासों की सामग्री, हर इच्छा के साधन यहाँ उपलब्ध हैं; फिर भी तुम न जाने क्यों बारम्बार निःश्वास निकाला करती हो, सब किसी से उदासीन बनी रहती हो। आख़िर इस उदासीनता का कारण क्या है? बादशाह तुम्हें प्रसन्न करने को सदा चिन्तित बने रहते हैं, मेरे साथ यहाँ तुमसे दो बातें करने रोज़ ही आते हैं—

पर देखा भी नहीं आज तक तुमने आँख उठाकर।

जब तुम बीमार थीं उनकी विकलता देखी नहीं जाती थी, उनकी छाती निःश्वासों से फूलती रहती थी और उनके—

दृग कोनों में नहीं समाकर बड़े बूँद आँसू के
तेरा अंचल रहे भिगोते, छलक बरौनी छू के।

आँसू की बड़ी बूँदें जो दृग कोनों में समा नहीं सकतीं थीं छलक पड़तीं, छलक कर बरौनी छू लेतीं और बाद में तुम्हारे अञ्चल भिगो देतीं थीं।

कृष्ण पक्ष के शशि समान तुम रहीं पाख भर घटती,
पर चकोर सी उनकी आँखें नहीं कभी थीं हटती।
हम सब की आँखें लग जातीं पर वे कभी न सोए,
तेरे पीत राग में लाली भरते थे दृग-कोए।
तेरी नाड़ी की गति पर उनका हृदय धड़कता,

दिन रात उन्होंने तुम्हारे ऊपर धन पानी की भाँति बहाया है। प्रथमबार जब तुमने अपनी आँख खोलकर उनकी ओर देखा उस समय के उनके अपार आनन्द का वर्णन कोई क्या कर सकता है। वह सुख लूट कर वे झट बाहर निकल आए जिसमें उन्हें देकर तुम्हारे सुषुप्त भाव फिर न जाग उठें। अपने अभाग्य को देख देख उसके हृदय में बड़ी ग्लानि होती है पर बराबर वे तुम्हारी प्रतिमा अपने हृदय-मन्दिर में रख पूजते जाते हैं। और तुम स्वयं कुछ अबोध नहीं। क्या तुम नहीं जानतीं कि जिधर भी नज़र उठ जाए नाज़नियों की नज़रें बिछ जाएँ। एक एक मनोहारिणी सुन्दरी उनके ऊपर अपने प्राण न्यौछावर किए बैठी है पर वे उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। उनकी इस निष्ठा पर भला कौन न उनका हो जाए? देखो तुम—

समझदार हो, सरस हृदय हो, फिर क्यों है निठुराई?
दो ही दिन है चारु चन्द्रिका फिर अँधियाली छाई।

शोक तुम्हें अवश्य था, सबको होता है, तुमने मनाया भी बहुत। पूरे चार साल तक निरंतर रोती रहीं, पर अब सम्हलो, धीरज धरो, क्योंकि जो रूहें सो गई हैं वे फिर सिवा क़यामत के रोज़ के कभी नहीं उठेंगी। याद रखो मज़हब कहता है जान देना महा पाप है और इस जीवन मरण के ही प्रश्न पर मनुष्य असहाय, शक्तिहीन हो जाता है—

इससे सोचो, थोड़ा जीवन मत चिन्ता में खोओ,
पतझड़ के वियोग में लतिके! मत विशेष अब रोओ।
बनमाली वह दूर खड़ा है दौड़ उसे तुम छूलो,

देखो मेहर अनीति पूर्वक हठ करना बुद्धिमानी नहीं है—

लोक रीति है, हुक्म ख़ुदा है, अनुमति जान हमारी,
हिन्द देश की सम्राज्ञी बन पुरवो साधें सारी।

× × × ×

लैला मेहर के साथ है। वह बारंबार जहाँगीर के प्यार की बात कहती है। मेहर चुपचाप सुनती है। कुछ अजब आकर्षण है इस बालिका की। मेहर शायद अपनी विपत्ति की इस चोट से मर जाती पर यह बालिका ही उसके जीवन का रस बन कर उसे पार्थिव आसक्तियों से साट देती है। बालिका कहती है कि जहाँगीर उसका विवाह कुँवर के साथ कर देगा। मेहर उसकी भोली बातें सुन गद्‌गद् हो जाती है और उसका मुख चूम कर, विभोर हो, कहती है—

तेरा ब्याह! न जाने कब हो! कौन करेगा किससे?
जीवन की गुत्थी में उलझन और पड़ गई इससे।

सीधी जीवन से वास्तव में इस प्रकार का एक सम्बन्ध गुत्थी में और उलझन पैदा कर देता है। साधारण जीवन साधारणतः सीधा चलता है पर इस प्रकार की गुत्थी और फिर उसके साथ की उलझन, डाहती है, न मरने देती है न जीने। कई रास्ते बारी बारी से आकर मेहर के हृदय-द्वार पर ठोकर मारते हैं। मेहर एक एक को पहचानती, स्वीकार करती, फिर मुकर जाती है। उसका चित्त कहीं और है, विचार कहीं और, हृदय कहीं ओर। विवेक कुछ कहता है, हृदय कुछ चाहता है। इस प्रकार वह ववण्डर में फँसी छिन्न-भिन्न हो रही है।

× × × ×

भावनाएँ उठती हैं और मेहर के हृदय में लय हो जाती हैं। उनमें बड़ा युद्ध हो रहा है—बचपन की भावनाएँ उठ उठ कर उसकी लालसाएँ प्रिय साधें जगा रही हैं, बचपन का प्रेम अनेकों जागृतियाँ जाग्रत कर रहा है और जहाँगीर सुन्दर लगने लगता है। लैला की बातें उसे और उलझन में डाल रही हैं। यदि यह जहाँगीर के समीप रहती उसका सम्बन्ध शाहजादों से हो जाता। यह भी सम्भव है वह कभी सम्राज्ञी हो जाती। सो लैला के उत्थान के रास्ते में अपने औचित्य

के स्वार्थ वश वह काँटा क्यों बोए। फिर कभी कभी चार वर्ष हो जाने पर भी शेर अफ़गन की स्मृति ताज़ी हो उठती है और बादशाह के प्रति घृणा और क्रोध हो आता है। कभी कभी स्वप्नों में शेर अफ़गन का रूप आ खड़ा होता है और उसकी दुर्बलता पर धिक्कार उठता है। मेहर घबड़ा उठती है। फिर भी पति की स्मृति अब धीरे धीरे धुँधली होती जा रही है और इधर उसकी बीमारी में जहाँगीर की सेवा उसे अपनी ओर खींच खींच कर पुराना घाव ताज़ा कर रही है। मेहर परेशान है, क्या करे। उसका हृदय इस प्रकार के पृष्ठों का समरांगण हो गया है। आखिर वह अपने को सम्हाल न सकी। फिर बीमार हो गई।

मेहर विषम ज्वर से पीड़ित बेचैन पड़ी है। उसकी आँखें बन्द हैं। पूरा पक्ष बीत गया पर उसने अभी तक कोई आहार नहीं लिया। हकीमों का तार लगा हुआ है। उसकी नब्ज़ की गति क्षीण हो गई है और वह चेतनाहीन है। आधी रात बीत चुकी है, दीपक की ज्योति मन्द हो गई है, हवा की भी गति बन्द है। रात साँय-साँय कर रही है, भय लगता है, दीपशिखा सीधी अकम्पित जल रही है, हाँ उल्लू ज़रूर हूक भर रहा है। इस भयावने समय में जब सारा संसार सो रहा है, इस निर्जन निशीथ में केवल एक व्यक्ति मूर्तिमान बना सर हाथ पर रखे महाचिन्ता का शिकार हो, मेहर की सेज के निकट झुका बैठा है। कभी कभी वह शोक से प्रासित लम्बी आहें भरता है फिर मेहर का चन्द्रमुख निरखकर अपनी आँखों से अश्रुधारा बहा देता है। जहाँगीर तप रहा है। शोक से घन उमड़ उमड़ कर उसके दृगों से 'जीवन' बरसा रहे हैं। सम्भव है इस वर्षा से मेहर का जाता हुआ जीवन संयोग से लौट आये। मेहर ने आँखें खोलीं और अलसाती हुई, क्षीण स्वर में उसने जल माँगा। फिर तो—

हर्ष से विह्वल हो तत्काल,
स्वर्ण प्याले में पानी डाल,
अंक में उठा सहारा दे,
लटें बिखरी सरका करके,

पिलाया जहाँगीर ने जल,

मिला कुछ तप्त हृदय को कल।

इस तपस्या का कुछ न कुछ फल अनिवार्य है, खुली आँखें देखती हैं, पूछती हैं किसी के शब्दों में—

"जाग रहा है कौन धनुर्धर

जब कि भुवन भर सोता है ?"

सारा आलम सो रहा है पर उसी आलमका शाह जहाँगीर अपनी सेवाओं को भरे हृदय से भरी आँखों से इस प्रतिमा पर चढ़ा रहा है। शेर भी पत्थर का दिल रखता हुआ अपने उपकार करनेवाले को नहीं भूलता और भूखा रह कर भी जब अपना काँटा निकालवाले नाई को भक्ष्य के रूप में पिंजड़े में पाता है मुँह फेर लेता है, फिर यहाँ तो मानवता है, कोमलांगी स्त्री है और उसका भी मर्म-हृदय ! भला कबतक अपने को सम्हालती ?

स्वयं ही गए नयन-पट खुल,

लखा सम्मुख सूरति मंजुल।

ज़रा कुछ झिझके शरमाए,

पुनः दृग मिलने को आए।

तुरत होते ही आँखें चार,

उमड़ आया लोचन में बारि।

डुबा ही दी दृग-तरणी झट,

गया गिर सुभग हृदय पर पट।

अब सम्हालना सम्भव नहीं। हृदय उछल उछल कर बढ़ता है। मेहर का मन फिर एक बार सौभाग्य—'सुभग'—की कामना कर उठता है।

× × ×

कौन, कहाँ से, परिचित स्वर में परच राग है गाता,

जिसके रसमें हृदय विवश हो ओत-प्रोत हो जाता ?

ब्राह्म मुहूर्त की बेला है। मेहर अच्छी हो चुकी है पर अभी

दुर्बलता बाकी है। वह जाग चुकी है। कैसे उसकी नींद टूटी? कहीं से कोई रसिक शान्त समय में कुछ परिचित स्वर से परच राग गा रहा है, और गाने के रस में हृदय विवश होकर ओत-प्रोत हुआ जाता है। कौन है यह गानेवाला? कहाँ बैठा अलाप रहा है? स्वर परिचित-सा प्रतीत होता है पर किसका है?—मेहर विचार रही है। कितना मीठा स्वर है जो इसकी—

> कल निनाद-कुञ्जी ने कानों के द्वारा दृग ताले
> अकस्मात ही खोल दिए; अब क्या हैं बजने वाले?

मेहर उठ चुकी है और उसकी नींद मुधुर संगीत की प्रतिध्वनि ने तोड़ दी है। पता नहीं रात्रि का कौन-सा समय है। वह जानना चाहती है। बर्दवान के गाँव में रहते रहते, ग्रामीणों के संसर्ग से उसने बहुत से ग्राम्य साधन अपना लिए थे। गाँवों में रहनेवाले लोग समय जानने के लिए घड़ियाँ नहीं रखते उनके पास दिल्ली, जैपुर और उज्जैन की वेधाशालाएँ नहीं होतीं। वे धूप और तारों को देखकर ही दिन और रात्रि की ठीक-ठीक बेला आँक लिया करते हैं। मेहर ने भी गाँव में रात्रि का समय तारे देखकर आँकने का अभ्यास कर लिया था और अब आकाश को देखकर वह समय का अन्दाज लगा रही है—

> देखूँ तो आकाश, रात अब भींग चली, ढलती है,
> सुस मलय हो गया 'मुकुट' मणि की आभा छलती है।
> उत्तर पूर्व नील मानस में 'हंस' तैरता सुन्दर,
> 'श्रवण' 'धनिष्ठा' पूर्व दिशा में चढ़ते अति डग-डग कर।
> 'मिथुन' ओट में हुआ, सु'कन्या' गगन-गर्भ में आई,
> 'अनुराधा' 'ज्येष्ठा' ने मिलकर 'वृश्चिक' चाल दिखाई।
> उत्तर पश्चिम नहीं 'प्रजापति' कर्क राशि के तारे,
> जो थोड़ा पहिले देखे थे निहित हो गए सारे।
> कुछ पश्चिम 'सप्तर्षि' आ गए परिक्रमा 'ध्रुव' की कर,
> इन तारों ही के परदों से निकल रहे क्या क्या स्वर?

रात्रि चैत्र की है—चैत्र में ही सन्ध्यान्त में 'चित्रा' पूर्व दिशा मे

क्षितिज पर निकलती है—पट-प्रतीचि पर संध्या में चित्रा थी चित्र बनाती—और तभी ऊपर लिखे नक्षत्र और तारे यथास्थान आस्मान में दीखते हैं। कवि को ज्योतिष शास्त्र का पूर्ण ज्ञान है और वह नक्षत्रों की चाल से ही, उनके क्रमिक स्थान से ही, मेहर को रात्रि के समय का अन्दाज़ करा देता है। ठीक उषा के पहले का समय है तभी तो—

पट-प्रतीचि पर संध्या में चित्रा थी चित्र बनाती,
ऊषा का वह स्वप्न जहाँ सोया है लाने जाती।

इस 'चित्रा' और 'उषा' का एक साथ जहाँ जहाँ कवि ने नाम लिया है सचमुच वह वहाँ किसी अनिरुद्ध का भी साथ ही ध्यान कर संकेत करने लगता है। तीसरे सर्ग में जब इनका वर्णन हुआ है जहाँ-गीर अनारकली के प्रेम में प्रमत्त है और अनारकलीरूपिणी उसकी उषा उससे छिन जाती है गो अन्त में उसे वह प्राप्त करता है। आज भी 'चित्रा' के नाम के प्रभाव से उसकी मेहर कुछ समय के लिए संकट में पड़ते-पड़ते बच जाती है और जहाँगीर का भी भावी संसार उजड़ते उजड़ते बस जाता है। कवि की आँखों में 'चित्रा' दूत की भाँति 'ऊषा' का अभिसार सिद्ध करती है और वरुण का प्रतिनिधि सर्वद्रष्ठा 'ध्रुव' उसमें विघ्न डालता है जिससे उपद्रव होते हैं। अस्तु, उषाकाल के पूर्व का समय है जिसका संकेत कवि ने ब्राह्ममुहूर्त में चैत्र मास में आकाश में चमकनेवाले नक्षत्रों को यथास्थान रख कर किया है।

मेहर के मुख से 'सप्तर्षि' और 'ध्रुव' का उच्चारण होते ही उनकी ध्वनि से एक प्रकार की ठेस सी लगी। जिस प्रकार चोर चोरी करने जाते हुए रास्ते में सन्देह से देखा जाकर ठमक जाता है उसी भाँति मेहर भी कुछ दहल गई। सप्तर्षि भारत में—बर्दवान वाले गाँव में—देवता समझे जाते हैं और 'ध्रुव' स्त्रियों के हृदय की पावनता के साक्षी! मेहर कुछ सन्नाटे में आ गई और जैसे ही उसने कहा—

कुछ पश्चिम 'सप्तर्षि' आ गए परिक्रमा 'ध्रुव की कर—

झट स्वतः उसके मुँह से दूसरी लाइन निकल पड़ी—

इन तारों ही के परदों से निकल रहे क्या क्या स्वर ?

'ध्रुव' ने शेर अफ़गन और मेहर की शादी देखी थी और बाद में मेहर के उठते हुए प्यार को देखा था फिर शेर अफ़गन को देवता की भाँति समझ कर उसके प्रति निष्ठा की प्रतिज्ञा मेहर के मुँह से सुनी थी। मेहर समझती है आज वही ध्रुव उस पर अविश्वास की हँसी हँस रहा है। शेर अफ़गन भी आज वहीं कहीं किसी परदे से तारा बनकर झाँक रहा होगा और मेहर को मनोवृत्तियों का युद्ध देख रहा होगा साथ ही उसकी आधुनिक दुर्बलता भी उससे छिपी न होगी। सो मेहर डरती है कि इन तारों के परदों से अविश्वास का स्वर निकल रहा है, धिक्कार की ध्वनि सुन पड़ती है। ठीक इसी समय

फिर किसने गिटकिरियाँ भरकर की अलाप पंचम में ?
फिर कैसे उतार स्वर लहरी ताल तोड़ दी सम में ?

अब उसकी आँखों में नींद नहीं। नींद आए भी तो क्योंकर ?—

नींद कहाँ अब इन आँखों में स्वप्न संग वह खोई,
ज्यों ले तनिक बसेरा मग में विहग प्रवासी कोई।

यह कौन सा स्वप्न है जिसकी ओर मेहर अपना दिल पकड़े संकेत कर रही है ?—

उन परियों ने फिर सपने में आकर ताज पिन्हाया,
किसी सयाने से पूछूँगी है परियों का साया।

आज फिर वही (सातवें सर्गवाली) परियाँ स्वप्न में दिखाई पड़ीं। मेहर उन्हें देख कर घबड़ा-सी गई थी पर अबकी उन्होंने कोई बेजा बात नहीं की, उसके भविष्य का प्राक्कथन नहीं किया केवल उसको दुलहिन बनाकर हँस हँस कर उसके ब्याह के गीत गाती रहीं। क्या रहस्य है इन ब्याह के गीतों का—आखिर मेहर पर 'परियों का साया' है—वह इसका रहस्य 'सयानों' से, जानकारों से पूछेगी। अच्छा हुआ जो किसी की स्वर लहरी ने उसे बरबस जगा दिया और स्वप्न की परियों को दूर भगाकर उस ग़रीब को बचा लिया। मेहर कहती है—

आती है ध्वनि उस उपवन से देखूँ कौन रँगीला
छेड़ रहा है नींद निशा की छेड़ सुराग रसीला।

मेहर आँक रही है कौन है यह प्रातःकालीन वातावरण में प्राण फूँकनेवाला—

> परिचित है क्या ? हाँ परिचित हैं, कितना कोमल स्वर हैं,
> मीठा गला, बोल अति प्यारा, मधुवर्षी निर्झर है !

पहिचान गई मेहर इस स्वर को और इस गायक को। रोका उसने अपने हृदय को। कितना उच्छृंखल है उसका हृदय। उसने उसे टोका—

> उफ़ ! मेरे मन, आगे मत बढ़, ओ गज काननचारी,
> तुझे फँसाने को खोदा है आगे गड्ढा भारी।
> जिस पर तृण घासों का है सुकुमार आवरण डाला,
> स्वर सिंधुर वह ही होगा बहका ले आनेवाला।
> जहाँ बढ़ा आगे धोके की टट्टी तक पग डाला,
> झट मुख खोल उदर में रख लेगा वह गर्त निराला।
> साम दाम हस्तिनी भेज फिर परचायेगा तुझको,
> फिर मस्तक पर बैठ करेगा सर अंकुश से मुझको।

बड़े सुन्दर अलंकारिक भाषा में छिपे रहस्यमय भावों को भर कर कवि रूपक खड़ा करता है—मन ! तू सम्हल और गज की भाँति नहीं जाने हुए रास्ते में, घने बन में मत भटक, वरन तुम्हें फँसाने के लिए सामने भारी गड्ढा खुदा हुआ है। हाथी को फँसाने के लिए रास्ते पर गड्ढा खोदकर उसे घासों से ढक देते हैं जो साधारण समतल भूमि-सा मालूम होता है फिर 'सिंधुर'—सिखाया हुआ हाथी—स्वर करता हुआ जाकर दूसरे हाथी को बहका लाता है जो इस धोके की टट्टी में पग डालकर गिर पड़ता है और बझानेवाला हस्तिनी भेजकर उसे परचा कर घर लाता है फिर उसीके मस्तक पर बैठ कर अंकुश के बल उसका संचालन करता है। इसी कथा का आश्रय ले मेहर कहती है हे मन, यदि तू आगे बढ़ा तो याद रख सामने तृणों से ढका गड्ढा है और सुन्दर गानस्वर जो यह सुन पड़ता है बहकानेवाले 'सिंधुर' का है। यदि कहीं खिंचकर इसके साथ गया और सामने की धोके की टट्टी में पाँव रखा तो निश्चय शीघ्र वह निराला गर्त तुम्हें उदरस्थ कर

लेगा और बझानेवाली हस्तिनी भेजकर तुम्हें परचा लेगा फिर तुम उसके हो जाओगे। तुम्हारी स्वतंत्रता छिन जाएगी, अंकुश की भाँति प्रेम मस्तक पर बैठ कर चोटें मारेगा और तुम बिलबिला उठोगे। मेहर उस चोट की याद से काँप उठती है, चमक कर जैसे कह उठती है—

नहीं ! नहीं ! कोई हो शासन तुम पर कौन करेगा ?
उस परिचित दुख में फिर फँस कर आहें कौन भरेगा ?

पर अपने दिल पर मेहर को क़ाबू नहीं। वह घबड़ा उठती है—

ठहरो ! ठहरो ! क्यों पग मेरे बढ़ते ही हो जाते,
नहीं आज क्यों काँटे कोई राह रोकने आते।
शासन भला करूँगी किस पर आज्ञा उल्लंघन कर,
जब मेरा मन ही विद्रोही बन है गया सरासर।

मेहर बरदाश्त नहीं कर सकती कि उसका हृदय विद्रोही होकर स्वच्छन्द आचरण करे और लोग उसके लोभ पर—आचार पर—उँगली उठाएँ। वह अन्त कर देगी उस हृदय का और साथ ही अपना भी—

अच्छा तो मत मान, अरे ! हूँ अन्त अभी कर देती,
इसी सरोवर के पानी में लाज बचा हूँ लेती।

इतना कह कर मेहर ने पानी में घुसने के लिए ज्योंही अपने पैर बढ़ाए किसी के सुदृढ़ हाथों ने उसको पीछे से पकड़ कर खींच लिया। पूछा—

आखिर यह अमूल्य जीवन क्यों अपना देने जाती ?

जहाँगीर कहता गया—दया कर कुछ रहस्य तो खोलो, ज़रा पुराने प्रेम के ही नाते बोल दो। यदि तुम दोनो पलड़े सम करके मेरे हृदय को न्याय तुला पर रख कर प्रेमबाट से तोलोगी तो तुम्हें उसका हल्कापन या भारीपन ज्ञात हो जाएगा। तू आज अपने हृदय की कसौटी पर मेरा मन एक बार कस कर परख ले। बहुत मुकरी, बहुत सम्हाला पर—

आज तुझे कहना होगा क्यों निठुराई है ठानी,
आज माननी होगी मेरी, मेहर, मानिनी रानी।
जानूँ तो मैं, हुई ख़ता क्या ? कौन चूक है मेरी,
जो गत चार वर्ष से मेरी ओर न आँखें फेरी।

नाट्य प्रभाव को पूरा उतारता हुआ कवि का उत्तर मेहर के मुख में प्रवेश कर, उसके भावों को मूर्तिमान कर, रोमांच की सृष्टि कर, असाधारण वेग से ललकार कर बोल उठता है—

क्या सचमुच तुम नहीं जानते, होगा मुझे बताना ?
दुनियाँ जिसे जानती सब है नहीं उसे क्या जाना ?
हटो हटो इन ख़ूनी हाथों को तुम दूर हटाओ,
मेरे पति के घातक हो तुम पास न मेरे आओ।

जब तक जहाँगीर ने चुप चाप बरदाश्त किया था मेहर ने उसके दुख को अपना दुख समझ झेला था पर आज उसके प्रश्न को सुन कर उसने उसे धिक्कार दिया—तुम्हारे हाथों में मेरे पति का ख़ून लगा है इन्हें दूर हटाओ। जहाँगीर इस उत्तर के लिए तैयार था। उसने बहाने नहीं बनाए और देव प्रतिमा के सम्मुख भक्त की भाँति सच सच कह सुनाया। आज यदि वह बहाने बनाकर कहता कि वह शेर अफ़गन का हत्यारा नहीं तो सारा संसार उसकी मूर्खता पर हँस पड़ता। भला जिसे सारा जगत जानता है, जिसकी स्याही दुनिया की आँखों में लिख गई है उससे वह क्योंकर इन्कार कर सकता था। स्वयं मेहर घृणा से मुँह फेर लेती। कवि कला पारंगत है झट सारा रहस्य समझ, विवेक का सहारा ले उसने जहाँगीर की जिह्वा पर सरस्वती को बिठा दिया—

तुरत पैर पर गिर सलीम ने कहा—"क्षमा कर रानी,
मैं हत्या का अपराधी हूँ गलती मैंने मानी"

पर कौन जहाँगीर की अवस्था में रह उसके साधनों के होते उसी के मार्ग का आश्रय न करता। प्रेमी होकर प्रतियोगी से जलना स्वाभाविक है। वह मानता है कि वह दोषी है, खतावार है पर वह करता क्या? स्वयं वह अपनी जान दे डालना चाहता था पर—आशा संजीवन दे दे कर प्राण नहीं दे पाया—शायद कभी मेहर मिल जाय! कितनी बार उसने अपने हृदय को समझाया पर वह प्रेम के बहकाने

में आ ही गया और चाहे जैसे भी हो उसने उसे अपनाने के लिए प्रण कर लिया और फिर—

वह गुलाब पाने में जिन काँटों ने बाधा डाली,
उन्हें तोड़ कर मुक्त कर दिया प्रिय गुलाब की डाली।
अतः रत्न वह प्यारा मेरा जो रकीब ले भागा,
काट दिया मैंने अवश्य उसके जीवन का धागा।
ख़ता हुई मुझसे ज़रूर पर मैं हूँ प्रेम दिवाना,
प्रेम-मद्य-विक्षिप्त जीव की भूल न मन में लाना।
दोषी हूँ पर प्रेम अन्ध हूँ, या तो मुझे क्षमा दो,
या यह लो तलवार ख़ून के बदले ख़ून बहा दो।

मेहर ने जहाँगीर को उठाकर कहा—दोष तुम्हारा नहीं मेरे भाग्य का है। तुमने अवश्य बुरा किया पर वह बुरा-भला भी बीत ही चुका और तुम्हारे दामन में लहू के छींटे लग ही चुके—इसी दामन में मेहर की उँगली का लहू लग कर सलीम की मूर्ति उसके हृदय में अमर हो गई आज उसी दामन में शेर का लहू लग कर जहाँगीर को घृणा का पात्र बना रहा है—यह कायरता की घटना, हत्या का हृदयविदारक दृश्य मन में सदा संस्मारक चोट लगाता है। मेहर ने सोचा था वह जहाँगीर से कभी नहीं बोलेगी, उसके पति का रक्त बहने वाले की इच्छा पर कभी नहीं बहेगा। इसी कारण मौन भाव से आत्महत्या के लिए वह उद्यत थी जिसमें उसका ऊधमी हृदय उसके विवेक पर विजय न प्राप्त करले पर, वह कहती है, तुमने आज अपना कुसूर स्वीकार कर मुझे वह मौका नहीं दिया और अपने प्राणों की स्वयं भिक्षा माँगते हुए तुमने एक कठिन समस्या उत्पन्न कर दी। तुम जो अपनी तलवार अपना रक्त बहाने के लिए दे रहे हो अपने पास रखो। रक्त बहाने पर भी मैं उन्हें नहीं पा सकती फिर ख़ूनी बन कर कलंक का टीका अपने सिर क्यों लूँ? इस कारण

कभी नहीं मैं ढरकाऊँगी जीवन प्याला पीओ,

रक्खो यह तलवार म्यान में मरो नहीं तुम जीओ ?

कितना स्वाभाविक, कितना सरल और कितना मार्मिक यह आशीर्वचन है। कौन नहीं मेहर के भोलेपन पर दीवाना हो उठेगा ? पर अपना भला बुरा समझने वाला जहाँगीर कह उठता है—ऐसा जीना भी क्या जिसकी छाया से तुम डरती हो, जब तुम मेरे नाम से भी घृणा करती हो ! मेरा जीना क्या जब तुम स्वयं मुझसे विरक्त हो ख़ुदकुशी करने जाती हो, जब तुम्हारी ये मदमाती आँखें मुझ पर नहीं उठतीं। इस जीवन से तो मर जाना बेहतर है। मेहर साफ़ कहती है—घृणा नहीं करती फिर भी तुमसे हृदय खोल कर नहीं मिल सकती। प्रेम से तो नहीं पर आदर की दृष्टि से तुम्हें अवश्य देखती हूँ, पुजारिणी की श्रद्धा से भक्ति अवश्य करती हूँ। इस पवित्र रेखा से मैं बाहर नहीं जा सकती। दूर दूर से ही मैं तुम्हारी पूजा किया करूँगी। मैं अशुभ हूँ तुम दूर हटो नहीं तुम्हारी छाया छू जायगी, मैं अभाग्य की रेखा हूँ अलग रहो—

मैं हूँ निशा दूर ही से झाँकी रवि की करने दो,
किसी वियोगिनि सी स्यापे में रो रो आँसू भरने दो।
रोती रहूँ सदा ही चाहे दर्शन को ललचाऊँ,
नहीं आँख भर रवि को सम्मुख कभी देख मैं पाऊँ।
तुम्हें दूर से देख विलग रह रह रोना जीवन है,
मिलना सम्भव नहीं तुम्हारा छूना मुझे मरन है।

जहाँगीर भी अब पहले जैसा कामुक प्रेमी नहीं रहा। मेहर के स्वर में स्वर मिला गा उठता है—

तुम प्रसन्न बस रहो, बनी ही रहे निगाह तुम्हारी,
नहीं प्रेम, पूजा का इच्छुक है यह भक्त पुजारी।
नहीं निशा, जीवन की मेरे तुम तो हो उँजियाली,
बिना तुम्हारे तो मुझको लगती दुनियाँ अँधियाली।
रवि सा तेरे लिए सदा ही चक्कर रहा लगाता,
पर तू मुझसे छिप जाती थी नहीं तुझे था पाता।

भाग नहीं, ओ निशा सुन्दरी, तेरे सँग सो जाऊँ,
तेरे बिखरे श्याम अलक में तारा बन खो जाऊँ।
मुझको और नहीं कुछ कहना केवल इक अभिलाषा
पूरी कर देने की तुझसे रखता हूँ मैं आशा।
अगर कहो तो बतलाऊँ मैं पूरी उसको दो कर,
छोड़ उसे कुछ और नहीं याचूँगा मैं जीवन भर।

मेहर को जहाँगीर की इच्छा दीखती सी है। पता नहीं क्या है वह जाने पर शायद यह कामना उचित समय से बहुत पूर्व है। सब बातें समय पर ही अच्छी लगती हैं। मेहर कुछ उसकी कामनाओं को ऐसी दुश्मन भी नहीं हैं। पति की मृत्यु पर जब वह मातम कर रही थी उसे ढाढस देती हुई सर्वसुन्दरी की जिह्वा पर अदृष्ट ने बैठकर कह दिया था, भावी सुझा दिया था—

तू अब चेत! बची खेती की बनचर से रखवाली कर,
स्वर्ण सदृश पावन अनाज से फिर अपना घर ले तू भर।

मेहर ने इन पंक्तियों का रहस्य समझा है। बची खेती क्या है—उसकी लैला और जहाँगीर के प्रति उसका प्रेम। पहले भी मेहर ही और सलीम थे आज भी वही बच रहे, बीच के सभी घट गये—शेर अफ़गन, जमीला और कुतुबुद्दीन। फिर भी मेहर डरती है जहाँगीर याचक है, दरिद्र है पता नहीं क्या माँग बैठे इसलिए

जाती हूँ अब, फिर सुन लूँगी, चित इस समय नहीं थिर—
मेहर मंद गति चली सोचती पीछे लखती फिर फिर।

अट्ठारहवाँ सर्ग

ग्रीष्म का यौवन है, सूर्य ऊपर चढ़ चला है, मेघ का कहीं नाम नहीं, पसीना बदन से बह रहा है। सूर्य की किरणें सामने नाच रही हैं, पृथ्वी से लपटें सी निकल रहीं हैं, तालाबों का पानी जलने लगा है, रेत पर मानो आग बल रही है। नदी नाले सूखे जा रहे हैं। पर जो किसी के लिए जहर है वही अन्य के लिए अमृत है—हरा जवासा फूल रहा है। चराचर शीतलता के फ़िराक में आश्रय ढूँढ़ रहा हैं। कालिदास के ऋतु संहार में ग्रीष्मवर्णन की भाँति कवि का ग्रीष्म प्रसंग भी सुन्दर उतरा है—

> जल छिपता फिरता 'सेवार' में, 'मोथों' के साये में,
> बुदबुद के अंगूर छिपे हैं फेनजाल फाये में।
> श्वास-धार रुक रुक चलती है, नब्ज नहीं है मिलती,
> पत्थर तोड़ पीस देती थी, घास नहीं अब हिलती।

नदी का वर्णन है। ऐसा जान पड़ता है सूखने के डर से नदी का जल सेवार और मोथों के नीचे छिपता फिरता है। पानी का धीरे धीरे, रुक रुककर चलना ऐसा दीखता है जैसे उसकी साँस ही रुक रुककर चल रही हो, नब्ज ही गायब हो गई हो। गर्मी से यह हाल है कि मारे प्यास के जीभ बाहर निकल आती है और बाहर निकलते ही लू से झुलस जाती है, उस पर छाले पड़ जाते हैं! लहरें ही नदी की जिह्वा हैं जिस पर बुदबुद रूपी छाले पड़े हुए हैं, जीवन के ही लाले पड़ गए हैं।

> फूले झाऊ का दहका है अंचल में अंगारा,
> आहें भर है रहा आग में जलता हुआ करारा।
> जो सरिता को भरे अंक में शीतल करता छाती,
> तटिनी जिसके मुख पर उठ उठ चुम्बन छाप लगाती,

आज सूर्य उसका रक़ीब बनकर रथ पर बैठाये,
सरिता हरण किए जाता है, तट को दूर हटाये।

इस 'सरिता-हरण' से उन पर कैसी बीतती है जिसके जल का आश्रय ले विहंगों ने उसके करारे में घर बनाया था—

विरह-विहग 'पतरंगा' 'मैना' आ छाती छलनी कर
तट के मानस के अन्दर रम रहे बना अपना घर।
फिर उन विहगों के उर में निज निहित प्रेम प्रतिमा रच
तट सेता है बड़े यत्न से विरह ज्वाल में तच तच।
खड़ा खड़ा आहें भरता है दोनों बाँह उठा कर,
तटिनी भी सूखी जाती है प्रिय-वियोग-दुख खाकर।

जन, मानव, वृक्ष, लता सभी ग्रीष्म की धूप से तप तप कर सूख रहे हैं। फूलों और घासों का रस सूखने से हरियाली का सत्यानाश हो गया है। वर्णन सुन्दर है—

स्वर्ण कटोरे में 'धमोय' प्यासा, जल याच रहा है,
बाँस छेद बंसी के स्वर पर मधुकर नाच रहा है।
मंदारों के ताप पुंज से होंठ पड़ गए नीले,
पीले बेण हुए, 'तिमपतिया' में छिप सोये टीले।
मधुमक्खी जल गई फूल पर, पानी पर जा बैठी,
कमलनाल है भाँज रहा फूलों की बना बनैठी।

इस अन्तिम पंक्ति की उक्ति की यथार्थता और सौन्दर्य वही समझ सकता है जिसने सुविस्तृत जल-वक्ष पर कमल-बन देखा हो। मधुमक्खी, भौंरे, फूल छोड़ पानी पर बैठते हैं मानों फूल भी उन्हें जला रहे हों।

छिपा केहरी किसी कंदरा में है जीभ निकाले,
हिरन चोकड़ी भरना भूले हुए धूप से काले।
चरवाहे ढोरों को लेकर बट के तले पड़े हैं,
इस नीलाम्बर भू किरीट में अगणित लाल जड़े हैं।
पूषण पावक बरसाता है बट-नागर लटधारी,
अँगुली पर बट लिये खड़ा है करता है रखवारी।

हिम-गिरि के मस्तक से निर्झर बन बह चला पसीना,
पानी में है जान सभी की जीवन ही है जीना।

× × ×

आगरे की गरमी से भागकर मेहर और जहाँगीर भारत की जीवित 'अलका' कश्मीर की ओर चले जा रहे हैं—

बरसती जहाँ आग ही आग,
आगरे की गर्मी से भाग,
पार कर चढ़ते गिरि-सोपान,
विश्व का अनुपम स्वर्गस्थान।

रास्ते का सौंदर्य अनुपम है। मैदान सारा पार कर लिया है। जम्बू से ऊपर पहाड़ों से होकर जा रहे हैं—

हरित छबि सारी में पथ-कोर,
दीखता जिसका ओर न छोर,
कहीं चोटी पर चढ़ जाता,
उतर फिर नीचे है आता।
कभी चलता सरिता के तीर,
प्रवाहित जिसका द्रुतगति नीर,
कभी गहरे गड्ढों पर हो,
कभी सरिता के उरमें खो,
नहाकर पुनः निकल उस पार,
तीर इक यातन-उक में मार,
कहीं विस्तृत हो पा सम भूमि,
कहीं रेखा बन नभ को चूम,
किसी आशा की बनकर डोर,
लिए आभा है नभ की ओर।

फिर उस कालिदास और मम्मट, अभिनव गुप्ताचार्य और वल्लभ, कल्हण और विल्हण के देश कश्मीर में पहुँचे जहाँ के केसर के खेतों की संसार भर में ख्याति है, जहाँ झेलम और सिन्धु के तटवर्ती केसर

के खेतों में रघु के अश्व लोटलोट कर अपने सटों में केसर का मादक सुरभिपूर्ण पुष्प-मकरन्द भर लेते थे।

सुरभिमय केसर के वे खेत,
शिखर वे हिम-आच्छादित श्वेत,
तरणि–कर में करते चम-चम,
हुआ जब हेम रजत संगम।
विविध हिम श्रोतों में हिमखंड,
किए हैं लड़ लड़ नाद प्रचंड,
धार में टूट पड़ा भू - भाग,
मिला कर नदी-राग में राग,
लहर में कर विनोद विनिमय,
उसी की लय में होता लय।

वह सुन्दर कश्मीर देश जिसकी कविकुल शिरोमणि कालिदास ने बारम्बार प्रसंसा की है कितना सुन्दर है। कवि का हृदय अनेक स्रोतों से, भावमय वीचियों सहित बह चलता है—

सुसंध्या - दिनकर पारस बन,
स्वर्ण करता हिम, जीवन-धाम,
निर्झरों के फुहार पर चढ़
इन्द्रधनु अगणित देता गढ़।
व्यथा का बन सजीव अनुवाद,
फूट करके पाषाण विषाद,
बना कविता कवि की नवजात,
उबलता झरता अमर प्रपात।
उठ रही नीचे सरस फुहार,
कुहासा सा है धुँआ धार।
सुमन के बिरवा बन घनश्याम,
वारि - बालाएँ देख ललाम,
रास रच सखियों ही के संग,

केलि कर मचा रहे हैं रंग।
विमल मानस, है जीवन स्वच्छ,
भरा है प्रेम पद्म से वक्ष।
आह की जिसकी मंद हिलोर,
धैर्य अचल - तट देती बोर।
विरह की पीड़ा उर में गो,
निठुर की मूर्ति ध्यान में खो,
भूल ही गया जिसे दुष्यंत,
ठगी सी लखती अलख अनन्त,
विरह विधुरा वह शकुन्तला,
चोट पति तिरस्कार की खा,
स्वर्ग में छिप सोई है आज,
किनारे फेंक सुमन का साज।
'मानसी' तेरा लख यह वेष,
सतत सबको होता है क्लेश।

काश्मीर देश की यह घटा उसी को नसीब होती है जो उस अनोखे प्रान्त को अपनी आँखों देखता है जहाँ नैसर्गिक सौन्दर्य और मानवी लावण्य एक से एक बढ़कर हैं। Romantic दम्पति को इस प्रान्त से बढ़कर Honeymoon के लिए और स्थल पृथ्वीतल पर नहीं। क्या सुघड़ स्थान ढूँढ़ कर जहाँगीर अपने उस धन को लिए जाता है जो अपना हो होकर भी अन्य का होता रहा और जिसकी कृपा के निमित्त वह सदा मस्तक झुकाए उसके सम्मुख खड़ा रहता है, उसकी इङ्गित पर नाचता है। सम्भव है मेहर का जला हुआ दुखी हृदय कश्मीर के शीतल प्रेममय वातावरण में कुछ पसीजे और पसीज कर ठण्डा हो जाय, तब कहीं इस यशस्वी प्रणयी का मनोरथ सफल हो। सौन्दर्य के वातावरण में, मधुर संगीत के सामिप्य में कठोर से कठोर हृदय भी द्रवित हो जाता है, सो देखना है, जहाँ-गीर के दिल के फफोले फूट पड़ते हैं अथवा सूख जाते हैं।

जहाँगीर और मेहर घोड़ों पर सवार ऊपर के मनोहर दृश्य देखते चले जा रहे हैं। सम्राट् इस देवदुर्लभ स्थान को, इस अद्भुत भूखण्ड के मनोरम सौन्दर्य को दिखाता जा रहा है। जहाँगीर और मेहर गृह के उस शान्तिपूर्ण वातावरण में पगे दीखते हैं जिसमें प्रेम का बीज अंकुरित होता है और पास के सजीव नैसर्गिक दृश्य दबे भावों का, मानव विलास और आकांक्षाओं का उद्दीपन करते हैं। घरेलू सम्बन्ध के उपरान्त शीघ्र ही गृहजीवन का भी आरम्भ होता है—

रास्ते में लख कहीं शिकार
तीर दोनों ही देते मार।
तीर ने किसके है मारा,
नहीं कर पाते निपटारा।
हार तब जहाँगीर ही मान,
जीत जाता पा प्रिय मुस्कान।

जो सारी सल्तनत, अपना सारा वैभव मेहर की एक कृपा के ऊपर न्यौछावर किए बैठा है उसे इस हार को मानने में क्या लज्जा है? इसी हार में तो उसकी जीत छिपी है। इस प्रकार के खेल में कौन नहीं बारम्बार हारना चाहेगा?

कश्मीर की जलवायु का प्रभाव अवश्यम्भावी था। मेहर का दुःख और चिन्ता से मुरझाया हुआ शरीर फिर पुष्प की भाँति खिल उठा।

स्वास्थ्यकर पाकर नीर अनिल
मेहर फिर गई फूल सी खिल।
गहन चिंता से उग्रह पा
गई छा षोड़श चन्द्रकला।

फिर इस चन्द्रकला का पान चकोर क्यों न करे? जहाँगीर बाग़ बाग़ हो जाता था। उसका मन मोर बन थिरक उठता था। 'रूपदीपक का बना पतंग' वह मँडरा मँडरा कर उस पर टूट पड़ता था पर अभाग्यवश —

मिलन में फानूसी शीशा
शलभ को रखता दूर हटा।

इस प्रेम की अजब लीला है, हारता है तब तड़पाता है, जीतता है तब ललचाता है। मेहर अब जहाँगीर की हो चुकी है पर अभी वह उसकी दुर्बलता से लाभ उठाएगी, उस पर हँसेगी, उसे ललचाएगी, और मुकर जाएगी। जहाँगीर को रोमांच होगा, सात्विक स्वेद होगा और वह अपने चटपटे होंठ चाटेगा! सो मेहर दीवाने ग़रीब जहाँगीर को हाथ में कर उसके हृदय से, उसकी भावनाओं से, खेल रही है—

चंग को कभी ढील देकर
झुका देती नीचे क्षणभर,
तनिक ललचा फिर डोरी तान
चढ़ा लेती फिर मेहर कमान।

इस कमान से छुटा तीर जहाँगीर का हृदय भेद देगा, कितनी बार पहले भी भेद चुका है और इस की प्यारी चोट के लिये वह सदा विनय किया करता है। इस कमान के तीर की चोट बड़ी भयानक, बड़ी स्थायी होती है कोई विश्वामित्र से पूछे। जहाँगीर की क्या हक़ीक़त? मेहर की बाज़ी है—

क्रोध-भभके में खिंचा गुलाब,
चढ़ी भौंहों पर आया आब।
स्वेद कण माथे से झर झर
चढ़ाते पानी भ्रू-असि पर।
जिधर फिर जाती यह तलवार,
कलेजे से हो जाती पार।

आज मेहर जहाँगीर की, उसके साम्राज्य की, धन-धाम और विभूति की स्वामिनी है। आज जमीला के षड्यन्त्र, मेहर के दुर्भाग्य की दुरभिसन्धियाँ और अकबर की कूटनीति कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। आज मेहर का भविष्य चमक रहा है और उसका सौन्दर्य, उसकी शान, चकाचौंध उत्पन्न करेगी। वह मेहर

बिगड़ती बनती, रचती रंग
गई मिल 'नूर' 'जहाँ' के संग ।

जहाँगीर की दमक स्वयं मेहर है। उसकी दीप्ति बनकर वह उसमें आज निहा हो रही है। मेहर संसार की चमक है। जहाँगीर जगत की मौलिमणि है और मेहर उसकी छिटकती आभा है। इस हीरे की वह ज्योति है। निर्भीक मेहर जहाँगीर से बिगड़ती है, फिर बनती है, नाचती है, उसे नचाती है और इस प्रकार रंग रचती है। जहाँगीर पागल हो गया है। उसे फिर फिर यह विश्वास नहीं होता कि मेहर आज 'जहाँ' की 'नूर' है। ग़रीब को जिस प्रकार उसका अनायास प्राप्त धन सन्देह और डर उत्पन्न करता है वैसे ही अपनी इस चिर अभिलषित कामना को चरितार्थ होते देख जहाँगीर कुछ संदिग्ध, कुछ भयमिश्रित हर्ष से गद्गद हो जाता है। सचमुच यह मेहर क्या आज उसकी है ? कितनी साधों का लक्ष्य, अनेकों व्यथाओं का कारणस्वरूप, यह मेहर आज उसकी है, वास्तव में उसकी है। और वह आज धन्य है। भारत का साम्राज्य जितना उसे सुख न दे सका, अकबर के ताज और सिंहासन उसे जितना आनन्द न दे सके उतना इस चिर अभिलाषा की पूर्ति से उसे हुआ। धन्य है वह निश्छल, भला, जहाँगीर !

× × ×

शालामार वाटिका आज भी काश्मीर देश के सुन्दर प्रान्त का सौन्दर्यवर्धन कर रही है। सुन्दर, कोमल हाथों ने इसको सजाया था, राजसी करों ने इसे छू छू कर, चूम चूम कर बढ़ाया था। यह शालामार की बाटिका जहाँगीर और नूरजहाँ की कहानी आज भी सजीव खड़ी कह रही है। इसका कोना-कोना, कुंज-निकुंज जहाँगीर और मेहर के प्रेम-प्रदर्शन, प्रणय-सम्भाषण का साक्षी है। इसकी एक एक घास उन घासों द्वारा प्रसूत हुई है जिनको कभी मेहर के कोमल चरण-कमल छू छू कर हरी करते थे। जहाँगीर कहता है—'शालामार नहर प्रांगण में वह बन अश्व-सरिस निर्झर'—'निकाले हुए'

बाजि की भाँति—मस्त हो कितनी ही चालें चलता है। पाषाणों के हृदय से होकर बहने वाली इस नहर की तरल तरंगें नीरस हृदयक्षेत्र में भी 'सरस उमंगे' उपजाती हैं और पर्वतों के पत्थर के हृदय में भी जीवन की धारा बह निकलती है। निर्झर को नीचे उतारने के लिए मानो पर्वत ने अपने अवयवों द्वारा ही सोपान मार्ग विरचित कर दिया है और इस बाग़ में फ़ौवारे उबल उबल कर रस की वर्षा कर रहे हैं। इस आनन्द से विहँसते बाग़ में चलने को जहाँगीर मेहर से प्रार्थना करता है—

> आओ मेहर चलो हम तुम भी जलक्रीड़ा का लें आनन्द,
> पर्वत के स्वतन्त्र जड़ जंगम-से विहरें हम भी स्वच्छन्द।

मानवी स्थिति में बड़ा दुःख है, यह जहाँगीर पूरा झेल चुका है। समाज के निठुर प्रहार हृदय को जर्जर, शरीर को क्षतविक्षत कर देते हैं। वन्य जीवों का आचरण कितना स्वच्छन्द, कितना सुखद है। मानवी ढोंग-भरी कृत्रिम सामाजिकता कितनी परतंत्र, कितनी दुखद है। फिर विशेष कर जब प्रेम की मार से सदा का आहत शरीर-पंजर अपने इष्ट को सिद्ध करता है तब उसकी इच्छा अपनी कृत्रिमता को छोड़कर उस जीवन को अपनाने की होती है जो पशुओं का आज भी अपना है। उनके प्यार और प्रेमक्रीड़ा का शतांश भी मनुष्य द्वारा विकसित समाज की दीवारों की ओट में सुलभ नहीं इसलिए अपने प्रेम के साम्राज्य में स्वच्छन्द विचरने की कामना लिए जहाँगीर मेहर से ऊपर की लाइनें कह उठता है। और कहता है—उपवन-पथ के दायें बायें खड़ी सफ़ेदों की सुन्दर पंक्ति, देख मेहर, तुझे देख देख कर विहँस रही है, सर झुका झुका कर अभिवादन कर रही है। इस शालामार के बीच बीच में स्थान-स्थान से होकर बहनेवाली लहरों ने एक दूसरे को काट काट कर चौक सा बना रखा है, उसी चौसर में, उस पाटल के निकुंज की ओट में, संसार की आँख बचाकर जहाँगीर अपनी प्रेयसी के साथ चौसर खेलेगा। मेहर से वह कहता है—

इन नहरों के चौसर में इस पाटल के निकुञ्ज की ओट
चौसर चलो बिछावें हम भी डालें अपनी अपनी गोट।

भाग्य ने मेहर और जहाँगीर के साथ बहुत चौसर खेले हैं। अब जहाँगीर उस कालचक्र के चौसर को छोड़ उसे खेलना चाहता है जो सुन्दरियों के साथ एकान्त में अकबर सरीखे गम्भीर प्रकृति भी खेलते थे और जो सदा संसार की आँखों से परे Primrose Hill और Hyde Park के कोनों में, शालामार के निकुंजों की ओट में खेला जाता है। उन निकुंजों की रहस्यमयी ओट में जहाँ कादम्बरी की प्यास और भी सबल हो नग्न मानवता के खुले नृत्य में सहायक होती है और जहाँ केशव का व्यक्तित्व आवरणरहित हो, आडम्बर शून्य हो, 'रमय मया सह' की रट लगाकर राधा के चरणों को पकड़ गा उठता है—'देहु पद पल्लवमुदारम्'। वही चौसर सूने में जहाँगीर मेहर के साथ खेलने के लिए उसे निमंत्रित करता है और उस चौसर की हार जीत का पुरस्कार भी मनोनीत कर कह देता है—

जिसका पौबारह होगा पावेगा पुरस्कार चुम्बन,
जो हारेगा पायेगा आलिंगन का गाढ़ा बंधन।

यह उस चौसर का पुरस्कार है। जहाँगीर यदि जीता तब तो जीता ही, हारा तब भी जीता। मेहर की आँखें मतलब से नाच उठीं और उसके ओठों पर एक हल्की मुस्कान खेलने लगी। चतुर मेहर ऐसा खेल नहीं खेलेगी। इस खेल का रहस्य उस पर स्पष्ट है—

मैं यह खेल नहीं खेलूँगी यह सब रहने दो बस बस।

फिर इस खेल से अपनी जान इस समय बचाने के लिए उसने विविध बहाने बनाने आरम्भ कर दिए—वह पौधा वहाँ सूख गया है चलकर उसे खोद दें—

नहर खोल कर उस क्यारी को जल से चलो पाट देवें,
उस तरु की बढ़ती डाली को चलकर काट छाँट देवें।
केसर की क्यारी से आओ खिले सुमन चुन कर लावें,
यह पौधा अनमेल यहाँ है इसे वहाँ पर बो आवें।

ये गुलाब हौजों में भर भर इत्र निकाल लगाऊँगी,
चौपड़ कभी नहीं खेलूँगी अपना बाग सजाऊँगी।

ऐसे हाथों से लगाए पौधे ही आज तक शालामार का नाम सुरक्षित रख सके हैं। गुलाब को हौजों में भर भरकरही नूरजहाँ ने इत्र निकाला था। इत्र को सबसे पहले निकालने का श्रेय नूरजहाँ को ही है। कवि इस पंक्ति में उसीका निर्देश करता है। सो मेहर इस प्रकार अपने को और कार्यों में लगा रक्खेगी पर चौपड़ कभी नहीं खेलेगी। वह अपना बाग सजाएगी। समय के आन्दोलन से उसकी खेती सूख गई थी, उसका बाग़ उजड़ गया था इसलिए वह पहले अपना बाग़ हरा करेगी, सजाएगी जिसमें जहाँगीर सरीखा बुलबुल सदा आशियाँ बनाकर राग अलापा करे और अकबर सरीखे सहस्रों सैयाद भी जहाँ से कभी उसे दूर न कर सकें। ऐसे बाग़ को उसे सजाना है। जहाँगीर चिल्लाता रह गया—

कोमल कर में छाले पड़ जायेंगे यह मत करो मेहर।

पर उसने एक न सुनी और मुस्कुरा कर वह फूलों में जल देने चल दी। जहाँगीर, भला तू ही क्यों जल्दी में है, यदि फूल हरे हो गए बाग़ सिंच गया तो फिर यह तो तुम्हारा ही होने को है। निखर आने दो फिर घूर घूर कर देखना, नाच नाचकर खेलना। अभी तो इस चौपड़ का रहस्य जानकर मेहर इससे कावा काट जाती है जब बाग़ सज जाएगा, मनोरथ सबल हो उठेंगे फिर तुम भागोगे और वह तुम्हारे पीछे दौड़ दौड़ तुम्हें पकड़ेगी। तब वह चौपड़ का प्रसंग तुम्हारे सामने रखकर चुम्बन और आलिंगन के पुरस्कार का आश्रय करेगी, अभी उसे तुम रसखान के उन सुन्दर, प्रीति भरे, ज्ञान और अर्थ भरे शब्दों में कहने दो—

छीर के कारन चीर गहे एजी लेहु न केतिक छीर अचैहौ,
चाखन के मिस माखन माँगत लेहु न केतिक माखन खैहौ।
जानति हौं जिय की रसखान सु काहे को एतिक बाति बढ़ैहौ,
माँखन के मिस ओ रस माँगत सो रस कन्हजू नेकु न पैहौ॥

× × ×

डल की जलराशि पर जहाँगीर अपनी नौका खेता हुआ आता है—

तू चलती जा इठलाती री मेरी नौका मदमाती।

पाल-परों को अपने खोले, डगमग डगमग तनिक न डोले,

बदन तोलती जाती री, हंसावलि को लजवाती···तू०

सर-सितार के तार बजाती, 'सुन्दरियों' से छेड़ मचाती,

स्वर-लहरी उपजाती री, अँगुली सी उड़ती जाती···तू०

दोनों कूलों पर लहराती, फूलों की सरिता रँग राती,

तू सुरभि बीचि उपजाती री, उसमें उड़ ज्यों अलि पाँती···तू०

ज्यों पलकों पर सपने निशि में, ऊषा जैसे प्राची दिशि में,

दृश्य नये दिखलाती री, पट यों ही उड़ती जाती···तू०

चंचल यौवन के तरंग सी, आँखों पर चढ़ सुरारंग सी,

जल अधरों पर लहराती री, मुस्कान बनी छवि पाती···तू०

ये 'चिनार' के फूले तरुवर, जिनमें तितली खेल खेल कर

सुमनराशि बरसाती री, फूलों से भरती जाती···तू०

'डल' के जल में देख कमलवन, कितना पुलकित हो उठता मन,

जब पुरइन पात हटाती री, पद्मों में तू छिप जाती···तू०

आया घाट मनोहर आया, यहाँ 'सफ़ेदों' की है छाया,

है धूप नहीं अब भाती री, रमजा, चिड़ियाँ हैं गाती···तू०

सितम्बर के महीने का यह कश्मीर बहुत ही सुन्दर होता है इसी समय जहाँगीर डल झील पर अपनी नौका खेता हुआ इतरा इतरा कर गाता है। बड़े दुःख के अन्त में, बड़ी इन्तज़ार के बाद, जो आनन्द आता है उसका सुख वर्णनातीत है। जहाँगीर की प्रसन्नता की सीमा नहीं। उसकी मदमाती नौका—मदमस्त जीवन—इठलाती हुई बह रही है। हल्के हल्के बहती हुई, मानों लहरों के इषत्कम्पन से शरीर को हिलते तराजू पर तौल रही हो, अपने पाल-परों को खोले उसकी नौका हंसावली को लजाती हुई बढ़ी जा रही है। इस सर रूपी सितार के तार बजाती हुई, 'सुन्दरियों'—तार बाँधनेवाली सितार की खूँटियाँ—से छेड़ मचाती हुई, स्वर लहरी उत्पन्न करती उँगली सी सितार के

तारों पर उड़ती जाती है। आगे को बढ़ती हुई उसकी नौका नये नये दृश्यों के दर्शन कर रही है जैसे सपने में नेत्रों की पलकों पर और प्राची आकाश पर उषाकाल में सुन्दर दृश्यों की झाँकी दीख जाती है। जहाँगीर की आनन्द-लहर की वास्तविक क्षणभंगुरता दर्शाने के लिए ही, उसके पार्थिव सुख की यथार्थता बताने के लिए ही कवि अप्रगट रूप से जहाँगीर के गान में सपनों और उषाकाल के क्षणिक दृश्यों की याद दिला देता है पर प्रेम में बावरे, आनन्द में विभोर इस सम्राट् की सारी अभिलाषाएँ, सारे सुखकेन्द्र, उसकी प्रेयसी मेहर के ही अन्तर में निहित हैं और वह मद्यप स्वभावतः फिर गा उठता है। उसकी नौका चंचल यौवन की तरंग-सी, आँखों में चढ़ी सुरारंग-सी, जल की तरंग रूपी अधरों पर मुस्कान-सी बनी लहराती है, शोभा पाती है। 'डल' के जल का कमलबन देखकर हृदय पुलकित हो उठता है जिस समय तू कमल के पत्तों को हटाकर पद्मों में छिप जाती है। इस छिप जाने की ध्वनि के साथ ही, कमलबन की सुरभिभरी मादकता से जहाँगीर का मन चलायमान हो जाता है और अब उसका आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता है। अब वह समझता है उसकी गति का अन्त हो चुका, उसके प्यार और प्रणय का रास्ता समाप्त हो चुका उसे अब 'रमण' के लिए रुकना पड़ेगा। वह सोचता है—वह मनोहर घाट जहाँ प्रेम की सारी नौकाएँ अन्त में टिकती हैं आ गया है और उसे भी अब लंगर डालना चाहिए, अब प्रेम की उष्णता बर्दाश्त नहीं होती, कड़ी धूप में चलकर मनुष्य घने छायातरुओं का आश्रय लेता है सो जहाँगीर भी आगरे की गर्मी से भाग, वहाँ के जलाते प्रेम से दूर हो, प्रणय के कष्टों से त्राण पाकर यहीं, गर्मी के अभाव में, सूर्य की हल्की धूप में रह उससे बचने के लिए अपने भावी सुखों के आनन्द का अनुभव करने के लिए वह 'सफ़ेदों' की छाया में 'रमेगा'। अपनी ही गति से थककर वह संकेत करता है—

आया घाट मनोहर आया, यहाँ 'सफ़ेदों' की है छाया,
है धूप नहीं अब भाती री, रमजा, चिड़ियाँ हैं गाती।

× × ×

वर्षाकाल का प्रारम्भ है। कश्मीर का सौन्दर्य निखरकर चमक उठा है। छोटे-छोटे अनन्त बादल उठ उठकर श्रीनगर के आकाश में मँडरा रहे हैं—

मात पिता के संरक्षण से ऊब गया ज्यों विहग-कुमार,
नीड़ त्याग नभ में उड़ने को पर फड़काता बारम्बार।
इच्छाओं के प्रबल झोंक में अनिलधार से कूद हठात
नव डैनों के डाँड़ चलाता तिरता जाता हो दिनरात,
वैसे ही अंबुधि-कुमार यह घन, स्वतंत्र, इच्छाचारी,
जनक ताड़ना अवलोकन कर, भाग भाग, कर रव भारी,
विद्युत के विमान पर बैठे, मन-मारुत की कर पतवार
द्विजगण की टोली से होड़ लगाते करते हुए विहार।

ये छोटे छोटे सद्यः प्रसूत मेघ विविध देश और भू-प्रान्तों से होते हुए, कौतुकपूर्वक उड़ते हुए 'किसी शैल-कन्या के अन्तःपुर में घुस जाते लुक-लुक', फिर कभी पत्नी से मिलने जाते पति पथिक की राह रोक लेते। कश्मीर प्रान्त में वर्षाकाल में मेघों की निराली छटा रहती है। वे खुली खिड़की से घर के भीतर प्रवेश कर चीज़ें गीली कर आते हैं। कालिदास ने भी मेघदूत में अलका के वर्णन में कहा है—

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां नवजलकणैर्दोषमुत्पाद्य सद्यः।
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ (उत्त०, ६)

कवि के उपरोक्त वर्णन पर अवश्य मेघदूत के उत्तर भाग के कतिपय श्लोकों की छाया है। 'इच्छाचारी' से पूर्वमेघ, ६३ के 'कामचारिन्' पद की ध्वनि निकलती है, 'किसी शैलकन्या के अन्तःपुर में घुस जाते लुक-लुक' पर उत्तरमेघ, ६ का स्पष्ट प्रभाव झलकता है फिर इससे मिलते जुलते और भी प्रयोग हैं, जैसे उत्तरमेघ के ३५ का 'त्वत्सनाथे गवाक्षे'। नीचे उद्धृत पंक्तियो—

राह रोकते कभी पथिक की, जो पत्नी के मिलने हित,
द्रुतगति से निज सदन जा रहा है विभोर हो चिंतित चित।
राह निरख है रही प्रिया ऊँचे से झाँक झरोखे से,
पट खटकाकर प्रिय आगमन बताकर उसको धोके से—

पर कालिदास की—

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्दस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि—

और 'गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सुबालां' आदि—लाइनों का अवश्यम्भावी प्रभाव दीखता है। मेघ का वर्णन करते हुए प्राचीन और अर्वाचीन सभी कवियों ने कालिदास के मेघदूत का आश्रय किया है सम्भव नहीं कि इस कवि के मेघ वर्णन में उस महाकवि की माधुरी की मिठास न मिली हो।

ये बाल-मेघ ग्राम, नगर, गिरि, कानन का आनन्द लेते हुए हिमगिरि के प्रदेश में पहुँचे। ये बालसुलभ उच्छृङ्खलता में निकल तो पड़े पर जब घर की सुधि आई तो बड़े व्याकुल हुए। आगे जो बढ़े तो हिमालय ने अपनी भुजा ऊँची कर, फैलाकर इनका मार्ग रोक लिया और डाँटकर कहा—रुक जाओ, यदि कहीं आगे बढ़ने का विचार किया तो 'शीतदण्ड' की मार पड़ेगी, सारी गर्मी ठण्ढी हो जाएगी, शीत से उनके कर पाषाण हो जाएँगे और उनके पंख ठण्डक से लथपथ हो कट से जाएँगे। फिर तो उनकी गति ही रुक गई, सारे के सारे खड़े रह गए। घर दूर था, अंग शिथिल थे—

हिमगिरि को फिर देखा सबने श्वेत केश वह महा कठोर,
शीतदंड ताने सक्रोध हो देख रहा था उनकी ओर।
धीर अधिक रह सके नहीं वे सिसिक सिसिक कर फूट पड़े,
आँसू आँसू हो बेचारे व्योम-नयन से टूट पड़े।

वर्षा हो चली। पर्वत के अनन्त गह्वरों से निर्झर गिरने लगे, जल के स्रोत उमड़ पड़े—

माता-सरिता धीरज दे दे बुला बुलाकर अपने पास
उनके पिता गेह तक पहुँचाने का है कर रही प्रयास।
उन्हीं कुमारों में कुमार दो किसी नयन-सागर से आ
हिलमिल कर के एक हो गए सरि ने सबको लिया छिपा।

किसके आँसू हैं जो इस प्रकार तारों की भाँति नयन-गगन से टूट पड़े ?

नीरस जीवन के व्यंजन में कल्पित-स्वप्न-रामरस डाल,
सरि-तट पर चिन्तानिमग्न थी मेहर धरे निज कर पर गाल।

मेहर का अतीत उसके इस आनन्द संभोग में बिजली की भाँति चौंक कर, शीघ्रगामी सीने के क्षणिक दर्द की भाँति चमककर विघ्न डाल गया। वरन उसके इस आकस्मिक, अकारण दुःख का स्रष्टा कौन हो सकता था। वर्षा का आरम्भकाल था। कश्मीर का सौंदर्य वर्णनातीत था—

थी फुहार पड़ रही, पवन भी मंद मंद था डोल रहा,
वाद्यनयंत्र सुतरु-पल्लव का खगध्वनि सँग था बोल रहा।
संजीवनी-हरित-काई से आच्छादित प्रस्तर के पास,
जहाँ विविध वर्णों के फूलों में लहरें लेती है घास,
जहाँ विमल जल के दृग में हैं मीन-पुतलियाँ खेल रहीं,
जहाँ दिशाएँ अंतरिक्ष को मृग-मालाएँ मेल रहीं,
जहाँ शिला से टकरा कर मुड़ जाती जब लहरों की धार,
तब रेती पर उसे रेत कर सरिता लेती धार सुधार,
वहीं नदी में दृग-नौका को झिझरी रही खेलाती वह।
नयन-नीर-अम्बुधि में सारा जीवन रही मिलाती वह।

इसी बीच उसका स्वप्न टूट गया—पानी की छप छप ध्वनि ने नीरवता भंग कर दी। नदी में एक नौका देख उसके हृदय में नई तरंगें उठने लगीं; नौका समीप आ पहुँची, मेहर ने देखा जहाँगीर स्वयं खे रहा है। दाहिना डाँड़ रोक, बाएँ से खेकर उसने पतवार किनारे की ओर दी। मेहर तनिक सकुचाई और फिर उसका अभिवादन कर उसने हलके से मुस्कुराया। क्यों ?

बहुत रोकने पर भी नौका लहरों में बहती लखकर।

जल में पड़ी नौका जहाँगीर के प्रयत्न से जल्दी किनारे नहीं आती, मेहर की हृदयसरिता में पड़ी उसकी भावनाओं और साधों की नौका तट की ओर आ आकर भी, उसके प्रयास को निष्फलकर फिर अथाह जल में लौट जाती है। भावों की वास्तविकता में समता देख मेहर मुस्कुरा पड़ी। बाद जहाँगीर ने जल में कूदकर, नदी तटपर खींच उसे बाँध दिया और मेहर की ओर वह बढ़ा। उसके पाँव भींगे थे, नीचे के पत्थरों पर काई चढ़ी हुई थी, उसके पग यकायक फिसल पड़े और वह गिर पड़ा। उसके गिरते ही मेहर ने दौड़कर उसे अङ्क में भर लिया और अपने आँचल से पंखा करने लगी पर सयाना जहाँगीर जल्दी क्यों उठने लगा। ऐसी आनन्द की घड़ी जल्दी नहीं आती। उसके अंग अंग में रोमाञ्च हो आया। आनन्द की शीघ्र बीतती घड़ी को वह चाहे जिस कला से हो लम्बी करने का प्रयास करेगा सो

कुछ सदमे से, कुछ श्रम से, कुछ जान बूझकर मूर्च्छित हो,
मनवांछित निज प्रिया अंक में आँखें मूँद रहा वह सो।

इस मनोवांछित प्रियाअंक को छोड़ने की जहाँगीर की कभी इच्छा नहीं हो सकती। इस प्यारी गोद में यदि उसकी मृत्यु भी हो जाय तो वह सुखी होगा। साम्राज्य का सुवर्ण, रत्नजटित सिंहासन उसको इतने प्रिय नहीं लगे जितनी प्रिया की गोद। एक समय था जब साम्राज्य के सारे श्रीमान युवक इस कमलिनी के भौंरे थे पर किसी की पहुँच उस तक न थी। स्वयं जहाँगीर अपने सारे प्रेम और सारी निष्ठा के रहते हुए भी असफल, अकृतकार्य रहा। तब से आज तक वह उस समय की कामना करता रहा है जो उसे आज नसीब हुआ है। इसकी प्रतीक्षा में उसका साम्राज्य शासन, ऐश्वर्य वैभव सब फीके पड़ गये थे। मेहर के ही नाम से वह सोता और उसी के नाम से जागता था। यही मेहर थी जिसने उसे रात में अफ़गन के घर में शयन कक्ष से धिक्कारकर निकाल दिया था। यही मेहर थी जिसकी प्राप्ति के लिए जहाँगीर ने मानव-हत्या जैसा जघन्य पाप कर अपनी प्रेयसी के पति के खून से ही अपने हाथ रँगे थे। फिर चार वर्षों तक उसकी ओर आँख उठाकर

उसके नहीं देखने पर भी वह सदा पुजारी की नाईं उसे पूजता रहा। लोगों ने, स्वार्थपरोंने, मित्रों ने, कितनी ही बार उसे उसकी इस कष्टकारी तपस्या से अलग करना चाहा पर—घायल की गति घायल जाने और न जाने कोइ—उसकी पीर अन्य क्या समझें, उसे उसके दु:ख से कोई दूर नहीं कर सका। आज उसी तपस्या का फल वह चख रहा है। उसे देखना भी है, यदि ऐसी आशंका उपस्थित हो जाय जब उसकी जान खतरे में हो मेहर क्या जी खोलकर उसे अपना कहेगी? यह लालसा सबकी होती है—मनुष्य चाहता है जीता हुआ ही वह देख ले उसके मरने पर, उसके कष्टकर समय में उसकी प्रेयसी की क्या दशा होती है। सो जहाँगोर भी आज साफ़ साफ़ देखेगा मेहर क्या सचमुच उसकी हो चुकी है? क्या जिसकी बीमारी में खाट के पास बैठ बैठकर उसने आँखों में रात काटी है वह भी उसी की भाँति व्यग्र हो उठेगी? जहाँगोर इस बात को साफ़ करने के साधन में लग गया।

कुछ सदमे से, कुछ श्रम से, कुछ जान बूझकर मूर्छित हो
मनवांछित निज प्रिया-अंक में, आँखें मूद रहा वह सो।

मेहर का भी बालापन जाग उठा था, उसका वह शैशव का प्यार जिससे उसने कभी विदा माँगी थी आज अनजाने ही बढ़कर सुदृढ़ युवा हो उठा। सम्भव है मेहर को स्वयं इस अपने मर्यादित दबे हृदय में अपने प्रेम का ज़ोर प्राय: अव्यक्त ही रहता हो पर आज उसने भी देखा, एक संसार बना और बिगड़ा, पर उसका वही 'कौमार्य-कली की कलित कामनाओं का मौन विकास' आज उसने देखा अनजाने प्रौढ़ हो उठा। आज उसने अपने 'भविष्य के चाँद' का स्पर्श कर लिया। उसने कल्पना शिल्पी के रचे भावनाओं के मायाजाल के महलों से विदा ली आज वे सहसा सजीव हो उठे। आज अवश्य वह 'उस करवट ले ले सोनेवाले मन्दभाग्य की याद' से विदा ले। आज उसकी नैराश्य निशा का अवसान हो गया और सामने पवित्र 'बिहान', सुनहरा प्रभात चमक रहा है। आज उसकी सूधी भ्रान्ति, अपनी है, खोई शान्ति मिल गई

है, भोली भूल प्राप्त-सिद्धि हो गई है। पर इस आनन्द लहर में यह करालकाल स्वरूप भारी मगर की भाँति जहाँगीर पर अस्वास्थ्य की छाप कैसी? मेहर डर से काँप गई, भगवान की याद कर उसने घुटने टेक दिए, हे दयानिधान!

चाहे मम दुर्दैव मेरे जीवन का चिरसाथी हो जाय,
मेरा भाग कभी मत जागे चिर निद्रा में वह सो जाय,
पर क्यों उसकी आँच लगे उस पर जो मुझको प्यार करे?
मेरे निकट उसे आते ही दुर्दिन वज्र प्रहार करे।

इस प्रकार दुर्भाग्य को कोस, उसे चुनौती दे गम्भीर प्रेम से, अत्यन्त मृदुभावों से, वह पुकारकर मिथ्या-मूर्च्छित जहाँगीर से कह उठी—

जाग जाग हे राजा मेरे तुझे मेहर करती है प्यार,
जिसको तुम अपना कहते थे उसे देख लो फिर इकबार।
आये तुम क्यों यहाँ अकेले, कहाँ सैन्य, सेवक-अनुचर,
भारत का सम्राट् आज असहाय पड़ा है यों भू पर!

आज मेहर ने हृदय खोल दिया। बड़े यत्न से उसने अपनी सारी इच्छाएँ सारे उद्गार बरबस रोक रखे थे। नदी का बाँध टूट पड़ा, अनन्त वेग से शतशः धाराएँ बह चलीं। जो सामने कहना असम्भव था, स्वप्न में भी जिसे लज्जावश वह दबा रखती थी आज निकल ही पड़ा। मेहर ने चिल्ला कर एलान कर दिया—जाग जाग हे राजा मेरे तुझे मेहर करती है प्यार। कभी उसने अपने मुँह से इस सत्य की घोषणा करने की हिम्मत नहीं की थी जो भलों के लिए निन्दा की बात है और ओछों के लिए कानाफूसी की सामग्री! सुन ले आज सारा जगत—जहाँगीर उसके हृदय का राजा है और वह उसे प्यार करती है—और उसे रोके! कहाँ हैं जमीला और अकबर? मेहर और जहाँगीर के दुर्भाग्य कहाँ हैं? आँखें खोल देखें और कान खोल सुनें! बन का पत्ता पत्ता, वर्षा की बूँद बूँद, सारा चराचर जगत आज सुन ले, मेहर ने कण्ठ खोल दिया है और सर्वत्र से उसकी भावना, मुखरित वासना प्रतिध्वनित हो उठती है—

जाग जाग हे राजा मेरे तुझे मेहर करती है प्यार।

मेहर की वाणी में झंकार उपस्थित है, दिशाएँ उसके नाद से झंकृत हो उठी हैं पर उसके प्रतिध्वनित हृदय की आवाज़ से शब्दायमान, गुञ्जरित शरीर-जगत में बाहरी आडम्बर की बातें नहीं सुन पड़तीं, सामाजिक अनौचित्य तक नहीं दीख पड़ता, उसकी भौतिक आँखें बन्द हो गई हैं, उन्हें सूझता ही नहीं और हृदय की आँखें केवल जहाँगीर के शरीर को देखती हैं—

इतना कह कर उन होठों को उसने चूम लिया कस कर,
और उठाकर उस मूर्च्छित को लिया अंक में अपने भर।

जहाँगीर की मिथ्या सुषुप्त चेतना जाग उठती है—

आलिंगन उपचारों से, कर अधर-सुधा संजीवन पान
जहाँगीर ने आँख खोल दी, हुआ मेहर-चिन्ता-अवसान।

जहाँगीर जाग उठा, उसने चेतना लाभ की। बारम्बार मेहर का धन्यवाद करने लगा। मेहर ने आज उसे बचाकर अपने आलिंगन का हार पहिनाया इसके लिए वह सदा ऋणी रहेगा। उसने शेर अफ़गन को मार कर बड़ा अपराध किया है पर अब उसे विश्वास है कि वह उसकी सारी भूलें माफ़ कर, उसके जीवन की संगिनी, चिरसाध की सखी बन कर, उसके कण्टकाकीर्ण पथ के काँटे हटाकर साफ़ कर देगी, फूलों से फिर उसे भर देगी। फिर भी शंका की विभीषिका उसके पीछे लगी हुई है और वह पूछ उठता है—

मेरा प्यारा स्वप्न, बताओ, कभी सत्य हो जावेगा ?
क्या सुख दुख दो धाराओं का कोई ब्याह रचावेगा ?

प्राचीन स्वप्न उसका क्या सत्य होगा ? सुख और दुःख की दोनों धाराएँ मानव जीवन के अनादि और अनन्त साथी हैं। दोनों का सम्बन्ध दम्पति का सा बोध होता है—यह जानना जहाँगीर को अब इतना झेलने के बाद बाकी नहीं है। उसका स्वप्न क्या है, आज वह मेहर से कहेगा। उसे मेहर के स्वप्न की परियाँ याद आ जाती हैं। उनका सारा वक्तव्य, सारी भविष्यवाणी, सत्य सिद्ध हो चुकी है केवल

एक रह गई है—मेहर के सिर पर ताज की शोभा। क्या वह भी सत्य होगी? आज जहाँगीर मेहर से पूछ देखेगा। ग़यास और बेगम ने, साधकों ने, निष्ठा से साधना की थी। क्या उन्हें सिद्धि प्राप्त होगी? बड़ी लालसाओं से वे ईरान से चलकर भारत आए थे, आराम से आज उनकी बीत रही है पर क्या जिस अभिलाषा से मेहर को उन्होंने पाला, जिस कामना से उन्होंने अपने घर सलीम का आह्वान कर कर उसके और अपनी कन्या के प्रेम को सींचा था क्या वह उनकी आकांक्षा सफल होगी? जहाँगीर कहता है—

> यदि भविष्यवाणी परियों की भावी ही की थी मेरी,
> यदि प्रभात सूचक है शुक्र-उदय सी यह निगाह तेरी,
> तो घायल पक्षी को आज बचा ले मरहम पट्टी कर,
> केवल मेरी एक बात ही कर स्वीकार आज सुन्दरि।

मेहर की फिरी निगाह शुक्र का उदय है। शुक्रोदये प्रभात का सूचक है, उसका उदय रात्रि के अवसान में होता है। सारे ग्रह अनुकूल होते जा रहे हैं शायद जहाँगीर की बात इस समय मेहर मान ले इसलिए वह उससे पूछता है, मेहर एक बात मानेगी? मेहर डरती है व्याह का प्रस्ताव वह उससे करेगा जो उसे गवारा नहीं। कुछ विरक्त सी होती जाती है, कहती है—विवाह की बात कहोगे सो मुझे मान्य नहीं बाकी जो कुछ भी माँगो सब तुम्हारा है, मुझे कुछ भी तुम्हारे लिए अदेय नहीं। विवाह की बात अवश्य बिसार दो। पर जहाँगीर स्वयं मेहर से पूरा परिचित है। वह अपनी साध उससे आज अवश्य कहेगा। मेहर ने उसे गलत आँका है। उसके हृदय के अन्तःस्तल में किस भाव का उदय हुआ है मेहर नहीं जान सकी अतः गलती कर बैठी।

> कहा तमक कर जहाँगीर ने, "प्रमदे! यह तेरा अनुमान
> बिलकुल ही है गलत कभी भी आया मुझे न इसका ध्यान।
> है कुछ और कामना मेरी मानो तो मैं बतलाऊँ,
> और नहीं तो इसी अंक में चुपके से मैं मर जाऊँ।

यदि यह विवाह की बात नहीं तो मेहर जहाँगीर को कभी किसी और बात के लिए इनकार नहीं कर सकेगी। उसकी इच्छा उसके सिर आँखों पर है। वह सुनेगी—क्या है जहाँगीर की इच्छा। पुरानी अभिलाषाएँ तो वह सारी जानती है यह नई कामना कौन सी जहाँगीर के हृदय में जोर मार उठी जिसकी वह कोशिश करके भी अटकल न लगा सकी। उसकी स्वीकृति पाकर जहाँगीर झट बोल उठा—

अच्छा तो अब नहीं मुकरना, इच्छा है मेरी कि आज
अपने 'नूरजहाँ' के सिरपर रख दूँ केवल अपना ताज।
तुम रानी बन बैठी रहना बना हृदय का सिंहासन,
रानी मधुमक्षिका सरिस करने को हम सब पर शासन।
मैं भी जग के सुमन सुमन से मधु आसव नित ला-लाकर
तेरे हृदय-कोष में रस भरता ही रहूँ सदा सुन्दरि।
तुम केवल प्यारे अधरों का आसव मुझे पिला देना,
रतनारी मदभरी आँख, आँखों से विहँस मिला लेना।

आज जहाँगीर ने अपनी मेहर को 'नूरजहाँ' बना लिया—संसार की आँख, उसकी ज्योति, स्वयं जहाँगीर का प्रकाश! वह चाहता है मेहर अब नूरजहाँ रानी बन जाए, उस मधुमाक्षिका रानी Queen bee की भाँति जिसके छत्ते को इतर मक्षिकाएँ, स्वयं उसके सबल नर, सभी उसके सेवक बने रहते हैं। जहाँगीर आपे में नहीं है। चाहे जितना भी नूरजहाँ उसके ताज से इनकार करे, अपने निबल हाथों में साम्राज्य का भार अत्यधिक कह मने करे आज वह उसके सिर पर अपना ताज रख कर ही छोड़ेगा, वह ताज जो मेहर के विरोधी अकबर के सिर पर कभी शोभायमान था। नूरजहाँ जो जहाँगीर के प्रणय का ताज उससे माँगती है वह तो सम्राट उसे कब का दे चुका है पर आज वह मुगलवंश के वैभव का सबसे उज्ज्वल स्मारक भी उसके सिर पर रख कर कहेगा—नूरजहाँ मेरी है, मुगलवंश की सम्राज्ञी। वह कह उठता है—

बचन हार तुम चुकीं, ताज वह अब हो गया तुम्हारा है,
यह साम्राज्य, प्राण, धन-दौलत सब कुछ तुम पर वारा है।
राज्य करो तुम मूर्ति तुम्हारी रहूँ देखता मैं प्रति याम,
अपने हाथों से नित केवल मुझे पिला देना दो जाम।

सब कुछ दे डाला सम्राट ने, बेच डाला सारा सिर्फ 'दो जाम' पर ! बड़ी बिसात है इन प्यालों की। बेगम ने अमीरज़ादे ग़यास को जिस वक्त राहे रास्त पर लाया था, जब ग़यास ने हिन्दुस्तान आने की ठान ली थी और अपना निश्चय बेगम से कह डाला था उसने साथ ही एक भीख माँगी थी—

आँखें मेरी कड़ु.आती हैं, आज छूटता है वह दौर,
अपने हाथों से दो प्याले, केवल आज पिलादे और।

बेगम ने ये दो प्याले पिला दिए थे और इन्हें इस निष्ठा से भरा था कि आज उसकी मिट्टी से बनी बेटी के हाथों में वही दोनों प्याले मुग़ल साम्राज्य का मूल्य हो गए ! इन दो जामों के बदले जहाँगीर ने व्यक्तिगत सर्वस्व के साथ ही पूर्वजों की ख्याति, कीर्ति और अमित ऐश्वर्य भी नूरजहाँ को सौंप दिया। उसकी अंतरात्मा जैसे किसी के शब्दों में दो जानू होकर अंजलि बाँध माँग उठी—

साक़ी, बाक़ी शराब दे दे,
बाक़ी, साक़ी, जो कुछ हो ले ले।

घुटने टेके जहाँगीर ने अधमिची आँखें ऊपर कर, एक हाथ दिल पर रख दूसरा आगे कर माँगा—

राज्य करो तुम मूर्ति तुम्हारी रहूँ देखता मैं प्रतियाम,
अपने हाथों से नित केवल मुझे पिला देना दो जाम।

और कुछ उसे नहीं चाहिए, इह लोक न परलोक, न सल्तनत न बिहिश्त। वह और कहता है—

भार वहन मैं स्वयं करूँगा बन कर बन-गुलाब की सूल,
तुम तो मुझपर 'कलम' रहोगी, शीश तुम्हारे होगा फूल।

सब बोझा अपने ऊपर ले जीवन दे मैं सींचूँगा,
तव सेवा-सम्पादन से मैं हाथ कदापि न खींचूँगा।
तुम केवल यह ताज पहन कर मेरे सम्मुख खिली रहो,
मैं अपनापन तुम में खो दूँ, तुम मुझ में नित मिली रहो।
हो प्रसन्न जीवन को मेरे मुस्कानों से दो तुम भर,
'रानी नूरजहाँ' अब बन तुम चमको जग में प्रिये मेहर।

'क़लम' लगाने में रहस्य है। दो पौधे मिल कर एक हो जाते हैं, भोजन पान सब एक हो जाता है, शरीर मन सारा एक। जहाँगीर भी चाहता है क़लम की भाँति नूरजहाँ उसमें लगे और वह उसके सुख के सारे साधन जुटाता रहे। उसकी इन बातों का नूरजहाँ पर पूरा प्रभाव पड़ता है—

प्रेम-अश्रु झलके आँखों में, झुका दिया रमणी ने सर,
जहाँगीर ने गद्गद हो, रख दिया ताज उसके सर पर।

साधक की साधना सिद्ध हुई, माता-पिता की अभिलाषा पूरी हुई, परियों की भविष्य वाणी सही हुई! नूरजहाँ ने साम्राज्य पाया, उसपर शासन किया पर क्या उसका ऐश्वर्य सदा चमकता रहा? अनारकली की सादी समाधि की ही भाँति इस सम्राज्ञी की कबर पर भी ऐश्वर्य की क्षणभंगुरता की घोषणा करता हुआ ख़ुतबा क्यों खुदा है?—

बर मज़ारे मा ग़रीबाँ नै चिराग़े नै गुले,
नै परे परवाना सोज़द नै सदाए बुलबुले।

परिशिष्ट

कथा-प्रवाह और उसका ऐतिह्य

पहला सर्ग

शरीफ़ ईरान के एक प्राचीन अमीर खान्दान का वंशधर था। वह हेरात का गवर्नर था। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके कुल की दशा बिगड़ गई। ग़रीबी ने उसकी कुललक्ष्मी विचलित कर दी। शरीफ़ का पोता ग़यासबेग बिगड़ा हुआ अमीरज़ादा, जुआरी और शराबी निकला और इन दो विषयों में वह फ़ारस की राजधानी तेहरान में अपनी जोड़ नहीं रखता था। जो कुछ भी ज़मीन जायदाद, रुपए पैसे बचे थे उनको उसने जुआ और शराब में उड़ा दिया। खाविंद-बीबी का छोटा परिवार भी दाने का मोहताज बन गया। जान के लाले पड़ गए। इस ग़रीबी में वे सुख के सारे दोस्त, जिनका कभी ताँता न टूटता था और जिनका शरीफ़ ने बड़ा उपकार किया था, अदृश्य हो गए। किसी ने मदद नहीं की सारा तेहरान ग़यास पर हँसने लगा फिर भी वह शराब को तोबा नहीं कर सका, आदत से लाचार था।

कथा नोरोज़—ईरान का प्राचीन वसन्तोत्सव—के दिन तेहरान नगर में खुलती है। वसन्त का ऋतु है, हरियाली का राज्य। पेड़-पौधे फूल पत्तों से लदे हैं। सारा ईरान वसन्त मना रहा है पर ग़यास की मनस्विनी भार्या चिन्तामग्न है। ग़यास पास पहुँचकर उसकी उदासी का कारण पूछता है। वह अपने घर का सारा हाल पति को समझा कर उससे ईरान छोड़ हिन्दुस्तान चलने का प्रस्ताव करती है, बहुत कुछ ऊँचा नीचा समझाती है पर शराबपरस्त, क़ाहिल अमीरज़ादा इनकार कर जाता है। साथ ही स्वदेश-प्रेम का स्वर भी अलापता है। बेगम—उसकी पत्नी—उसे ख़ूब पहिचानती है और फिर उसे भले प्रकार समझा कर राहे रास्त पर लाती है। वह रात भर विचारकर अगले दिन विदेश-

यात्रा के लिए राज़ी हो जाता है। शीघ्र जो कारवाँ हिन्दुस्तान जानेवाला है उसी के साथ चलना दोनों स्थिर कर लेते हैं। ग़यास शराब छोड़ देने की प्रतिज्ञा करता है। पर अन्त में केवल दो प्याले शराब के बेगम से भरवा कर लेता है। बेगम मातृभूमि से, घर द्वार से, अपने पालतू प्यारे हिरन से विदा लेती है।

ग़यास ऐतिहासिक व्यक्ति है जो बाद में चलकर अकबर के दरबार के मुसाहिबों में से एक हुआ है। बेगम ही ग़यास की स्त्री का नाम था यह नहीं कहा जा सकता पर इतना सही है कि वह अपनी स्त्री को लेकर हिन्दुस्तान चला आया था। दम्पति की परस्पर बातचीत का आधार कवि की सुन्दर कल्पना है।

× × ×

दूसरा सर्ग

क़ाफ़िला ईरान से चल पड़ा और साथ ही ग़यास और बेगम भी चले। उनका क़ाफ़िला पहाड़ और जंगल, रेगिस्तान और नख़लिस्तान पार करता अफ़ग़ानिस्तान के समीप उस स्थान पर आ पहुँचा जो क़ाफ़िलों के लिए ख़तरनाक समझा जाता था। यहीं प्रायः अफ़ग़ान डाकू उन्हें लूट लिया करते थे। इसीलिए क़ाफ़िलों के साथ हथियारबन्द सिपाहियों के कई दस्ते रहते थे। इस स्थान पर पहुँचकर क़ाफ़िला सजग हो गया और इसके हथियारबन्द सिपाही लड़ाई के लिए तैयार हो गए। हिन्दुकुश पर्वत से उतरकर अफ़ग़ान दस्यु क़ाफ़िले पर टूट पड़े। बड़ी लड़ाई हुई। दोनों ओर के बहुतेरे लड़ाके घायल हुए, बहुत से जूझ गए। मरे हुओं को दफ़नाकर क़ाफ़िला आगे बढ़ गया।

यह वर्णन काल्पनिक है।

अलल सुबह बेगम ने चाँद सा मुखड़ा वाली मेहरुन्निसा नाम की कन्या प्रसव की। ग़यास और बेगम ने आशा की थी कि पुत्र उत्पन्न होकर उनकी मुसीबतें आसान करेगा पर कन्या का मुख देखकर दोनों दुखी हो गए। वज्र का पहाड़ ही मानो उनके सिर पर टूट पड़ा। भला इस

कन्या को लेकर क्या करेंगे ? ग़यास ने उसे वहीं पार्वतीय उपत्यका में छोड़ दिया और पति-पत्नी दोनों कन्दहार को चल पड़े। बालिका पड़ी हुई थी। अचानक क़ाफ़िला का सरदार उधर से गुज़रा और उसने उस सद्यःजाता कन्या को प्यार और दया के वशीभूत हो उठा लिया। कंदहार पहुँच वह किसी धाय की खोज में लगा और भाग्यवश बेगम को ही लड़की सौंप दी।

कहानी ऐतिहासिक है।

मेहरुन्निसा आगरे के क़िले में माँ बाप के साथ रहकर बढ़ने लगी। उसका लालन-पालन सुख से श्रीमानों के बच्चों की भाँति अमीर उमरा के बच्चों के संग होने लगा।

× × ×

तीसरा सर्ग

तीसरे सर्ग की कथा आधी रात के समय आगरे के क़िले में खुलती है। सलीम अपने साथियों के साथ एक कमरे में बैठा है और उसकी प्रेयसी प्रसिद्ध नर्तकी अनारकली जवाहिरात से सजी नृत्य कर रही है। अनेक हाव भावों के साथ कला का पूरा प्रदर्शन करती हुई वह अनार, जो स्वयं सलीम के प्रेम में दीवानी हो गई थी, नाच रही है। मदमस्त सलीम भी उसके एक एक अंग संचालन पर लट्टू है। उठकर प्यार से उसे पकड़ता है, चुम्बन से भर देता है। अकस्मात अकबर आ उपस्थित होता है। अनार अकबर को देख बेहोश हो जाती है और सलीम किंकर्तव्यविमूढ़।

कथा काल्पनिक है। पर अनारकली का व्यक्तित्व ऐतिहासिक है। नृत्य भी उसने सलीम के सम्मुख किया ही होगा।

× × × ×

चौथा सर्ग

अनार कारागार में बन्द है। वह अनेकों प्रकार की चिन्ता कर रही है। सलीम को जी जान से प्यार करती है। चाहती है कि इस अन्त समय में वह एक बार आकर उससे मिल जाय। उसे विश्वास है प्रातः काल उसे प्राणदण्ड मिलेगा। वह जानती है सम्राट अकबर स्वयं उस पर आसक्त है। पर वह उसको आँख उठाकर भी नहीं देखती। अकबर आता है और उससे अपने प्यार की बात कह कर उसको अपनाने के लिए कहता है। अनार ओज भरी भाषा में बादशाह को धिक्कारती है और सलीम के प्रति अपने प्रेम का खुला प्रदर्शन करती है। अकबर क्रोध में भर कर उसे देश-निकाले की सज़ा सुनाता है पर वह अपने प्रण से टस से मस नहीं होती। गुस्से में अकबर लज्जित हो चला जाता है।

कथा काल्पनिक है।

× × × ×

पाँचवाँ सर्ग

दुखिया अनार जंगलों की ख़ाक छान रही है। देश देश भटक रही है। पाँचवें सर्ग का दृश्य एक जंगल में खुलता है। नद-नदी, चर-अचर सभी अनार के दुख से दुखी जान पड़ते हैं। अनार चुपचाप बढ़ती जा रही है। उसका पथ एक छोटी सरिता में खो जाता है। वह नदी हलती है, डूबते डूबते बचती है पर पार हो जाती है और भींगे कपड़े सुखा कर आगे बढ़ती है। इस सर्ग में कवि ने प्रकृति के वर्णन में कलम तोड़ दी है। बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। हिन्दी-संसार में प्रकृति का वर्णन जितना इस कवि ने किया है उतना और किसी ने नहीं किया। नूरजहाँ में बीसों स्थल नैसर्गिक सौन्दर्य वर्णन के हैं जो हिन्दी-काव्य की निधि हैं। इस पाँचवें सर्ग का प्रकृति-निरीक्षण तो अभूतपूर्व है। पत्ते पत्ते में, घास घास में कवि ने प्राण फूँक दिए हैं।

अनार अपने दुःख का प्रतिबिम्ब सर्वत्र देखती चली जा रही है। वह थकती है, बैठती है, आगे बढ़ती है। नदी, नाले, निर्झर, वृक्ष-लता और वन्य पशु ही उसके मित्र हैं। बैठी वह रो रही है। अपने अभाग्य को कोस रही है। अपने एकान्त वक्तव्य में बारम्बार अपने प्रियतम सलीम का आह्वान कर रही है। एक एक शब्द से, एक एक निःश्वास से सलीम के प्रति उसका प्रेम प्रगट होता है। वह अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्त करती है—सलीम आते और इस अन्त समय में अपनी प्यारी अनार को हृदय से लगा लेते, केवल एक बार अपना दर्शन दे जाते और वह धन्य होकर सुखपूर्वक इस जंगल में भी मर सकती। इसी समय सलीम भटकता हुआ अपने पार्श्वचरों के साथ आ पहुँचता है। वह अनार को अपने साथ अकबर से दूर अन्य नगर को चलने के लिए कहता है पर वह इस प्रस्ताव की अनिवार्य असफलता पर विश्वास कर असहमत होती है। क्यों उसका प्रेमी उसके कारण स्वयं भी घर बाहर की ख़ाक छानता फिरे ? वह उसकी गोद में पड़ी कुछ खा लेती है और जब तक सलीम उसे सम्हालता है विष कण्ठ से नीचे उतर जाता है। सलीम रो उठता है, विष अनार के शरीर में भिन जाता है और वह उसकी गोद में ही प्राण त्याग देती है। उसके शव को लेकर सलीम लाहौर जाता है और वहाँ उसकी समाधि बनवा देता है।

कहानी का स्रोत, उसकी घटनाएँ विशेष काल्पनिक अवश्य हैं पर हिन्दू नर्तकी अनार, जो सलीम को जी जान से प्यार करती थी और जिसके सौन्दर्य और कला पर सलीम स्वयं लट्टू था, ऐतिहासिक व्यक्ति है और उसकी क़ब्र आज भी लाहौर में, अनारकली में मौजूद है।

× × × ×

छठाँ सर्ग

मेहरुन्निसा दिन दिन बढ़ती जाती है। उसका शैशव धीरे धीरे लुप्त होता जा रहा है और उसके स्थान पर यौवन आपन्न हो रहा है। अभी मेहर अछूती अज्ञातयौवना है जिसका यौवन अब धीरे धीरे निखर कर स्पष्ट होता जा रहा है। इस सर्ग में कवि ने उसे मुग्धा व्यक्त किया है और इस वर्णन में कमाल कर दिया है।

सलीम के महल के नजरबाग़ में मेहर और सलीम खेल रहे हैं। सलीम अपने अनुपम बागीचे में कबूतर पकड़ता है मेहर गुलाब के फूल तोड़ने जाती है और अपनी अँगुली में काँटे चुभा लेती है। लहू के बड़े बूँद टपकाती वह सलीम के पास आती है। वह अपना दामन फाड़ कर उसकी अँगुली बाँध देता है और पकड़े हुए कबूतर मेहर के हाथ में देकर उसके लिए गुलाब की हाल की खिली कलियाँ तोड़ने बाग के दूसरे भाग में चला जाता है। मेहर के दोनों हाथ कबूतरों से भरे हैं। सहसा एक हाथ का कबूतर अपने पंख फड़-फड़ाकर उड़ जाता है। जब सलीम गुलाब की कलियों से भरी झोली लिए आता है मेहर के हाथ में एक कबूतर देख पूछता है—दूसरा कबूतर कहाँ है? वह कहती है उड़ गया। सलीम कुछ चिढ़ कर फिर पूछता है—कैसे? भोली मेहर सादगी के साथ दूसरा कबूतर भी उड़ा कर कहती है—ऐसे। उसके भोलेपन पर आसक्त हो सलीम उसे चूम लेता है पर इसी समय कुंज के पीछे कोई छिपकर हँसता है। बिगड़ कर सलीम एक एक पौधे के पीछे उसे ढूँढ़ता है पर उसका पता नहीं लगता। घबरा कर मेहर अपने घर चली जाती है। सलीम भी अपने कमरे में जाकर सो रहता है।

तरुण सलीम का कपोतव्यसन इतिहासप्रसिद्ध है। मेहर के भोले-पन की कथा भी ऐतिहासिक है और यह एक मानी हुई बात है कि उसके सूधे जवाब ने ही सलीम को अपने हाथ में कर लिया था।

× × × ×

साँतवाँ सर्ग

जमीला अकबर के किसी अमीर सभासद की कन्या है। उसने सलीम और मेहर का बागीचे में गुप्त प्रेम देखा है। वहीं छिप कर उनकी कपोतक्रीड़ा देख रही थी। वह स्वयं सलीम को अपनाना चाहती है इसीलिए मेहर से जलती है। इस सर्ग के प्रारम्भ में वह मेहर के विरुद्ध अपने उद्‌गार निकालती है। तै कर लेती है अकबर से वह कहेगी मेहर और सलीम की करतूत। अकबर के रंगमहल में नाच रंग हो रहा है। परियों का जमघट सा लगा है, अकबर सुरपति सा बैठा है। जमीला अन्तःपुर में पहुँच जाती है और वहाँ जाकर वह दोनों के प्रेम का हाल कह सुनाती है। अकबर अपना कर्तव्य स्थिर कर लेता है।

× × × ×

सुन्दर प्रभात के समय सलीम मेहर के पास पहुँचता है। वह अभी सो रही है। उसकी नींद खुल जाती है। उसने एक स्वप्न देखा है—परियाँ उड़ती आईं, उन्होंने मेहर को देखा और वे मुस्कुरा पड़ीं। उनमें से एक बोली चलो तुम्हें सुरपुर की रानी बनावें। दूसरी ने कहा, मत जाओ बेकार हैरानी होगी। तीसरी ने कहा—मैं इसे देश-निकाला दूँगी। चौथी ताज दिखाकर बोली—इसे क्या पहिनोगी? उसके 'ना' कहने पर भी वे मुकुट पिन्हाने चलीं। फिर उन सबने मिल कर उसकी चूड़ियाँ तोड़ दीं और अन्त में उसे याद नहीं कौन था जिसके पटके से उसके पट की छोर उन्होंने जोड़ दी। इस प्रकार अपने स्वप्न का ज़िक्रकर मेहर घबड़ा उठती है, सलीम भी कुछ सोचता हुआ चला जाता है।

इस सर्ग की कथा बिलकुल ही काल्पनिक है। जमीला ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं।

× × × ×

आठवाँ सर्ग

इस सर्ग की कथा एक गान के साथ खुलती है। जमीला व्यंग भरे गान से मेहर का स्वागत करती है। मेहर उसे मज़ाक समझ उसी गान के अन्त में उपसंहार स्वरूप जमीला को लक्ष्य कर गाती है। जमीला उसे सुन ग़ुस्सा करती है और उसकी भर्त्सना में बहुत कुछ कहती है। मेहर उसे सुनकर कुछ व्यग्र हो जाती है और अपने भावी दुर्भाग्य को अवश्यम्भावी जान स्वीकार कर लेती है।

बाजे बजते हैं। नाना प्रकार के आनन्दोत्सव हो रहे हैं। आज मेहर का विवाह है। सारी तैयारी होती है। दूल्हा शेर अफ़गन सज धज कर आता है और उसका विवाह मेहर के साथ हो जाता है। अकबर की यह दुरभिसन्धि है, जमीला का षड्यन्त्र है—दोनों सफल होते हैं। विपरीत प्रकृति के दोनों ही व्यक्ति सूत्र में बँध जाते हैं। शेर अफ़गन सीमा-प्रान्त का पठान है, वीर और मनस्वी। उसे अकबर मेहर के साथ ही बंगाल की सूबेदारी भी दे देता है। मेहर उसकी पत्नी होकर उसके घर चली आती है।

मेहरुन्निसा और शेर अफ़गन की शादी एक ऐतिहासिक घटना है।

× × ×

नवाँ सर्ग

आधी रात का समय है, सारी दुनिया सो रही है। मेहर शेर अफ़गन के घर में, अपने कमरे में चुपचाप अपने भविष्य को सोच रही है। पास ही एक दीपशिखा जल रही है जिस पर अगणित परमाने टूटे पड़ते हैं और अपने प्यार के सबूत में अपनी ज़िन्दगी ख़ाक़कर डालते हैं। उस ख़ाक़ के साथ हवा खेल रही है। मेहर अपनी अवस्था पर भी विचार करने लगती है पर अपने दुःख की सजीवता और उसकी भयंकरता पर उसका विश्वास नहीं होता। वह झट चिराग़ गुल कर देती है। इसी समय उसे किसी की आहट मिलती है। वह लौट कर देखती है और एक नक़ाबपोश को देख झट तलवार खींच लेती है।

तड़प कर पूछती है, कौन है ? नक़ाब खोलकर आगन्तुक कहता है—मैं हूँ सलीम और शेर अफ़गन को मार तुम्हें अपनाने आया हूँ। झट बता दो वह कहाँ है, उसे मार कर तुम्हारे साथ निष्कण्टक राज करूँगा। मेहर सलीम की इस तस्करवृत्ति पर, उसकी इस कायरता पर बहुत ही क्षुब्ध होती है और उसे धिक्कार कर, डरा धमका कर अपने घर से बाहर निकाल देती है। सलीम दंग है। उसे आशा थी मेहर उसके कार्य में सहायता करेगी पर वह तो उलटे उसे धिक्कारने लगी। सलीम आज तक नहीं जान पाया कि रमणी क्या रहस्य है। यही सोचता वह चला जाता है। मेहर उसे बहुत प्यार करती है और अपनी स्वतन्त्रता के इस अन्तिम प्रयत्न को असफल होते देख उसको बड़ी चोट लगती है। वह सलीम को निकाल तो देती है पर उसका हृदय ऐसा करते मथ सा जाता है। हृदय का अन्तिम ज़ोर लगा कर उसने उसे निकाला है इसलिए उसके जाते ही उसका दिल बैठ जाता है और वह बेहोश होकर गिर जाती है। साथ ही इस सर्ग की कथा समाप्त हो जाती है।

इस सर्ग की कथा काल्पनिक है।

× × ×

दसवाँ सर्ग

प्रारम्भ में मेहर अपने विचारों से, प्यार से, भावनाओं से विदा ले रही है। अपने स्वजनों से, यमुना और राजकीय प्रासाद से, सलीम और उसकी भुजाओं से वह विदा माँग रही है। बड़ी ही क़ीमती भाषा में, कविता के अनुपम सौन्दर्य से भरे उद्गार मेहर के मुख से निकलते हैं। यह विदा-प्रसंग इस महाकाव्य का सर्वसुन्दर स्थल है।

बाद बंगाल का एक सुन्दर वर्णन है। वहाँ के वृक्षों का, लताओं और फूलों का, स्त्री पुरुषों का, पशु पक्षियों का, ज़मीन और पैदावार का और अन्त में पावन गंगा और ब्रह्मपुत्र का। मेहर और शेर अफ़गन बंगाल पहुँच गए हैं।

सलीम मेहर के प्रेम में उन्मत्त है। निर्जनता उसे अब अधिक प्यारी लगती है जहाँ वह अपने प्रेम का मेहर के प्रति बखान किया करता है। इस स्थल पर वह मलयानिल से अपना संदेश बंगाल में बसी मेहर के पास भेजने का प्रबन्ध कर रहा है। मलयपवन से वह अपना सन्देश कह रहा है। उसकी अवस्था अर्ध विक्षिप्त की है। कुछ कहता है कुछ भूलता है। वह सोचता है सम्भव है मेहर बंगाल पुरुषों को भेड़ा बनाकर रखनेवाला जादू सीखने गई है। इस किंवदन्ती की याद उसे अधिक आती है।

जमीला सलीम का प्यार चाहती है, और चाहती है मेहर का स्थानापन्न होना। टेढ़ी खीर है यह। मेहर का स्थान सलीम के हृदय में अक्षुण्ण बना है। उसे कोई विचलित नहीं कर सकता। वह उसको ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। जमीला परेशान है। मेहर को दूर कर सलीम को अपनाने का मार्ग उसने निष्कंटक समझ लिया था। सोचा था एक वार में दो शिकार हुए पर काम बनता न देख वह चिन्तित हो जाती है। आगरे में गुदड़ीशाह नाम के एक पहुँचे हुए फ़कीर आए हुए हैं जिनकी बड़ी ख्याति हो गई है, जो बिलकुल विरक्त हैं, द्रव्य की चाह नहीं रखते, रोग दूर करते हैं और गरीब को अमीर बनाते हैं। उनके तकिये में दुखिया ललनाओं का मजमा लगा रहता है। बाँझों को संतान देना उनके बाएँ हाथ का खेल है। विरहिणियों का दुःख मिटाते हैं, प्रेमवंचिताओं को मोहनमंत्र सिखाते हैं। जमीला भी उन्हीं के पास जाएगी और सलीम को क़ाबू में करने के लिये कोई तावीज़ लाएगी।

कथा की प्रगति को बढ़ाने के लिए और काव्य के रस को और उद्दीपक, आकर्षक बनाने के लिए ही कवि ने इस सर्ग की रचना की है। इसमें कल्पना की बड़ी ही सुन्दर, बड़ी नाजुक उड़ान है।

× × ×

ग्यारहवाँ सर्ग

शेर अफ़गन क्रूर निर्भीक सैनिक है। सूबेदारी पा जाने के बाद से उसका अहंकार और मद बढ़ गया है। अत्याचार की मात्रा बढ़ गई है। प्रजा उसकी नृशंसता से त्राहि त्राहि कर उठती है। मेहर की भी दशा उसके साथ रह कर खराब हो रही है। वह बन्द घर में रहते रहते ऊब गई है। चारों ओर वसंत छाया हुआ है, फूल पत्तों से पेड़ पौधे भरे हुए हैं पर यह सब मेहर के लिए विडम्बना मात्र है। मेहर प्राचीन ग्राम्य सभ्यता की स्वतन्त्रता और अकृत्रिमता का गुन गाती है। बनावटी स्वार्थपर जीवन से उसको घृणा सी हो आती है। मारकाट की ज़िन्दगी पर वह अपने पति को धिक्कारती है। वह बिगड़ उठता है। उसकी छोटी लड़की माँ का पक्ष लेकर पिता को तुतलाते शब्दों में डाँटती है पर शेर अफ़गन उसे पटक देता है। मेहर की अन्तरंग सखी सर्वसुन्दरी लैला को लोरी सुना सुना कर सुलाती है। इसी समय आगरे से खबर आती है कि अकबर की मृत्यु हो गई और जहाँगीर गद्दी पर बैठा। उसके नाम के सिक्के जारी हुए। यह खबर सुनकर मेहर की भावनाओं में अन्तर्युद्ध होने लगता है और वह चक्कर खाकर गिर पड़ती है। सर्वसुन्दरी उसे सम्हाल लेती है। फिर शेर अफ़गन के दुर्व्यवहार के विरुद्ध मेहर के उद्गार निकलते हैं। सर्वसुन्दरी उसे समझा बुझाकर शान्त करती है और मेहर उसकी सीख पर चलने की प्रतिज्ञा करती है।

यह कथा भी काल्पनिक है। शेर अफ़गन की वीरता और निर्भीकता तो इतिहास में भी सिद्ध है। बाकी उसका प्रजा पर इस क़दर अत्याचार कहाँ तक ऐतिहासिक है इसमें संदेह है पर कवि को अपने काव्य में वर्णित प्रसंगों में सामंजस्य लाने के लिए, आगे आनेवाली घटनाओं की पुष्टि और प्रवाह के लिए चरित्रों में उनके स्वभाव की मात्रा में कमवेश करना आवश्यक होता है और इस वसूल से विचार करने पर कवि का यह चित्रण कुछ अयुक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता।

× × ×

बारहवाँ सर्ग

यह सर्ग ग्यारहवें सर्ग का ही उपसंहार सा प्रतीत होता है। कथा प्रसंग का प्रवाह वहीं से शुरू होता है। बंगाल दुर्भिक्ष से पीड़ित है, लोग भूखों मर रहे हैं। मुल्ला शेर अफ़गन के कान भर देते हैं—प्रजा के पास काफ़ी दौलत है पर ज़मीदार नरहर और उसके पुत्र के भड़काने से प्रजा बिगड़ी हुई है, कर नहीं देती। सूबेदार के बदन में आग सी लग जाती है। कितनों ही को वह तलवार के घाट उतार देता है, नरहर को धूल में घसीटवाता है और उसके पुत्र विमलराय को पकड़कर वन्दी कर लेता है। उसको इतना भी विचार नहीं कि उसका वन्दी उसकी स्त्री मेहर की प्रिय सखी सर्वसुन्दरी का पति है। विमलराय को मुसलमान हो जाने के लिए कहता है और केवल इसी वसूल पर वह उसे छोड़ने को उद्यत है। विमलराय उसे ललकारता है और धर्म छोड़ने से इनकार करता है। मेहर पति को समझाती है पर शेर अफ़गन अपनी कट्टरता और अपने क्रोध के वशीभूत हो उसे डाँट कर चुप कर देता है और विमलराय को तलवार के घाट उतार देता है। सर्वसुन्दरी मूर्छित हो कर गिर जाती है।

कथा काल्पनिक है।

× × ×

तेरहवाँ सर्ग

जहाँगीर सम्राट है पर दुःखी है। मेहर को वह प्राणों से बढ़कर प्यार करता है और उसके अभाव में सारा राज्य सुख-ऐश्वर्य-वैभव उसे फीका लगता है। वह प्रतिज्ञा करता है किसी न किसी उपाय से वह मेहर को हस्तगत करेगा। पहले का बुलवाया हुआ एक निर्भीक सिपाही नाहरसिंह आता है। उसे वह शेर अफ़गन का खून कर आने का छिपा इशारा कर, रुपये दे, विदा करता है।

नाहर बंग देश जाने की बात अपनी स्त्री से कहता है। पहले तो उसकी स्त्री उसे युद्ध में जाता समझ कर उत्साहित करती है पर जब

वास्तविक रहस्य खुल जाता है वह सच्ची क्षत्राणी की भाँति उसे धिक्कारती है। नाहर सम्हल जाता है। पत्नी की बात मानकर जहाँगीर को रुपये लौटा देता है और किसी अन्य देश को स्त्री लेकर चला जाता है।

यह कथा भी प्रसंगवश गढ़ी गई है।

× × × ×

चौदहवाँ सर्ग

जहाँगीर मेहर के प्रेम में प्रमत्त है, अकेले में वह अपने प्रेम की उपासना कर रहा है। जमीला आती है और जहाँगीर के प्रति मेहर के प्रेम पर सन्देह उत्पन्न करना चाहती है साथ ही अपने प्रेम की ओर संकेत करती है। जहाँगीर उसके मुँह से उसके प्रेम का बखान और मेहर की शिकायत सुनते सुनते ऊब गया है। जब वह उससे कहती है कि सच्चा प्रेमी अपने प्रेम पर मरने के लिए सदा उद्यत रहता है जहाँगीर उसकी वाक्पटुता का खोखलापन दिखाने के लिए तैयार हो जाता है। एक छोटे डायलग के पश्चात जहाँगीर हथियारबन्द सिपाही बुलाकर कहता है कि जब वह इशारा करे जमीला का सिर काट लिया जाय। जमीला काँप उठती है। वह वास्तव में मरने को तैयार नहीं। उसने तो उस रूप में मरने के लिए कहा था जिसमें कितने ही आशिक़ रोज़ मरा करते हैं। उसे क्या पता था कि जहाँगीर उसकी परीक्षा के लिए कमर कसे बैठा है। जहाँगीर हँसकर उसे क्षमा कर देता है फिर जमीला पर ज़माने से आसक्त कुतुबुद्दीन नामक एक प्रौढ़ अमीर को बुलाकर उसका हाथ उसके हाथ में पकड़ा देता है और यौतकस्वरूप कुतुब को बंगाल देश दे देता है। वह कुतुब से कहता है—शेर अफ़गन के अत्याचार से प्रजा त्राहि त्राहि कर रही है, विमलराय के मरने से बग़ावत करने को तैयार है इसलिए तुम जाकर उसे वहाँ से हटाकर बंगाल की सूबेदारी ले लो। जहाँगीर का हृदय शेर अफ़गन का निधन और मेहर को हस्तगत करने पर उतारू है।

जमीला इस शादी से प्रसन्न है और कहती है कि यही आदर्श विवाह है। ऐसे विवाह से स्त्री पुरुष पर शासन करती है।

कथा पूर्ववत् काव्य-प्रवाह के निमित्त प्रस्तुत की गई है।

× × × ×

पन्द्रहवाँ सर्ग

कुतुबुद्दीन बंगाल पहुँच कर शेर अफ़गन से सूबा माँगता है पर वह उसे देने को तैयार नहीं उलटा बग़ावत करने को उद्यत है पर उसके मुसाहिब, सदा के कान भरने वाले बुज़दिल, कायर सलाहकार दुम दबा जाते हैं, कोई उसका साथ देने को तैयार नहीं। जिनको उसने सिपाही से अधिनायक किया था वे तक इस समय अपनी लाचारी ज़ाहिर करते हैं, उलटा अपनी स्वामिभक्ति का दम भरते हैं। सेना तक उसकी आज एक नहीं सुनती और उससे विरक्त है। आज शेर को अपनी असली हालत का पता चलता है और वह घबड़ा कर मेहर के पास चला जाता है, उससे अपनी निठुराई की, अत्याचारों की क्षमा माँगता है। मेहर उसके परिवर्तन पर बड़ा प्रसन्न होती है और दोनों ढाका छोड़ बर्दवान के एक गाँव में बसने के लिए चल देते हैं। कुछ दूर चलने पर एक योगिनी विकराल रूप धारण किए रास्ता रोक कर पूछती है—अहंकार के पुतले, कहाँ गया वह तुम्हारा गर्व ? जिस प्रकार मैं उन्मादित-सी फिरती हूँ वैसे ही अपना सुहाग लुट जानेपर तुम्हारी मेहर भी फिरेगी। उसकी लाल आँखें देख मेहर काँप उठती है। यह योगिनी सर्वसुन्दरी है जो पति की मृत्यु के उपरान्त ऐसी दशा को प्राप्त हुई है।

प्रसंग की काल्पनिकता स्वतः सिद्ध है।

× × × ×

सोलहवाँ सर्ग

बर्दवान के एक गाँव में मेहर और शेर अफ़गन गाँव का अकृत्रिम, सादा, सन्तुष्ट जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मेहर नगर और गाँव की

रहन सहन में ज़मीन आस्मान का अन्तर पाती है और ग्राम्य जीवन पर मुग्ध है। आरम्भ में ही कवि ने बड़ी सुन्दर भाषा में गाँव के आडम्बर रहित सुखमय जीवन का चित्र खींचा है। ऐसे सुखी जीवन में वे सन्तोषपूर्वक वास करते हैं। इसी समय दूत आकर कहता है कि कुतुब साहब बर्दवान आए हुए हैं और उन्होंने शेर अफ़गन को याद किया है। शेर अफ़गन मेहर के बहुत मना करने पर भी अपनी तलवार उठा कर दूत के साथ चल देता है। कुतुब मेहर को जहाँगीर को दे देने का उससे प्रस्ताव करता है इस पर उसका ख़ून उबलने लगता है और वह तलवार के एक ही वार से कुतुब का सिर काट लेता है। कुतुब की सेना भी क्रोधित होकर शेर अफ़गन का अन्त कर देती है।

सर्वसुन्दरी मेहर के विधवा हो जाने पर आती है और उसको सान्त्वना देती है। समझाती है निर्जीव शरीर-पञ्जर का मोह अब बेकार है। वह सुन्दर काव्यमय आध्यात्मिक भाषा में मृत्यु और जीवन के रहस्यमय प्रसंगों पर प्रकाश डालती है।

भूकम्प के फलस्वरूप जैसे पुराने द्वीप नष्ट हो जाते हैं नये निकल आते हैं, एक नई दुनियाँ का जन्म हो आता है उसी भाँति मेहर के पुराने संसार का नाश हो जाता है और एक नए जगत का प्रारम्भ होता है। बर्दवान से ले जाकर उसे आगरे के राजभवन में रखते हैं।

शेर अफ़गन का जहाँगीर के आदमियों द्वारा मारा जाना और अन्त में मेहर का आगरे आना ऐतिहासिक घटनाएँ हैं।

× × × ×

सत्रहवाँ सर्ग

दूती मेहर को जहाँगीर की मलका बनने के लिए समझती है। जहाँगीर के प्रेम का बखान करती है, मेहर की बीमारी में उसकी दिन रात की की हुई सेवा की याद दिलाती है। मेहर ने चार वर्ष से जहाँगीर की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा है। लैला भी जहाँगीर

की तारीफ माँ से करती है और मेहर इस बात को उसे समझाती है है कि उसी का भविष्य मेहर को अपनी गति निश्चित करने में रुकावट डालता है।

अपनी चिन्ताओं के कारण मेहर बीमार हो जाती है। वह विषम ज्वर से पीड़ित है। हकीमों की हिकमत काम नहीं करती। रात दिन जहाँगीर मेहर के पलंग के पास बैठा उसकी सेवा करता है। मेहर को उसकी सेवा पर दया आती है और वह अपनी मिंची आँखें खोल देती है। जहाँगोर उसे सहारा देकर उठाता है, पानी पिलाता है। मेहर को आँखें उसको आँखों से मिलती हैं, शरमा जाती हैं फिर आसुओं से भरकर बन्द हो जाती हैं।

ब्राह्म मुहूर्त का समय है। किसी की आलाप ने मेहर की नींद तोड़ दी है। अब नींद लगती नहीं। बर्दवान के गाँव में ही मेहर ने ग्रामीणों से आस्मान के तारे देखकर रात्रि में समय का अनुमान करना सीख लिया था। वह झट तारे देख ब्राह्म मुहूर्त का समय जान लेती है। कोई गिटकिरियाँ भर कर पंचम में अलाप लेता है फिर स्वर लहरी उतार कर ताल तोड़कर सम कर देता है। बड़ा ही मधुर स्वर है। आज फिर मेहर ने स्वप्न देखा है—सातवें सर्ग में वर्णित परियाँ फिर आईं और उन्होंने उसे ताज पहिना दिया। गायक को देखने के लिए वह बढ़ती है पर स्वर उसका परिचित है और उसके हृदय में वंचक भावनाएँ ज़ोर मारने लगती हैं। हृदय पर अब उसका अधिकार नहीं रहा इसलिए ऐसे जीवन का अन्त कर डालना ही अच्छा समझकर वह पास के सरोवर में डूबने के लिए पानी में घुसती है। कोई पीछे से उसे पकड़ लेता है। लौटकर देखती है जहाँगीर खड़ा है। कहती है, ख़ूनी हो, छोड़ दो। जहाँगीर अपना क़सूर स्वीकार करता है और कहता है सब उसके प्यार का ही फल है। अपनी तलवार बढ़ा देता है, मेहर बदला चुका ले। मेहर अपने दुर्भाग्य को दोष देती है और जहाँगीर को क्षमा कर देती है।

इस काल्पनिक कथा पर वास्तविकता की छाप सी दीखती है।

× × × ×

अट्ठारहवाँ सर्ग

गर्मी से संसार तप रहा है। आगरे की गर्मी से भागकर जहाँगीर और मेहर कश्मीर देश को जाते हैं। वहाँ अपने लगाए शालामार के प्रसिद्ध बगीचे में विचरते हैं, पौधों को सींचते हैं, गुलाब से इत्र निकालते हैं। अन्य क्रीड़ाए करते हैं। वर्षा का आरम्भ है। मेहर जल के किनारे खड़ी है। जहाँगीर नाव खेता हुआ आकर उसे किनारे बाँध देता है पर किनारे की ओर बढ़ते हुए उसके पाँव पत्थर की काई पर फिसल जाते हैं और वह गिर पड़ता है। 'कुछ श्रम से, कुछ सद्में से, कुछ जान बूझकर' वह मूर्छित हो जाता है। मेहर रो उठती है, उसे अंक में भर कर अपने अंचल से पंखा करती है और फिर चूम लेती है। जहाँगीर के नेत्र खुल जाते हैं और वह मेहर से एक भीख माँगता है। मेहर कहती है शादी छोड़ कर उसकी हर एक बात वह मानने को तैयार है। जहाँगीर हँस पड़ता है। कहता है, वह यह नहीं चाहता। वह चाहता है कि मेहर, उसकी नूरजहाँ, उसपर 'कलम' की भाँति लग जाए, उसका ताज ले ले और बदले में मधुर मुस्कान के साथ अपने हाथों भर कर 'दो जाम' दे दिया करे। ताज लेने से नूरजहाँ इनकार करती है पर जहाँगीर उसके सिर पर मुग़लसम्राट का ताज रख ही देता है और कथा समाप्त हो जाती है।

शालामार बाग़ से जहाँगीर और नूरजहाँ का नाम इतिहास में सम्बद्ध है। गुलाब से इत्र का खींचना भी ऐतिहासिक है। जहाँगीर ने वास्तव में दो प्याले शराब के बदले में प्रेम के वश हो मुग़ल साम्राज्य अपनी प्रेयसी नूरजहाँ को सौंप दिया था। सर टामस रो आदि ने लिखा है कि साम्राज्य का सारा काम नूरजहाँ ही देखती थी। पर शादी भी दोनों की हो गई थी जो कथा-भाग में सौन्दर्य लाने के लिए कवि ने दबा दी है।

× × ×

परिशिष्ट ख

नूरजहाँ के पात्र

ग़यास

ग़यासबेग़ अमीर शरीफ़ का पोता ईरान की राजधानी तेहरान का प्रसिद्ध जुआरी और शराबी है। जुआ में सब कुछ बेंच चुका है शराब में सब कुछ झोंक चुका है। शराब के लिए दीवाना हो जाता है। वसंत में 'नौरोज़' पर जब उसकी पत्नी 'बेगम' मुँह लटका लेती है उसके पीने का मज़ा किरकिरा हो जाता है। कोई वस्तु वह शराब से अलग नहीं सोच सकता। बेगम से वह कहता है—

'बुलबुल' आ अब लगी छेड़ने प्रेम प्रमोद तरानों को,
'गुललाला' से कहती ला, ला, हाला के पैमानों को।
दिन चढ़ गया, नशा उतरा है, छाई बड़ी खुमारी है,
'लालपरी' शीशे में उतरी, लाओ मेरी बारी है।
दरिया-दिल हो जा, बसंत है, आज लुटा दे मधुशाला,
देती जा अपने हाथों से ढालूँ प्याले पर प्याला।

ग़यास ऐयाश है, खुशमिजाज़ और खतरों से बचनेवाला आदमी है। जब उसको बीबी हिन्दुस्तान चलने की बात कहती है तो मिथ्या स्वदेश-प्रेम का राग अलापता है। कहता है—'दुख में सही शेष थोड़े दिन यहीं काट लेवेंगे हम'। ईरान भरसक छोड़ना नहीं चाहता—'किस विदेश में पावेंगे हम अपना गुल अपनी बुलबुल?' पर एक सद्गुण भी उसमें है—वह अपनी पत्नी बेगम को जी जान से प्यार करता है। सारी रात जागता है और किसी प्रकार इस प्रसंग को लेकर अपनी प्रिया को प्रसन्न करना चाहता है—'है फिर भी अनुरोध प्रिया का, हठ कैसे यह टालूँ मैं'। इस प्रकार वह बेगम का जी रखने को प्रस्तुत है। रात्रि की नीरवता में वह स्वयं इस बात को स्वीकार करता है—

जीता रहूँ उसे दुख होवे, मर जाने की है यह बात,
नहीं 'चाल' कुछ और सूझती, चलो मानलें अपनी 'मात'।

कर्म-शिथिल है परन्तु बेगम के दुख की बात उसमें स्फूर्ति भर देती है और वह कह उठता है—

बस निश्चय है, तय कर डाला, नहीं हिचकने का कुछ काम,
है प्रस्थान प्रात ही मेरा, हे स्वदेश, है तुझे सलाम।
चलने का व्रत कर डाला है अब विदेश, चाहे जो हो,
कल ही, आज, नहीं तुरंत ही, उठो उठो, बस, चलो चलो।

इस प्रकार विलासी और मद्यप होता हुआ भी वह अपनी मनस्विनी पत्नी का भक्त है इसी कारण उसकी नाव किनारे लग जाती है फिर भी वारुणी का मोह उससे नहीं छूटता और चलते चलते भी दो प्यालों के लिए घुटने टेक ही देता है—

आँखें मेरी कडुआती हैं, आज छूटता है वह दौर,
अपने हाथों से दो प्याले केवल आज पिलादे और।

× × × ×

बेगम

'नूरजहाँ' की बेगम ग़यास के पक्ष में लेडी मैकबेथ है पर यह लेडी मैकबेथ केवल अपनी उच्चाकांक्षाओं और पति को उत्साहित करने में ही है। लेडी मैकबेथ की नृशंसता के विरुद्ध इसमें उदारता और दया है। बेगम बड़ी मनस्विनी है। अपने भोजन के लिए औरों का मुँह ताकना उसे स्वीकार नहीं। इसी से वह पति को लेकर विदेश भारत को जाना चाहती है। जहाँ अमीरों-से उसने दिन काटे हैं वहीं वह दाने-दाने की मुहताज होकर नहीं रहेगी। ग़यास को वह समझाती है—

बाहर घास छीलने में भी मुझको कोई ग्लानि नहीं,
यों मर मर जीने से बाहर मर जाने में हानि नहीं।
कनी चाट लेना अच्छा है कनिक माँगने क्यों जाऊँ,
तुम प्रियतम भूखे सो जाओ, मैं 'कुछ' खाकर सो जाऊँ।

ग़यास के शराबी जीवन से वह घृणा करती है और जब वह भारत का नाम सुनकर अपनी बुलबुल और गुलाब की याद में रोता है तब बेगम कहती है—

> तुमको रँगरलियाँ सूझी हैं, मेरी फटती है छाती,
> आँखों में हूँ रात काटती, निशि भर नींद नहीं आती।

जब स्वदेश-प्रेम का ग़यास ढोंग भरता है, उसके और अपने प्रेम के स्थानविशेषों की याद दिलाता है बेगम गुस्से से भर जाती है और कवि ने जो उसका उस समय का चित्र खींचा है वह साहित्य में अनोखा है—

> "बस! बस!! बस!!! अब बहुत न बहको,—बात काट बेगम बोली,
> "तबियत को तो ज़रा सम्हालो, जी भर गया, बहुत हो ली।"
> सिहर गई थी सुनते सुनते, तमक उठी रिस से वह बाम,
> ढीठ एक लटनागिनि को—जो लख ललाट पर स्वेद ललाम—
> लटक, चाटने चली ओस थी, उसे झटक कर पीछे कर,
> एक फिसलती वक्र दृष्टि से, प्रियतम को लख आँखें भर,
> चाहा खरी सुनाना ज्योंही सोच बहुत ऊँचा नीचा,
> गला भर आया, बोल न फूटा, आँखों को अपनी मीचा।

बेगम हाथ पर हाथ धरकर बैठनेवाली स्त्री नहीं है, कार्य साधन के लिए जीवन लगा देनेवाली है। खतरे से भागती नहीं उसका विजय करती है—

> इस संसार-समर-प्रांगण में जीवन है क्या? इक संग्राम,
> रंगमंच पर नायक बनकर हम दिखलावें अपना काम।
> हम मनुष्य हैं, क्यों निराश हो बैठें, धरे हाथ पर हाथ,
> यहाँ नहीं तो और देश में परखें भाग्य धैर्य के साथ।
> चलो बनें नाविक हम दोनों, खेवें निज स्वतन्त्र जलयान,
> सागर की तरंग उठ उठकर है कर रही सतत आह्वान।

इस सामयिक संसार से वह अपने जीवन की बाज़ी लगाने से नहीं डरती और खतरों को चुनौती देती हुई ललकार उठती है—

सागर पर विचरूँगी सुख से या मोती भर लाऊँगी,
या दुनिया को पता न होगा चुपके से मर जाऊँगी।

अपने विलासी पति को हिम्मत दिलाती हुई बेगम की लाइन—

अपनी लो तुम तेग़ हाथ में, मैं भी करती चलूँ दुआ—

किसीभी मनस्विनी और वीर राजपूत-ललना के मुँह में फब सकती है। स्वदेश का प्रेम उसमें कुछ कम नहीं है और ईरान छोड़ते समय उसका हृदय फटने लगता है। अब तक वह अपने कायर पति को उत्साहित करने में लगी हुई थी पर उससे निश्चिन्त होने पर स्वदेश छोड़ने के नाम पर केवल रोना ही आता है—

साँस खींचकर कहते कहते बरस पड़ीं आँखें झर झर।

मरुस्थली में बढ़ती चली जा रही है, प्यास से दम घुटा जाता है, चलते चलते पाँव में छाले पड़ गए हैं पर उफ़् नहीं करती और अपने उद्देश्य पर अथक, निरन्तर बढ़ती जाती है।

× × × ×

काफ़िले का सरदार

काफ़िले के सरदार का व्यक्तित्व पूरा नहीं खुला है क्योंकि उसका प्रसंग इस महाकाव्य में नहीं के बराबर है। पर जिस प्रकार का परित्यक्ता बालिका नूरजहाँ के साथ उसने आचरण किया है उससे उसकी उच्च मानवता और दयालुता झलकती है। वह झट उसे उठाकर उसके जीवनचर्या का प्रबन्ध कर देता है। उसके स्वभाव के सम्बन्ध में कवि स्वयं कहता है—

था बूढ़ा सरदार बड़ा ही धर्मपरायण दयानिधान,
लख अनाथ बालिका वहाँ पर पहुँचा उसको कष्ट महान।

× × × ×

अनारकली

अनारकली सौन्दर्यधनी एक हिन्दू नर्तकी है। वह सलीम के ऊपर आसक्त है और उसके लिए प्राणों तक का मोह छोड़ देती

है। नृत्यकला में वह अनुपम है। भय उसे क़ाबू में नहीं कर सकता और नर्तकी होती हुई भी वह अकबर सम्राट के प्रस्ताव को तिरस्कार-पूर्वक ठुकरा देती है। यदि वह चाहती तो साम्राज्य का वैभव उसका होता पर उसने अकबर को ललकार कर कोरा जवाब दे दिया—

बस दूर दूर ही अकबर, इस ओर न पैर बढ़ाना,
निज कर से छू छू करके अपवित्र न मुझे बनाना।

नर्तकी होकर भी उसे पवित्रता और अपवित्रता का ध्यान है और वह पवित्र प्रेम का अर्थ समझती है। अकबर से अपने शरीर की पावनता बताती हुई वह कहती है—

इस कोमल तन के भीतर है हृदय-कोट का मंडल,
जिसमें न कभी घुस पाये हैं विश्व लुटेरों के दल।

अकबर का बहकावा उसके ऊपर नहीं चला, उसने डर दिखाकर काम लेना चाहा था पर निर्भीक अनार को भय छू तक नहीं गया था और वह डाँटकर बोली—

तो क़लम अभी कर दीजे हाज़िर है मेरा यह सर,

... ...

मैं मरने को बैठी हूँ बलिदान प्रेम पर कर दो,
प्यासी पृथ्वी के मुख को शोणित से मेरे भर दो।

वह तो प्रेम की दीवानी है और सलीम के लिए तड़प रही है। उसकी स्वतंत्रता सलीम के लिए छिन गई। पत्थर की दीवारों से घिरे कारागार में पड़ी वह उसी के नाम की माला जप रही है।

कुछ नहीं वासना मन में हाँ एक साध है बाकी—
प्यासी आँखें कर लेतीं प्रियतम की फिर इक झाँकी।

... ...

अंतिम है एक विनय यह आना अवश्य तुम आना,
है हवा भरी पालों में, लंगर है रहा उठाना।

अकबर जब उसके प्रेम की याचना करता है वह साफ़ सलीम का प्यार स्वीकार करती है—

मन नहीं पास अब मेरे वह हुआ और का अकबर,
तुम मुझको मत अब छेड़ो मैं पड़ती हूँ पैरों पर।
मन तो बेमोल बिका है हाथों में भोलेपन के,
है खेल रहा बच्चे से वह रुचिर खिलौना बन के।

फिर अपने सुकुमार भावों की रक्षा के लिए, अपनी प्यारी सुखद स्मृतियों को याद कर नाज़ुक भाषा में अकबर से प्रार्थना करती है—

तू ईर्ष्या क्यों करता है! है सारी दुनियाँ तेरी,
मत छीनो रहने दो तुम छोटी सी दुनियाँ मेरी।

शायद यही एक स्त्री थी जिसे अकबर ने चाहा, प्रयास किया, पर पा न सका —

जा! सुन्दर थी पर हृदयहीन! मैं जीत नहीं तुझको पाया।

अपने प्रेम के फलस्वरूप अनार को देश निकाला मिला और वह जंगल जंगल फिरती रही। फिर जब सलीम उसे बन-प्रान्त में मिला वह चाहती तो उसके साथ रह सकती थी। वह उसे ले जाने के लिए ही आया था, बाप से बग़ावत करने को तैयार था पर अनार ने अपने सुख के लिए उसको दुःख में न ढकेलना चाहा और वह स्वयं ज़हर खाकर मर गई।

अपने दुःख का उसे दुःख था, प्यार का मोह था और अकबर की कृति पर उसे क्षोभ था पर सारा दोष उसने अपने दुर्भाग्य को दिया—

मेरे सँग कोई मत रोओ मुझे भाग्य पर रोने दो,
अपने बंजर भाग्यक्षेत्र में मोती मुझको बोने दो।

उसको अब केवल एक ही अभिलाषा रह गई है—

आते, अपने कोमल कर से मेरा अंक मिटा देते,
आते, मेरे घट का जीवन हाथों से ढरका देते।

आज कहीं अनार सलीम की बात मान गई होती और सलीम बग़ावत का झंडा खड़ा कर देता तो मुग़ल-इतिहास वर्तमान काल में अन्य प्रकार से लिखा जाता। पर उसने अपना जीवन प्रिय के लिए बलिदान कर दिया।

अनार का चित्रण कवि ने बड़ी खूबी और निष्ठा से किया है। इसके तेज के समक्ष, यदि नूरजहाँ की प्रतिभा सर्वतोन्मुखी न होती तो उसकी आभा भी कुछ मलिन हो जाती। अनार ऐतिहासिक व्यक्ति है और इसकी क़ब्र आज भी लाहौर में क़ायम है। अनार के नाम पर लाहौर में अनारकली नाम का एक मुहल्ला ही बन गया है। अनार के व्यक्तित्व की छाप इस महाकाव्य में बड़ी स्पष्ट है और अनार नूरजहाँ को छोड़ सबसे प्रमुख पात्र है।

× × ×

नूरजहाँ

नूरजहाँ इस महाकाव्य की नायिका है, इसका सबसे सुन्दर चरित्र है। यह सौन्दर्य में 'नवमयंक' है। कवि ने उसके बाह्य सौन्दर्य की प्रशंसा में कहा है—

इस भूमण्डल की मुँदरी का यह कन्या सुघर नगीना है।

उसकी मूर्ति बाँकी है। आभ्यन्तर और बाह्य सौन्दर्य का कवि ने दूसरे सर्ग में नूरजहाँ की उत्पत्ति के समय अद्भुत वर्णन किया है। कवि कालिदास के शब्दों में नूरजहाँ को भी कहा जा सकता है कि उसे ब्रह्मा ने असाधारण उपकरणों से सिरजा है—'तं वेधा विदधे नूनं महाभूत समाधिना'। कवि की उक्ति—

यह किरण-जाल सी उज्ज्वल है, मानस की विमल मराली है,
अँग अँग में चपला खेल रही है फिर भी भोली भाली है।

नूरजहाँ के पक्ष में अत्यन्त सार्थक है और उसके सौन्दर्य को प्रगटित करती है। उसके भोलेपन का तो कुछ कहना ही नहीं। सलीम इसी भोलेपन पर दीवाना हो जाता है। दोनों हाथों में दो कबूतर पकड़े नूरजहाँ खड़ी है, एक कबूतर पंख फड़फड़ाकर उड़ जाता है। सलीम पूछता है क्या हुआ दूसरा? वह कहती है—उड़ गया, पूछता है—कैसे? वह दूसरा भी उड़ाकर कहती है—'ऐसे'। सलीम ग़ुलाम हो जाता है और आज ही से मुगल साम्राज्य का भाग्य भविष्य में एक नारी द्वारा शासित होना लिखने लगता है।

नूरजहाँ मनस्विनी है। जब सलीम सोते शेर अफ़गन को मारकर उसे अपनाने अन्धेरी रात में उसके घर जाता है वह उसे धिक्कार उठती है। उसे कभी यह मान्य नहीं कि उसका प्रणयी तस्कर के कार्य का अनुसरण करे। वह उसे घर से निकाल देती है। उसके हृदय में सलीम के लिए बड़ा प्रेम है उसके लिए वह तड़पा करती है इसीलिए उसके लौट जाने पर बेहोश होकर गिर भी जाती है परन्तु मर्यादा के बाहर होना उसे कभी गवारा नहीं। तभी तो स्त्री जाति को पहेली सी जान उसकी चालें न समझ अचरजभरा सलीम कहता है—

रमणी क्या रहस्य है? भगवन्! सोचूँगा घर जाकर।

जब जब शेर अफ़गन ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया है वह बाग़ी हो उठी है। कितनी ही बार उसने स्त्रियों की पराधीनता और पुरुषों के उच्छृंखल आचरण पर आँसू बहाया है। एक बार तो वह पति के दुर्व्यवहार पर स्त्री-जाति के अधिकारों की रक्षा के लिए उसे तलाक़ देने को भी तत्पर हो जाती है। वह जानती है यदि सलीम से उसकी शादी नहीं हुई तो उसकी ज़िन्दगी मिट्टी हो जायगी पर जब उसकी दुश्मन जमीला उसके नसीब पर हँसती और उसके विवाह का मज़ाक उड़ाती है। नूरजहाँ अपने प्रतिद्वन्द्वी को अपने दुःख से सुखी नहीं होने देना चाहती और अद्भुत आत्मसंवरण का प्रदर्शन कर कहती है—

हटो मिटाये नहीं मिटेगी यह भावी की रेखा,
देखूँगी आगे जो होगा, इधर बहुत है देखा।

'इधर बहुत है देखा' में जमीला के षड्यन्त्रों की ओर संकेत है। उसकी इस युक्ति से जमीला का मज़ा किरकिरा हो जाता है। उसने नूरजहाँ की ज़िन्दगी मिट्टी में मिलाने के कितने ही उपाय किये और उसमें वह सफल भी हुई पर नूरजहाँ उसको इसका श्रेय नहीं देती इसलिए वह अपने प्रयास को सफल ही समझती है और तमककर "अच्छा कह कुछ पैर पटकती 'छू' हो गई जमीला।"

इतिहास की नूरजहाँ पौरुष का अवतार है इसी कारण उसमें नारी की सुकुमारता नहीं दीखती। इस महाकवि की नूरजहाँ शत प्रति-शत

नारी है। उसका हृदय खरा नारी हृदय है। पर वह मर्यादा की बड़ी रक्षिका है अतः अपने हृद्गत भावों को दबाये ही रखती है व्यक्त नहीं होने देती। जब उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध होता है वह अपने भाग्य को कोसती है पर पति को स्वीकार करती है और अपने प्रिय भावों को कुचलकर सलीम को अपने घर से निकाल देती है। पर यह करने के लिए उसका हृदय नहीं बना है और वह उसके जाते ही बेहोश हो गिर पड़ती है। आगरा छोड़ते समय नूरजहाँ का हृदय फट पड़ता है और उसके रोम रोम से सलीम के प्रति प्रेम व्यक्त हो जाता है। पर वह दीवानी नहीं होती। न अनार की भाँति विक्षिप्त हो बन बन घूमती है, गुरुजनों को चुनौती नहीं देती, और न फ्रेंच रानियों की भाँति गुप्त रूप से प्रेमियों से मिलती ही है, वह मर्यादा की रक्षा करती है। विदा लेते समय उसने अपने हृदय के मधुर सुकुमार भावों को व्यक्त किया है। कितने प्रबल भाव हैं उसके, पर वह चुपचाप शेर अफ़गन के साथ बंगाल चली जाती है। शेर अफ़गन के दुर्व्यवहार के समय उसके विचारों में क्रान्ति होती है पर वह सलीम की ओर नहीं देखती और अपनी कामनाओं को दबा लेती है। जहाँगीर सम्राट होता है, हृदय उछल पड़ता है पर वह उसे थाम कर रह जाती है। बाद जब शेर अफ़गन सुधर कर उससे सद्व्यवहार करता है वह उसको पति का पूरा अधिकार देती है और पत्नी का पूरा प्यार। फिर जब आगरे पहुँचती है चार वर्ष तक जहाँगीर की ओर आँख नहीं उठाती। बाद जहाँगीर की सतत सेवा से उसके पहिले के भाव फिर सजग हो उठते हैं और अब पति के अभाव में उसे स्वीकार करती है फिर भी शादी करने को तैयार नहीं। अन्त तक सम्राज्ञी होती हुई भी उसके हृदय में एक प्रकार का भय सदा लगा रहता है और अन्त समय में तो वह अत्यन्त नारी स्वभाववाली बिलकुल ही दुर्बलहृदया हो जाती है। उसके प्रति शेक्सपियर की उक्ति—Frailty, thy name is woman—पूरी सार्थक होती है। नारी-हृदय उसका कोमल, क्रूर और दुर्बल है,

द्रवित होता है, जलाता है, हारता है। जहाँ वह कहती है—

ओ भ्रान्ति विदा, ओ शान्ति विदा, ओ अपनी भोली भूल बिदा,
ओ मेरी मुरझाई आशाओं की समाधि के फूल विदा।

वहीं अपने हृदय को दबाकर मर्यादा रख कर कहती है—

फिर इकबार हृदय से लड़कर उसे लगाम लगाऊगी,
मन दे ढील ! अधिक खींचा तो हत्थे से कट जाऊँगी।

पर अपनी कमजोरी और भावों की मादकता याद करती हुई फिर एक सत्य का उच्चारण करती है—

मैं उद्योग करूँगी वश भर, ईश्वर पार लगावेगा,
आशा है मेरा भूला मन कभी राह पर आवेगा।

पर उसका भूला मन ऐसे बवण्डर में पड़ा कि फिर राह पर नहीं आया और वह खुद शिकार हो गई। हार गई और उसका नारीत्व जाग उठा।

× × + ×

जमीला

जमीला नूरजहाँ का दुर्भाग्य है। नूरजहाँ की युवावस्था में सर्व-प्रथम उसका प्रादुर्भाव अदृष्ट के रूप में होता है। उसके भाग्याकाश में यह जमीलारूपी दुर्भाग्य घटा की भाँति उठता है और धीरे धीरे बढ़कर सारे आकाश को आच्छन्न कर लेता है। इस चन्द्र को जमीला राहु की भाँति उठ कर ग्रस लेती है। नूरजहाँ की उठती साधों के साथ ही इसका भी उदय होता है और उसके प्राथमिक आनन्द के समय हम इसकी अशुभ हँसी सुनते हैं। नूरजहाँ अपने सलीम के अंक में प्रथम बार जैसे ही जाती है, जैसे ही सलीम उसका स्पर्श करता है, जमीला उसमें विघ्न डालती है। वह रंगमंच पर उपस्थित नहीं फिर भी अशुभ की छाया की भाँति सलीम के नज़रबाग़ में कुंज के पीछे से उसकी हँसी सुन पड़ती है। पहले पहल जब हम उसकी आवाज़ सुनते हैं अनिष्ट की धौंस से हमारी आत्मा काँप उठती है—

यदि नाम जमीला है मेरा पानी में आग लगा दूगी।

यह तो इसका प्रथम समागम है आगे क्या होगा? मेहर का सर्वनाश करने पर वह कमर कस लेती है इसीलिए सलीम को प्यार करना आरम्भ करती है। अकबर से कहकर वह नूरजहाँ की शादी शेर अफ़गन से कराती है और उसे बंगाल भिजवा देती है। इतना ही नहीं वह नूरजहाँ के अन्तक स्वरूप नृशंस काल को पतिरूप में वरण कर उसका सुहाग लूट लेती है। नूरजहाँ ने सोचा होगा आगरा छोड़ने से शायद दुर्भाग्य से भी छुटकारा मिल जायगा पर उसका दुर्भाग्य उसके साथ ही बंगाल भी गया और वहाँ उसने उसकी बनी दुनियाँ बिगाड़ दी।

यह जमीला अद्भुत पात्रा है। कवि ने इसको इस प्रकार प्रबल बनाना कभी नहीं चाहा यह स्पष्ट है—Jago का चरित्र सँवारते समय शेक्स्पियर ने कभी न सोचा था कि वह ऐसा प्रबल, इतना भयानक हो उठेगा और उसका कार्य निरुद्देश अपकार—Motiveless maligunity—हो जाएगा। पर पात्र सबल हो कर महाकवि के हाथ से बाहर हो गया और शेक्स्पियर अपनी ही सृष्टि को इच्छापूर्वक नहीं चला सका। ठीक उसी भाँति, जमीला पहले तो दुर्भाग्य की भाँति, पैशाची छाया की भाँति, उठी है। पर उसकी शक्ति बढ़कर धीरे धीरे प्रचण्ड हो गई है और वह कवि के हाथ से निकलकर स्पष्ट आकार वाली व्यक्तित्व हो गई है। उसका व्यक्तित्व फिर तो इतना स्पष्ट हो गया है कि उसे एक ऐतिहासिक पति तक देना पड़ा है।

स्त्री के रूप में, व्यक्तित्व में, उसका चरित्र बड़ा ही घृणित है। वह साधारण ईर्षा वाली नीच स्त्री है। पहले सलीम के साथ विवाह कर सम्राज्ञी होना चाहती है। परन्तु जब कठिनता का सामना करना पड़ता है, जहाँगीर उसकी परीक्षा करना चाहता है, तब उसकी पोल खुल जाती है। तब उसे अधपके बालों वाले कुतुबुद्दीन को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होती। वह उसे बहुत ही सुन्दर सम्बन्ध समझ उसका स्वागत करती है—

क्या चमका भाग्य सितारा है जो मनमाँगी मुराद पाई,
मिल गए कुतुब शौहर मुझको क्या .खूब तमन्ना बर आई।

उसके विचार में प्रौढ़ से शादी करना तरुण से शादी करने से बहुत अच्छा है। उसकी आँखों में धूल झोंक वह गुलछर्रे उड़ाएगी—

उनकी आँखों में बस करके गुलछर्रे .खूब उड़ाऊँगी,
अपना उल्लू सीधा करने को बुलबुल उन्हें बनाऊँगी।
दासी बनकर सेवा करने, .कैदी बन कर घर में रहने,
है कौन बावली जो जाएगी युवक संग सब दुख सहने ?

× × ×

सर्वसुन्दरी

सर्वसुन्दरी नूरजहाँ के बिगड़ते हृदय पर अंकुश का काम करती है। जब जब नूरजहाँ कर्तव्य-मार्ग से, मर्यादा-पथ से, विचलित होती है वह उसे शक्ति प्रदान करती है। उसके उदित पुण्य की भाँति सर्व-सुन्दरी उसे सर्वदा पतन से विमुख करती है।

सर्वसुन्दरी नूरजहाँ की सखी है। वह ढाका के एक जमींदार नरहर की पुत्रवधू है। उसका पति विमलराय शेर अफ़गन की तलवार के घाट उतरता है और सर्वसुन्दरी उन्मादिनी हो जाती है। जब सूबा शेर अफ़गन के हाथ से छिन जाता है और वह मेहरुन्निसा को लेकर बर्दवान की तरफ़ जाता है वह उन्मादिनी योगिनी के रूप में आकर शेर अफ़ग़ान को मृत्यु का शाप देती है। जब शेर अफ़गन मारा जाता है वह फिर आती है और मेहर को शान्ति का उपदेश करती है। बड़ी ही सुन्दर भाषा में जीवन-मरण का रहस्य उसने इस उपदेश में कहा है। सर्वसुन्दरी का सारा परिवार काल्पनिक है।

× × ×

विमलराय

विमलराय का चित्रण भी कवि ने उसकी स्त्री की ही भाँति चमकती रूपरेखा में किया है। वह धर्मनिष्ठ, प्रजावत्सल है। उसका पिता

तो केवल प्रजा के लिए कष्ट ही सहता है पर यह उसके और अपने धर्म के लिए मर भी जाता है। जब शेर अफ़गन उसे मुसलमान न होने पर मार डालने की धमकी देता है वह गीता के श्लोकों के आधार पर आत्मा की अमरता सिद्ध करता है और खुशी खुशी तलवार गले से लगा लेता है।

× × × ×

शेर अफ़गन

ऐतिहासिक शेर अफ़गन और महाकाव्य के शेर अफ़गन में विशेष अन्तर नहीं। वह एक दिलेर सिपाही है। उसका चरित्र स्वयं कवि ने कह दिया है—

> वह था स्वभाव से रूखा, था हृदयहीन अति कट्टर,
> था पशुबल का व्यापारी, अति क्रोधी, निर्दय बेडर।
> था लक्ष्य मारना मरना केवल उसके जीवन का,
> ... ...
> रमणी उसकी सामग्री थी कामपूर्ति की केवल।

ऐसे पुरुष से मेहर का सम्बन्ध हुआ था। अत्याचारी वह पहले दर्जे का था। उसने अपनी स्त्री की ही सखी के श्वसुर को पकड़कर धूल में घसीटा और उसके पति को मार डाला। मुल्लाओं के उभाड़ने पर, उनकी बातों में आकर, दुर्भिक्ष-पीड़ित प्रजा का कर के लिए खून बहाता है। मेहर जब उसे समझाती है वह डाँट देता है—

> अपनी सलाह रहने दो, तुम घर का काम सम्हालो,
> शासन के कामों में तुम यों हरगिज़ हाथ न डालो।

तलवार उसकी सहचरी है उसे वह नहीं छोड़ सकता चाहे मेहर तक को छोड़ना क्यों न पड़े—

> जीते जी तलवार कभी यह मेरी अलग न होवेगी,
> उसके ही साये में सारी दुनियाँ, तू भी, सोवेगी।
> तुझे छोड़ दूँ, तज सकता हूँ सब कुछ प्यारी से प्यारी,
> पर प्यारी तलवार नहीं हो सकती है कदापि न्यारी।

वह वीर है। अपना चरित्र वह स्वयं कहता है—

मैं हूँ इक मर्द सिपाही, मैं खेल मौत से करता।

वह निश्छल है और जब उसके सारे मुसाहिब, सारे सैनिक, उसकी मदद से इनकार करते हैं तब वह अपनी भूल स्वीकार करता है और अपनी स्त्री के पाँव पर गिर कर क्षमा माँगने से भी नहीं हिचकता। हमें उस पर दया आती है और उससे सहानुभूति हो जाती है।

वह गर्वीला और मनस्वी है। अपना अपमान नहीं बर्दाश्त कर सकता। कुतुब उसे दूत भेजकर बुलवाता है। मेहर उसे रोकती है पर उसका वीर हृदय कह उठता है—

जब तक है तलवार हाथ में तू किस भय में भूली है?

जब कुतुब उससे मेहर को जहाँगीर के लिए दे देने को कहता है उसके बदन में आग लग जाती है और वह उसका सिर काट लेता है और इस प्रकार अपनी सम्मान-रक्षा में उसकी जान तक चली जाती है। वह एक भूला हुआ नररत्न है।

× × ×

अकबर

अकबर ऐतिहासिक अकबर बादशाह की छाया है। उसका व्यक्तित्व इस महाकाव्य में निर्जीव है। दो बार वह इस काव्य में आता है दोनों बार वह अनिष्ट करता है, दोनों बार सलीम के विपक्ष में, अनार और मेहर के विरोध में। अनार के ऊपर वह आसक्त हो बदला के रूप में अनुचित आचरण करता है। पाठक के हृदय में न तो उसके लिए सहानुभूति है न इज्जत। ऐसा मालूम होता है ऐतिहासिक सम्राट के सबल व्यक्तित्व की छाया घटनाओं को इशारे से घटा रही हो।

× × ×

जहाँगीर

इतिहास का अबोध बालक जहाँगीर इस महाकाव्य में भी बालक ही है। सूध, निश्छल सलीम का सबसे बड़ा सौभाग्य यह है कि अनार

और मेहरुन्निसा-सी दो असाधारण स्त्रियाँ उसको प्यार करती हैं। वह इस महाकाव्य का नायक है। साधारणतया यह समझना कठिन है कि सलीम दोनों को निष्कपट भाव से क्योंकर प्यार कर सकता है। पर एक ध्यान देने योग्य विषय यह है कि अनार की मृत्यु के उपरान्त नूरजहाँ का प्रादुर्भाव होता है। नूरजहाँ और जहाँगीर के एक दूसरे की ओर बढ़ने का एक स्वाभाविक कारण यह भी है कि नूरजहाँ का शेर अफ़गन भी रंग-मंच पर नहीं है और जहाँगीर की अनार भी नहीं। सलीम की ओर आरम्भ से ही कुछ ऐसी सहानुभूति होती है कि उसका दो व्यक्तियों के प्रति प्रेम ज़रा भी नहीं खटकता। पर असल बात तो यह है कि उसको ओर विशेष अर्थ के साथ नज़र ही नहीं जाती। अन्त तक वह एक निर्बल, अहानिकर व्यक्ति सा प्रतीत होता है। शेर अफ़गन की हत्या करते समय भी वह हत्या और उसके कारणों से इतना दूर है कि शेर अफ़गन की मृत्यु और उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं जान पड़ता। नाहर उसे रुपये लौटा जाता है और वह चुप है। अन्त में जब वह मेहर से इस ख़ून के लिये माफ़ी माँगता है तो यह प्रसंग कुछ अजब सा लगता है और मेहर के साथ ही पाठक को भी उसे क्षमा करते कुछ देर नहीं लगती। सच तो यह है कि अनार का उसके लिये इतना उन्माद और मेहर के उद्‌गार भावना रहित जहाँगीर के लिये बेकार से लगते हैं। जहाँगीर प्रेम के प्रसंग पर इतना बोलता हुआ भी भावना-हीन सा प्रतीत होता है पिता के विरुद्ध बग़ावत का इशारा अनार से करता हुआ भी अकर्मण्य है।

सलीम हृदय रखता है। अनार का नृत्य देखता है उसे प्यार भी बहुत करता है। उसे ढूँढ़ता हुआ जंगल में जाता है और पिता से बग़ावत तक करने को तैयार है। नूरजहाँ को तो वह बहुत ही प्यार करता है, उसी के लिए उसने शेर अफ़गन के ख़ून से भी अपने हाथ रँगे। वह उसे स्वीकार भी कर लेता है और झट घुटने टेक देता है। मेहर के भोलेपन पर लट्टू होकर वह उसके प्रेम में दीवाना हो जाता है। जमीला को ख़ूब पहिचानता है और उसकी परीक्षा कर उसकी

पोल खोल देता है। मेहर का प्रेम उसके सिर पर जादू की तरह चढ़कर बोलता है। सारा वैभव, साम्राज्य उसके हाथ में है फिर भी वह नूर-जहाँ के अभाव में सुखी नहीं है—

फिर भी रह रह मेरा मन क्यों उचट उचट सा जाता है ?
इस वैभव में भी कमी किसी की मुझको अभी खटकती है
जिसके वियोग में सुख-सामग्री सारी फीकी लगती है।
यह राजपाट सिंहासन सब धन मिलकर उसका मोल नहीं,
मम हृदय-बाट को छोड़, नयन कांटों से उसका तोल नहीं ॥
है सब समाज सुन्दरियों का फिर भी क्यों आज अकेले हैं ?

इस प्रेम का अन्त नूरजहाँ की साम्राज्य-प्राप्ति करने में हुआ। जहाँगीर ने अपनी प्रेयसी को अपना साम्राज्य दो प्याले शराब के बदले दे डाला ! केवल एक बार उसका व्यक्तित्व कुछ जीवित-सा प्रतीत होता है जब मेहर ने ग़लत अटकल लगाकर उसके प्रस्ताव को शादी का समझा था पर जहाँगीर ने इन्कार कर उसे लज्जित कर दिया।

× × ×

कुतुबुद्दीन

कुतुबुद्दीन का चित्रण अव्यक्त है। एक स्थान पर इशारा मात्र मिलता है कि वह जमीला पर पहले से आसक्त है। वह जमीला अर्थात् नूरजहाँ के दुर्भाग्य का उपसंहार सा होकर शेर अफ़गन को मारता है और जहाँगीर का कार्य सम्पन्न करता है। जहाँगीर ने उसे जमीला दी थी उसने उसे नूरजहाँ दी। उसकी मृत्यु पर पाठक को न हर्ष होता है न विषाद। उसकी हत्या व्यर्थ ख़ून सी लगती है। कुतुबुद्दीन की उपस्थिति इस महाकाव्य में आवश्यक है और वह उन गौण पात्रों में से है जिनके बिना महाकाव्य सफल नहीं हो सकता।

× × ×

नाहरसिंह

यह एक साधारण पर दुःसाहसी सैनिक है। इसे जहाँगीर शेर अफ़गन की हत्या के लिये रुपये और सेनानायक बनाने का लालच

देकर बिदा करता है। घर आकर यह अपनी स्त्री से सब कह सुनाता है पर जब वह इसे उसकी कायरता पर धिक्कारती है यह हत्या से मुँह मोड़ लेता है और जहाँगीर के रुपये लौटा देता है।

× × ×

शेर अफ़गन के मुसाहिब

शेर अफ़गन के मुसाहिब सभी बुज़दिल कायर और विश्वासघाती हैं। मीर मुअज्ज़म, जिसे उसने साधारण सैनिक से सेनानायक बनाया है, दिल्ली के तख़्त की स्वामिभक्ति का दम भरता है। मौलाना हाशिम नोमानी हज के लिए तैयार हैं और राह खुदा में .ख़ून ख़राबी नहीं पसन्द करते। बीसियों मुसाहिबों में से कोई शेर अफ़गन के काम नहीं आता। एक कहता है—मैं कब से बीमार हूँ, मुझे हौलदिल होता है और मैं लड़ने से लाचार हूँ। दूसरा कहता है—मैं नौकर हूँ, मालिकों के बीच कौन बोले। तीसरा बोलता है—मेरी अभी शादी हुई है, नई दुलहिन क्योंकर छोड़ूँ। इस प्रकार इनके चित्रण से कुछ हास्य रस का संचार हो जाता है।

× × ×

नाहरसिंह की स्त्री

नाहरसिंह की पत्नी वीर रमणी है। पति की कायरता पर उसे बड़ा क्षोभ होता है और वह उसे धिक्कारकर राहे रास्ते पर लाती है। क्षण भर के लिये वह हमारे सामने आती है पर उसकी छाप हमारे दिलों पर बैठ जाती है। वह कहती है—

मरना हो तो मरो देश पर पराधीनता काटो,
राना-सा दाना दाना को तरसो चाहे बन में।

× × ×

दूती

सत्रहवें सर्ग का आरम्भ जिसके वक्तव्य से होता है वह जहाँगीर की दूती है जो सदा नूरजहाँ के संग रहती है। वह जहाँगीर के लिये

उसे फुसलाती है पर झूठ नहीं बोलती, केवल जहाँगीर के सच्चे प्रेम का बखान करती है और अन्त में कहती है—

> लोक रीति है, हुक्म खुदा है, अनुमति जान हमारी
> हिन्द देश की सम्राज्ञी बन पुरवो साधें सारी।

उससे हमें घृणा नहीं होती।

परिशिष्ट ग

काव्य-सौन्दर्य और भाषा

रसों से ओत-प्रोत इस महाकाव्य की रचना बड़ी सुन्दर हुई है। अट्ठारह सर्गों में यह समाप्त हुआ है पर एक पंक्ति भी कहीं शिथिल नहीं। भाव शब्द शब्द से फूटे पड़ते हैं। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में ऐसा सर्वांगसुन्दर महाकाव्य नहीं के बराबर हैं कुछ स्थल तो इसमें बहुत ही मार्मिक हैं—(१) दूसरे सर्ग में वर्णित सद्य:प्रसूता मेहर; (२) चौथे सर्ग में अनार का वक्तव्य; (३) पाँचवें सर्ग का प्रकृति-वर्णन; (४) छठे सर्ग में कपोत-क्रीड़ा और मेहर का भोलापन; (५) आठवें सर्ग में मेहर का वक्तव्य; (६) नवाँ सर्ग; (७) दसवें सर्ग का विदा-प्रसंग; (८) ग्यारहवें सर्ग में मेहर का वक्तव्य, लोरी और सर्वसुन्दरी का उपदेश; (९) सोलहवें सर्ग के आरम्भ में ग्राम्य जीवन का वर्णन और सर्वसुन्दरी द्वारा जीवन-मरण का उपदेश। एक महाकाव्य में इतने प्रसंगों का सुन्दर होना कठिन है। इस महाकाव्य में इन प्रसंगों के सिवा और भी कुछ विशेषताएँ हैं—(१) नाट्य प्रभाव, काव्य में नाट्य प्रभाव की जितनी सामग्री 'भक्त' जी ने प्रस्तुत की है शायद ही कहीं और हो। डायलग में जहाँ कहीं भी नाट्य प्रभाव की संभावना है, उसकी मूर्ति सजीव-हो उठी दीखती है—गयास और बेगम की बातचीत, मेहर और सर्वसुन्दरी का कथोपकथन, सलीम और मेहर के परस्पर वक्तव्य सर्वत्र इसकी छाप है। (२) जीवन का उद्देश और इसकी फ़िलासफ़ी—इसका रहस्य—तो इस महाकव्य में ऐसे आये हैं जैसे किसी आध्यात्मिक व्यक्ति की लेखनी से

प्रादुर्भूत हुए हों। (३) प्रकृति-निरीक्षण में कवि अपना सानी नहीं रखता। प्रकृति-वर्णन सर्व प्रथम हिन्दी-संसार में गुरुभक्तसिंह ने ही किया है। और इस महाकाव्य में तो उसकी निधि ही रखी हुई है। नैसर्गिक सौन्दर्य, ऋतुओं का वर्णन करते करते कवि फूल-पत्तों में प्राण फूँक देता है, उनमें आत्मा का सृजन कर देता है। प्रकृति का वर्णन जितना इस महाकाव्य में हुआ है उतना, आधिक्य और सौन्दर्य दोनों विचारों से, प्राचीन अथवा अर्वाचन किसी हिन्दी-काव्य में नहीं किया गया। (४) काव्य सौन्दर्य को विकसित करनेवाले सुभाषितों से यह महाकाव्य भरा पड़ा है, उनकी हमने यथास्थान समीक्षा की है इसीलिए यहाँ उदाहरण नहीं देते। (५) भावों के घात-प्रतिघात दर्शाने में तो यह महाकाव्य अद्भुत है। पढ़ते पढ़ते प्रायः ऐसा प्रतीत होता है कि अपना ही कुछ खोया जा रहा है। अपनी मर्यादा की रक्षा करते हुए कितनी बार मेहर में मानवता और स्त्रीत्व सबल हो उठते हैं। यथार्थ में यह महाकाव्य एक मनस्विनी की, एक नारी हृदय की दुर्बलताओं की, और मानवी भावनाओं के घात-प्रतिघातों की सच्ची तालिका है। (६) ध्वन्यात्मक भाषा लिखने में यह महाकवि बहुत ही पटु है। भावों की शब्द-योजना से ही ध्वनि निकलती है। Suggestiveness स्थल स्थल पर मिलता है। (७) प्रसाद गुण तो अनुपम है। भाषा में बड़ा ही प्रवाह है। सुन्दर भाव सुन्दर सरल भाषा में व्यक्त किए गए हैं। शब्द-योजना मार्मिक है। भाषा पर कवि का अधिकार है और जहाँ जिस पद की आवश्यकता है वहाँ वह प्रस्तुत है। उर्दू और फ़ारसी से हिन्दी-क्षेत्र में आने के कारण भक्तजी की भाषा और भी सुन्दर हो गई है। साधारण धाराप्रवाह में लिखते हुए इन्होंने सैकड़ों मुहावरों का प्रयोग किया है जिनका एक अलग कोष प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसे मुहावरों की एक तालिका हमने अन्त में दी है। सरल भाषा में अनोखे मार्मिक भाव कैसे भरे जाते हैं कोई इस कवि से सीखे। उदाहरण के लिए केवल एक बानगी देते हैं। चराचर से विदा माँगती हुई मेहर अपने वक्तव्य को समाप्त करती है—

ओ भ्रान्ति विदा, ओ शान्ति विदा, ओ अपनी भोली भूल विदा,
ओ मेरी मुरझाई आशाओं की समाधि के फूल विदा।

(८) श्लेष का भी जहाँ तहाँ इस महाकाव्य में प्रयोग हुआ है जो इसके सौन्दर्य को बढ़ाता है। अन्य रूपकादि अलंकार भी प्रचुरता से प्रयुक्त हुए हैं। अलंकारों के दुरुपयोग से, शरीर पर भूषणों की भाँति, काव्यश्री नष्ट हो जाती है और उन्हीं के सदुपयोग से वह चमक भी उठती है। नूरजहाँ के शृंगार में कवि ने उनका उचित और रुचिपूर्ण उपयोग किया है।

एक बात और कहने की रह गई। हमारे कुछ मित्रों का विचार है कि 'नूरजहाँ में विदेशी वातावरण की बू है क्योंकि उसकी नायिका ईरानी है। यह विचार सुरुचिपूर्ण नहीं। इसमें कूपमण्डूकता की बू आती है। कवि किसी देशविशेष अथवा जातिविशेष का नहीं प्रत्युत अखिल विश्व का है। उसके काव्य का विषय वर्ड्स्वर्थ के शब्दों में है—मनुष्य, विश्व, और मानव-चरित्र। संसार में नर-नारीरत्नों का स्थान जैसा ऊपर कहा गया है देशविशेष, जातिविशेष अथवा धर्म-विशेष नहीं। जहाँ से हो उनको उपलब्ध कर कवि को उनपर काव्य-रचना करनी है। प्रकृति खुले हाथों काव्यविषय और उसकी श्रीवृद्धि के उपकरण लुटा रही है उसमें कौन 'अहं' और 'पर' का अन्तर कर सकता है? कौन कह सकता है कि प्रभात-सूर्य और उषा प्राची के हैं और सान्ध्य-सूर्य प्रतीची का, इसलिए कवि वर्णन में भेद करें? इस प्रकार के विचार संकीर्णता के द्योतक हैं। उन्हें अपने पास सच्चा कवि फटकने भी नहीं दे सकता। इंगलैण्ड के कवियों ने Revolt of Islam और Kubla Khan पर कविता की है। ग्रीस के ऊपर तो सभी बड़े कवियों ने लिखा है। स्वयं महाकवि शेक्सिपयर की Othelo आदि कितनी ही सुन्दर काव्य-कृतियाँ पूर्वी साहित्य पर, पूर्व की कथाओं पर, अधिष्ठित हैं। इसलिए इस महाकाव्य का विषय आलोचना से परे है। नूरजहाँ इस संसार की एक सर्वतोमुखी विभूति थी और कवि इस महाकाव्य में उसका चरित्र गाकर स्वयं भी अमर हो गया।

परिशिष्ट घ

नूरजहाँ में प्रयुक्त मुहावरे

पहलासर्ग

१ मुरझाई हुई प्रिया
२ बुझा हुआ दिल
३ कर लें बिहार हिल मिल
४ राह किसी की देख रहे थे
५ थे साकार निराशा मानो
६ मूर्त्तिमान थी हुई व्यथा
७ जगा रहे थे अलख
८ वे भी फूले नहीं समाते
९ मधुपावलि बली हो प्रसून पर
१० लेती लाख बलायें हैं
११ लोट पोट है हो जाता
१२ सब घमंड पानी पानी हो
१३ सुन्दरता के पुतले बनकर
१४ मुख उतरा सा है
१५ भ्रू कमान चढ़ी हुई है
१६ दिल छोटा किया
१७ चुराते हैं आँखें
१८ लगो छेड़ने प्रेमप्रमोद तरानों को
१९ दिन चढ़ गया
२० नशा उतरा है
२१ छाई बड़ी ख़ुमारी है
२२ दरियादिल होजा
२३ लय में लय हो जाऊँ
२४ रस में बुत हो जावे
२५ बजे चैन की बंशी
२६ मचा मचा कर रँगरलियाँ
२७ ठेस और लग गई
२८ मेरी फटती है छाती
२९ आँखों में हूँ रात काटती
३० टके-टके को मुँह तकते हैं
३१ फिरते मारे मारे हैं
३२ मेरी किस्मत है चक्कर में
३३ बिगड़े भाग्य सितारे हैं
३४ आसमान तक उठा दिया
३५ ताँता सदा बँधा रहता था
३६ वे कृतघ्न मर गये कहाँ
३७ नहीं झाँकने तक आते
३८ आँख बचा जाते
३९ मतलब की दुनिया है सारी
४० आड़े कौन कहाँ आता है
४१ किस्मत सोई है
४२ सोने की घड़ियाँ
४३ चाँदी की रात
४४ ज़मीन पर पाँव न धरती
४५ छिलते थे मखमल पर पैर
४६ आँखे बिछ जाती थीं पथ में
४७ समय फेर से
४८ कालचक्र से छली गई
४९ पानी मत खोवो
५० मर मर जीने से
५१ मर है गई भूख
५२ मर मर कब तक जीयें
५३ पिसते जाते हैं
५४ पीकर हवा रहें
५५ ग़म खाते हैं
५६ कनी चाट लेना अच्छा है
५७ कुछ खाकर सो जावें
५८ यह पौधा है हुआ हरा
५९ चश्मे की भौं पर

६० मन मौज उड़ाता है
६१ हृदय नाचता रहता है
६२ जी भर गया
६३ बहुत होली
६४ सिहर गई थी
६५ तमक उठी रिस से
६६ खरी सुनाना
६७ सोच ऊँचा नीचा
६८ गला भर आया
६९ सुझती हरी है
७० नींद नहीं टूटी अब तक
७१ फूटी किसमत का है रोना
७२ दुनिया ने करवट बदली
७३ समय चक्र नीचे लाया
७४ उज्ज्वल है इतिहास
७५ न करना तुम उपहास
७६ छोड़ गये है पदअंक
७७ धरे हाथ पर हाथ
६८ मोती भर लाऊँगी
७९ चिराग तले अँधेरा
८० सोने की चिड़िया
८१ कमर को बाँधो
८२ मुश्किल है करनी सर
८३ भींगी रात
८४ नहीं समस्या हल कर पाया
८५ आशा टिम-टिम सी करती है
८६ हुआ चाहती है वह गुल
८७ नहीं चाल कुछ सुझती
८८ मान लें मात
८९ हुआ बिधाता है बाम
९० दुख है किस चिड़िया का नाम
९१ पवन प्रतिकूल
९२ सोया भाग्य जगाऊँगा
९३ निहाल हो जाऊँगा
९४ आँखें कड़ुआती हैं
९५ छुटता है दौर
९६ बलि जाकर
९७ चुम्बन की मुहर
९८ आँखों में फूलेगी
९९ पट्टा तोड़कर करूँ आजाद
१०० देना फेरी
१०१ आँखें ठंढी कर
१०२ बरस पड़ीं आँखें

दूसरा सर्ग

१०३ लेता मुँह मार
१०४ सीधी करने लगे कमर
१०५ घोड़ा बेच सोया
१०६ नाकों दम
१०७ मंजिल पर मंजिल तै करता
१०८ धुन में
१०९ उमंग में भरा हुआ
११० जो न कहीं पर हरे हुए
१११ छलनी पैर हुए जाते हैं
११२ पग से लग लग
११३ तलवे चाट
११४ काँटा हुई जबान प्यास से
११५ दम है निकला जाता
११६ आग जलती नीचे ऊपर
११७ पाँव फूँक फूँक कर रखते
११८ नहीं पची की भी छाया
११९ डूबतों ने पाया जलयान
१२० गये हर्ष से फूल
१२१ खोल दी कमर
१२२ डूब-डूब उतराता है
१२३ छाती पर पत्थर रख
१२४ मुँह गया उतर

१२५ उठता दर्द
१२६ बैठता हृदय
१२७ मोर्चे देख चुके थे
१२८ तलवारें तड़पीं
१२९ शोणित की बह गई नहर
१३० नहीं खेत में वे जम पाये
१३१ सर बो दिये
१३२ घाट उतर तलवारों के
१३३ दाँत हो गये खट्टे
१३४ पड़ा पाला था
१३५ जूझ गये
१३६ काम आ गये
१३७ ठंढी आहें भर
१३८ मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा
१३९ हो गईं निछावर
१४० मुँदरी का नगीना
१४१ बुनते थे बाना
१४२ मौन आँसुओं की भाषा
१४३ हो गई निहाल
१४४ हाथ न आते
१४५ हवा बताते

तीसरा सर्ग

१४६ गंगा-जमुनी
१४७ साँचे में देह ढली थी
१४८ छक कर
१४९ आँखों में जादू भर
१५० रस बरसाती
१५१ दृग के तीर चलाती
१५२ रंग गये जम
१५३ प्याले पर प्याला
१५४ प्रेम मतवाला
१५५ नक्षत्र अवली सरक गई थी
१५६ छटा निरख कर
१५७ कमाल दिखला
१५८ हार गले का
१५९ शरम से गड़ कर

चौथा सर्ग

१६० मूरति बाँकी
१६१ साध बाकी
१६२ प्यासी आँखें
१६३ जग की लाज समाई
१६४ काल नाचा
१६५ विदा माँगना
१६६ तेरे ऊपर मरती हूँ
१६७ मार दी गोली
१६८ हृदय को टूक टूक करती है
१६९ मिट्टी की काया
१७० आशा बाँध रही पुल
१७१ रम जाना
१७२ भरनेवाला जीवन का प्याला
१७३ हिसाब कर डाला चुकता कर रत्ती रत्ती
१७४ हत्थे से टूट गई हो
१७५ निद्रा में सोने से
१७६ हँस हँस कर मर जाती
१७७ आँखों में चुरा कर
१७८ दुनियाँ हो गई पराई
१७९ हरे हरे घाव
१८० ठंढा कर देना
१८१ गुल कर देना
१८२ आँसू गिराना
१८३ इन्द्रजाल की माया
१८४ जीवन सफल बनाओ
१८५ आँखों में चरबी छाई
१८६ हो गई दिवानी
१८७ गिर गया आँख का पानी

१८८ मस्ती उतर जाती है
१८९ आँखों पर चढ़ कर
१९० कलम कर दिये सर
१९१ चौकड़ी भरेगा
१९२ इङ्गित के ऊपर संसार नाचता होगा
१९३ भ्रू बंक करोगी
१९४ भाग पलट जावेंगे
१९५ गुस्से से आँख दिखाई
१९६ सोने का जीवन
१९७ मिट्टी में मिला दिया है
१९८ परियों का अखाड़ा
१९९ रोम-रोम से रोती
२०० दाने विनाश के बोतीं
२०१ चिड़िया को फँसाने
२०२ मुझपर न लगेगा लासा
२०३ मन तो बेमोल बिका है
२०४ नागिन है काली
२०५ सिखला दूँगा
२०६ ठोकर दर दर खाओगी
२०७ झख मारोगी
२०८ मरने को बैठी है
२०९ सस्ते में नहीं छूटने दूँगा
२१० मज़ा लूटने दूँगा
२११ सारा नाता तोड़ देना होगा
२१२ जंगल-जंगल फिरना
२१३ किस्मत पर रोना
२१४ परछाईं देख न पावेगा
२१५ फँस जावेगा
२१६ रह गई सन्न

पाँचवाँ सर्ग

२१७ फेरा करती माला
२१८ सूख कर काँटा
२१९ कर दिया पत्थर पथ को आटा
२२० उड़ गये बाण की ही रेखा
२२१ आभा के पानी में
२२२ मूरति गढ़ी हुई थी
२२३ बगली दे
२२४ आँख बचाते हैं
२२५ शिस्त लगाता था
२२६ फिरती थी मारी मारी
२२७ समयांतर के प्रतिघातों से
२२८ दरक गया हृदय
२२९ बे पानी होना
२३० पत्थर की छाती
२३१ टूट पड़ा
२३२ जान ले भागी
२३३ डूबी थी ध्यान में
२३४ हृदय को रोने दो
२३५ मन बहलाती हूँ
२३६ भाग्य पर रोने दो
२३७ बंजर क्षेत्र में मोती बोना
२३८ प्यासों ने पाया है जल
२३९ विष की घूँट पीऊँगी
२४० किसका यहाँ इजारा है
२४१ खूब निबाहा
२४२ पकड़ा हाथ
२४३ बिलख-बिलख रोता था
२४४ हींस-हींस कर

छठवाँ सर्ग

२४५ पानी चढ़ता जाता
२४६ मानस की मराली
२४७ जाल फैलाया
२४८ अंचल लहराती
२४९ तलवारें म्यान में हैं
२५० आँखों के जाल बिछे

२५१ डोरा डाला
२५२ बसंत फूला
२५३ मैदान भरा हुआ
२५४ सान चढ़ाते हैं
२५६ बौराये रसाल
२५७ आग लगाई
२५८ टेर उठाई
२५६ खिला मन
२६० रंग चोखा
२६१ थिरक-थिरक कर
२६२ तार टूटा
२६३ चुन देता
२६४ काँटों में घसीटकर
२६५ काँटा लगा दिल में

सातवां सर्ग

२६६ पानी में आग लगा दूँगी
२६७ नाच नचा दूँगी
२६८ फूली फिरती है
२६६ सलीम पर 'कुछ' करके
२७० विष की पुड़िया
२७१ पिघल गये हैं
२७२ मिजाज, आसमान पर चढ़ा हुआ
२७३ दिमाग है बढ़ा हुआ
२७४ उड़ती चिड़िया पहचानूँ
२७५ उस चींटी की क्या हस्ती है
२७६ मस्ती है
२७७ ठोकर खाती
२७८ फिरती है इतराई
२७६ उसको अभी पढ़ाऊँगी
२८० चली चराने है
२८१ पैर निकाले हैं
२८२ बातों में उड़ाती है
२८३ वह डाल-डाल मैं पात-पात
२८४ पार न पायेगी
२८५ वह मेरे पग की धूल नहीं
२८६ झाँकी करने को
२८७ भेट चढ़ाऊँगी
२८८ चुटकी में उड़ाती हूँ
२८६ आसमान से तारे ला
२६० कितनी बरसातें देखी हैं
२६१ हूँ हीर नहीं कच्ची लकड़ी
२६२ गा कर सेंध लगाती हूँ
२६३ ऐसी चूल मिलाऊँगी
२६४ भाँप न कोई पायेगा
२६५ पचड़ा फैलाऊँगी
२६६ गला गला के मारूँगी
२६७ सोना हराम कर दूँ सारा
२६८ तुरपा दूँगी
२६६ रंग कट जायँगे
३०० अट पायेंगे
३०१ गर्दन नायेंगी
३०२ कतर-ब्योंत दिखलायेगा
३०३ चूना लगाऊँगी
३०४ करनी का फल पायेगा
३०५ नारा भर दूँगी
३०६ चरखा कर छोड़ूँगी
३०७ करम कूटे
३०८ कुंदी कर दूँगी
३०६ कलप-कलप कर मर जाये
३१० सौंद-सौंद कर फीचूँगी
३११ घाट-घाट फिर मर जाये
३१२ रग-रग से परिचित हूँ
३१३ नस-नस पहचानती है
३१४ नमक-मिर्च लगा-लगा
३१५ उँगली दुनिया दिखलाती है

३१६ आग से खेल
३१७ सिर लिये हथेली पर
३१८ सिर सेहरा धरना
३१६ रात गँवाई
३२० घातें-प्रतिघातें
३२१ उड़ान बेपर की
३२२ ज़बान धर ली
३२३ बाँह भरी है
३२४ पैर मन मन भरके हैं

आठवाँ सर्ग

३२५ माला में लोगी
३२६ दूध की धोई
३२७ समझती हूँ छक्का-पंजा
३२८ कस दिया शिकंजा
३२६ उसकी ऐसी-तैसी
३३० परछाई देख नहीं पावेगी
३३१ भरवाती है पानी
३३२ हाथों के तोते उड़ते
३३३ कतर दिये पर
३३४ तूती बोलेगी
३३५ खिलाऊँगी गुल
३३६ हो जावेगा मुझ पर बुलबुल
३३७ उल्लू बनाने आई
३३८ निकल जाय पंजे से
३३६ दाँव हुआ खाली
३४० वार बचाना
३४१ मट्टी लगी पीठ में
३४२ बरस पड़ी
३४३ गुबार निकाल कर
३४४ दिल में जगह दो
३४५ तीन-पाँच करे
३४६ नौ दो ग्यारह करवाऊँ
३४७ छू हो गई
३४८ कान ऐंठे
३४६ किस्मत टेढ़ी हो
३५० आँखों में गड़ती
३५१ बँधा साँप
३५२ सोना लुटा

नवाँ सर्ग

३५३ होवे शीतल छाती
३५४ चिंता जागी
३५५ सुध-बुध खो
३५६ काटेगा जो बोया
३५७ बहकी बातें करना
३५८ बाल बाँका हो
३५६ अपने हाथ दिखाऊँ
३६० जमी रह गई

दसवाँ सर्ग

३६१ भविष्य के चाँद
३६२ तार नियति ने तोड़े हैं
३६३ फूँका प्राण
३६४ हाथ फेरा
३६५ जादू जगाने को
३६६ वे मोल बिका था
३६७ टेढ़ी खीर
३६८ लोहा मानेगी
३६६ मेरी चाँदी होगी

ग्यारहवाँ सर्ग

३७० फेरा करता था मनका
३७१ मूँग दलता था
३७२ एक सूत्र बाँधे था
३७३ नथे प्रेम की डोर
३७४ विषकी बेल लगाई
३७५ एक म्यान में दो तलवारें
३७६ बुझी जहर की

३७७ स्वप्न का देश
३७८ स्वर्ग सिधार गये
३७६ अकबर हुये शान्त
३८० पुरुषों की हैं कठपुतली
३८१ वे पूरब में पच्छिम
३८२ सिकता से नहीं निकल सकता तेल
३८३ लगाम लगाऊँगी
३८४ पुरवाई में नौका खेना

बारहवाँ सर्ग

३८५ चढ़ गया क्रोध का पारा
३८६ अन्धे की लकड़ी
३८७ पढ़ी नहीं है पट्टी
३८८ खबर एक एक की लूँगा
३८६ चुटकी में मसल दूँ
३६० पाठ पढ़ाने
३६१ खेल मौत से करता

तेरहवाँ सर्ग

३६२ पग पग पर बंधन
३६३ सर के बल दौड़ा आया
३६४ मग का काँटा
३६५ सर कट आऊँ
३६६ तारे गिन कर रात काटती
३६७ दाना दाना को तरसो
३६८ लोहा ले
३६६ धाक जमा दो
४०० कोई सा फट जावे
४०१ दोनों लोक बनाओ
४०२ रास्ता नापना

चौदहवां सर्ग

४०३ तलवारें नंगी कर लो
४०४ चमका भाग्य सितारा है।
४०५ मनमांगी मुराद पाई
४०६ तमन्ना बर आई
४०७ खिचड़ी बाल पकाये हैं
४०८ चालीस जाड़े खाये हैं
४०६ गर्माते हैं
४१० गुस्से को पी जाते हैं
४११ गुलछर्रें उड़ाऊँगी
४१२ अपना उल्लू सीधा करना
४१३ सफ़ेद या स्याह करो
४१४ पाँचो घी में हैं
४१५ बन आई है

पन्द्रहवाँ सर्ग

४१६ सींच रक्त से
४१७ दाढ़ी की इज्जत खोने
४१८ नहीं एक सुनेगी
४१६ हुक्म बजा लाने को
४२० अपयश मोल लीजिये
४२१ शह पाते
४२२ शामत हुई सवार
३२३ दम भरते थे
४२४ हौल दिल होता है
४२५ टांग अड़ाना
४२६ किसकी है शामत घेरे
४२७ दुआ मनाऊँगा
४२८ गुन गाऊँगा
४२६ हुज़ूर की बड़ी निगाह
४३० हांका करते थे दून
४३१ राह खुदा में
४३२ छानूँगा खाक़
४३३ लगा कोसने भाग
४३४ फीका करता रंग
४३५ प्रजा को पीसा है
४३६ मन मारे

सोलहवाँ सर्ग

४३७ टीमटाम दिखलावा
४३८ लोभ छलावा
४३९ हृदय-हृदय में डेरा
४४० बाग़ बाग़ दिल होता
४४१ अपनी राम कहानी
४४२ तरुणाई फूटी आती है
४४३ बने ठने इठलाते हैं
४४४ खाते गोते थे
४४५ किस्मत है बाम
४४६ दाल में काला है
४४७ खेत की मूली
४४८ नाच रहा है सर पर काल
४४९ हिलाना ज़बान
४५० जीवन धागा टूट गया
४५१ चोला बदल
४५२ ललाट लेखा
४५३ करते रहे राज्य

सत्रहवाँ सर्ग

४५४ अब बोली तब बोली
४५५ उठती दुःख घटायें
४५६ जीवन की गुत्थी
४५७ उलझन पड़ गई
४५८ रात है साँय साँय करती
४५९ घन घुमड़ आया
४६० परियों का साया
४६१ धोके की टट्टी
४६२ साम दाम
४६३ होनी थी सो हो ली
४६४ हो मुलजिम इकबाली

अट्ठारहवाँ सर्ग

४६५ आग रेत पर बलती
४६६ जाती जान किसी चिड़िया को शिशु का हुआ तमाशा
४६७ डाले लू ने छाले
४६८ जीवन के लाले
४६९ बरसती आग ही आग
४७० पारस बन
४७१ ठगी सी लखती
४७२ बिरह-विधुरा
४७३ निकला हुआ बाजि
४७४ पौ बारह होगा
४७५ सारी गरमी ठंढी कर दूँगा
४७६ उड़ते पंख कतर दूँगा
४७७ सिसक सिसिक कर
५७८ आँच लगे
४७९ कलम रहोगी
४८० सिक्का जमाया